स्व० ब्र० सीतल स्मारक ग्रन्थमाला नं० १.

॥ श्री ऋषभदेवाय नमः ॥

स्व० कविवर पं० तुलसीरामजी देहलीनिवासी विरचित-

श्री आदिपुराण

(श्री ऋषभनाथपुराण छंदोबद्ध)

प्रकाशकः —

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

सम्पादक, जैनमित्र व दिगम्बर जैन,

मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय, सूरत।

स्व० परमपूज्य ब्र० सीतलप्रसादजीके
स्मरणार्थ "जैनमित्र" के
४६-४७-४८ वें वर्षोंके
ग्राहकोंको भेंट।

मूल्य—चार रुपया।

प्रस्तावना।

जैन धर्म और उसके सिद्धांतोंका वर्णन प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, और द्रव्यानुयोग, ऐसे चार अनुयोगों द्वारा किया गया है। जिसमें प्रथमानुयोगमें २४ तीर्थंकरोंके चरित्रोंका वर्णन होता है, जिनमें प्रथम शास्त्र श्री आदिपुराणजी अर्थात् श्री आदिनाथ पुराण (या श्री वृषभनाथ—प्रथम तीर्थंकर वर्णन) एक महान ग्रंथराज है जो अनेक शास्त्रोंका भंडार है। अतः स्वाध्याय करनेवाले सबसे प्रथम आदिनाथ पुराणका स्वाध्याय करना पसंद करते हैं।

यह आदिनाथ पुराण मूल संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश भाषामें श्री पुष्पदन्ताचार्य, श्री जिनसेनाचार्य आदि आचार्यों द्वारा रचा गया है, जो पहले तो ताड़पत्र या कागज पर हस्तलिखित ही मिलते थे। लेकिन करीब ५०—६० वर्षोंसे जैन ग्रन्थ मुद्रित होने लगे हैं। यद्यपि मुद्रणकलाका प्रचार इसके बहुत पहिले होचुका था लेकिन जैन शास्त्रोंको छापना छपवाना तीव्र पाप समझा जाता था इसलिये जैन ग्रन्थ छापनेका प्रारम्भ स्व० सेठ हीराचंद नेमचंद दोशी (सोलापुर), स्व० बाबू ज्ञानचंद जैन लाहोर, बाबू सूरजभानुजी वकील देवबंद, स्व० दानवीर सेठ माणेकचंदजी, श्री० पं० लालारामजी शास्त्री, श्री० पं० मक्खनलालजी शास्त्री आदिने किया तब अनेक स्थिति-पालक श्रीमान और विद्वानोंने इसका घोर विरोध किया था। लेकिन

जैन शास्त्रोंके छपवानेका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। और आज तो धर्मशास्त्र छपानेका विरोध करनेवाले नाम शेष ही रह गये हैं। जहांतक हम जानते हैं श्री आदिपुराण मूल संस्कृत श्री जिनसेनाचार्य कृत हिन्दी भाषानुवाद करके सबसे प्रथम श्री० पं० लालारामजी शास्त्री (इन्दौर) ने छपवाया था। जो कई भागोंमें प्रगट होकर १६) में मिलता था। फिर भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था कलकत्ताने हिन्दी भाषा वचनिकामें श्री आदिपुराणजी छपवाया था जो १०) में मिलता था। यह दोनों ग्रन्थराज खतम होनेसे अब नहीं मिलते। अतः हमने पं० पन्नालालजी जैन "वसंत" साहित्याचार्यसे श्री जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण अनेक टिप्पण सहित हिन्दी भाषा वचनिकामें करीब तीन चार वर्ष हुये तैयार करवाया था जो हमारी संमति अनुसार ही भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे छपकर प्रगट होनेवाला है वह तो क्या जाने कब प्रगट होगा। इसलिये आजकल श्री आदिपुराण भाषा वचनिकाकी बहुत मांग रहती है।

ऐसी परिस्थितिमें करीब दो तीन वर्ष हुये देहलीके प्रसिद्ध जैन बुकसेलर और जैन शास्त्रोंके खोजक बाबू पन्नालालजी जिन्होंने कई वर्षों तक जैनमित्र मंडलके मंत्री रहकर जैन धर्मकी अपूर्व सेवा की है उन्होंने हमको लिखा कि देहलीमें धर्मपुराके नये मंदिरजीमें कई हस्तलिखित पद्य-शास्त्र हैं जो अप्रगट हैं और प्रगट करने योग्य हैं। इनमेंसे देहली निवासी पं० तुलसीरामजी कृत आदिपुराण और पं० हीरालालजी कृत चंद्रप्रभु पुराण ये दो ग्रंथ छपने योग्य हैं। अतः

यदि आप इनको छापकर प्रगट करनेका साहस करें तो मैं आपको इन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपी (प्रेस कोपी) करके भेज सकता हूं । इसपरसे हमने विचार किया कि आदिपुराण और चन्द्रप्रभु पुराण हिन्दी भाषामें कौन जाने कब प्रगट होगें इसलिये इन दोनों पुराणोंको जो कि भाषामें न होकर पद्य व छंदबद्ध हैं, कोपी कराके प्रगट करना ठीक होगा । अतः हमने बाबू पन्नालालजीसे इन दो ग्रन्थोंकी प्रेस कोपी तैयार करवाकर मंगवा लीं । जिसको करीब दो वर्ष हो चुके हैं लेकिन पेपर कन्ट्रोल व छपाईकी असुविधाके कारण इन्हें हम प्रगट नहीं कर सके थे तौभी किसी न किसी प्रकारसे श्री आदिपुराणजीको प्रगट करना हमने करीब एक वर्ष हुये निश्चित किया जो आज तैयार होकर पाठकोंके सामने रख रहे हैं। यद्यपि यह ग्रन्थ कवितामें अर्थात् पद्य व छंदबद्ध है तौभी इसकी रचना इतनी सरल है कि यदि यह ग्रन्थ ध्यानसे सोच विचारपूर्वक बांचा जाय तो बहुत अच्छी तरहसे समझमें आ जायगा । इस महान ग्रन्थका विशेष प्रचार हो इसलिये इसको स्व० ब्र० शीतलप्रसाद स्मारक ग्रन्थमाला द्वारा इसे प्रगट करके 'जैनमित्र'के ४६, ४७, ४८ वें वर्षके ग्राहकोंको भेट बांटनेका किसी न किसी प्रकारसे प्रबंध किया है। तथा इसकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं । इस पद्य ग्रन्थके रचयिता कविवर पं० तुलसीरामजी देहली निवासी तो संवत १९१६ में ही होगये हैं और उनका कुटुम्ब परिवार देहलीमें मौजूद है ऐसा मालूम होने पर आपका जीवनचरित्र बाबू पन्नालालजी मारफत पं० सुमेरचंदजी जैन साहित्य-रत्न न्यायतीर्थने परिश्रम करके लिखकर भेजा है जो आगे प्रगट किया है । इससे

पाठक जान सकेंगे कि कवि तुलसामजीने कितनी उत्तम पद्य रचना आदिपुराणजीकी की है। कविश्रीका जीवन परिचय तैयार कर देनेवाले पं० सुमेरुचंदजीका हम आभार मानते हैं, तथा हमारे परम मित्र बाबू पन्नालालजीका हम जितना भी आभार माने उतना कम है क्योंकि आपके ही परिश्रमसे यह ग्रन्थराज जैन समाजके सामने आ रहा है। आप द्वारा लिखाया हुआ चंद्रप्रभु पुराण भी जहांतक हो अवकाशनुसार हम प्रगट करेंगे।

कविश्रीका चित्र प्रकट करनेकी हमारी बहुत इच्छा थी लेकिन वह न मिलनेसे नहीं प्रकट कर सके हैं।

यह पद्य ग्रन्थ है और मूल हस्तलिखित शास्त्रके साथ मिलाकर छापा गया है। तौभी इसके छापनेमें जो कुछ अशुद्धियां रह गई हों तो उसे विद्वान् पाठक शुद्ध करके पढ़ें, तथा उसकी सूचना हमें देते रहेंगे तो दूसरी आवृत्तिमें उसका सुधार हो सकेगा। अन्तमें हम यही चाहते हैं कि इस पद्य ग्रंथराजका अधिकाधिक पठन पाठन हो और हमारा परिश्रम सफल हो तथा देहलीके धर्मपुराके नये मंदिरजीके हस्तलिखित अप्रगट शास्त्रोंका जहांतक हो प्रेस कॉपी होकर जैन समाजमें उसका प्रचार हो ताकि बहुतसा अप्रगट जैन साहित्य प्रकाशमें आ सके।

निवेदक—

सूरत,
वीर सं० २४७३
भाद्रपद सुदी १४.

मूलचन्द किशनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

स्व० ब्र० सीतल स्मारक ग्रन्थमाला।

इस परिवर्तनशील संसारमें जीना और मरना तो सभीका होना है लेकिन ऐसे बहुत कम विरले होते हैं जो अपने जीवनमें रात दिन समाज व धर्म सेवा करके तथा धर्म साधन करके अपना जीवन सफल कर जाते हैं।

स्व० ब्र० सीतलप्रसादजी (लखनऊ निवासी) एक ऐसे ही महापुरुष दिगम्बर जैन समाजमें होगये हैं जिन्होंने अपने जीवनमें करीब ४० साल तक दिगम्बर जैन धर्मकी, समाजकी व जैनमित्रकी रात दिन अनविरत ऐसी सेवा की थी कि आज भी दिगम्बर जैन समाजके आबालवृद्ध आपकी सेवाओंको याद करते हैं और कहते हैं कि श्री स्व० ब्र० सीतलप्रसादजी जैसे कर्मवीर व धर्मवीर सेवक आज कोई नजर नहीं आता और भविष्यमें भी होगा या नहीं यह भी शंकास्पद है। क्योंकि ब्रह्मचारीजी जैन धर्म और जैन साहित्यकी अभूतपूर्व सेवा कर गये हैं, जो कभी भी भुलाई नहीं जासक्ती है।

आप करीब १०० पुस्तकोंका संपादन व अनुवादन तथा कई ग्रंथोंकी पद्य रचना कर गये हैं। जो घर घरमें प्रचलित हैं। अमितगति आचार्य कृत संस्कृत सामयिक पाठकी आपकी रचना तो इतनी समाजप्रिय है कि संस्कृतके साथ आपके ही सामायिकके पद्यको सभी स्त्री पुरुष पाठ किया बिना नहीं रहते।

ऐसे कर्मण्य ब्रह्मचारीजीका स्वर्गवास सं० १९९८ में अपनी जन्मभूमि लखनऊमें ही सिर्फ ६३ वर्षकी आयुमें हो गया तब हमने विचार किया कि स्व० ब्र. सीतलप्रसादजीका ऐसा ही कोई स्मारक होना चाहिये जो चिरकाल तक चालू रहे और ब्रह्मचारीजीकी जैन साहित्य उद्धार और शास्त्रदान प्रचारकी अभिलाषा स्वर्गमें भी पूर्ण होती रहे। अतः हमने जैनमित्र द्वारा स्व० ब्र० सीतल स्मारक ग्रन्थमाला स्थापित करनेके लिये १००००) रुपयेकी अपील इसी समय प्रगट की, खेद है कि इसका पूरा उत्तर हमें नहीं मिला, तौभी बार बार प्रयत्न करनेपर करीब ६०००) इस फंडमें इकट्ठे हुये। अतः इतनेमें ही कार्य प्रारम्भ करना हमने उचित समझा और ब्र० सीतल स्मारक ग्रन्थकी स्थापना वीर सं० २४७० में कर दी और उसका प्रथम ग्रन्थ **स्वतन्त्रताका सोपान** जो ब्रह्मचारीजी रचित महान आध्यात्मिक ग्रन्थ है वह प्रगट करके 'जैनमित्र' के ४४ व ४५में वर्षके ग्राहकोंको भेटमें दिया गया था।

ऐसे तो हमारा विचार इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रत्येक वर्ष एक एक ग्रन्थ प्रगट करके मित्रके ग्राहकोंको भेट करना था लेकिन देशकी वर्तमान

परिस्थितिमें कागज व छपाईकी महंगीमें तथा सिर्फ ६०००) रुपयेकी सूदकी इतनी अल्प आय होती है कि ऐसा हम किसी भी अवस्थामें नहीं कर सकते हैं। हां! यदि कोई ब्रह्मचारीजीका भक्त इस फंडमें पांच दस हजार रुपये और प्रदान करदें तो ही ऐसा होसकता है। ऐसी परिस्थितिमें भी हमने कोई बड़ा ग्रंथराज ही मित्रके ग्राहकोंको भेटमें देनेका विचार किया और उसके लिये यह **आदिपुराण ग्रन्थराजकी** अप्रगट पद्य रचना हमें देहलीसे प्राप्त हो सकी जो प्रगट करके जैन-मित्रके ४६, ४७, व ४८ वें वर्षोंके ग्राहकोंको भेट की जाती है प्रति वर्ष छोटे छोटे ग्रंथ उपहारमें देना ठीक न समझकर यह तीन वर्षोंका संयुक्त उपहार ग्रन्थ पाठकोंको दिया जा रहा है। आशा है मित्रके पाठकोंको इससे संतोष होगा।

पूज्य ब्रह्मचारीजीका बृहत् जीवनचरित्र तैयार करनेका भार श्री० पं० अजितप्रसादजी जैन एडवोकेट संपादक जैनगजट लखनऊने लिया था उसका आपने संकलन करके इस जीवनचरित्रको जैनमित्र द्वारा कई अंकोंमें प्रगट करवाया है तथा आप इसको अलग रूपमें प्रगट करनेवाले हैं। अतः इस ग्रन्थमाला द्वारा यह बृहत् जीवनचरित्र प्रगट नहीं हो सका है।

निवेदक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

—प्रकाशक।

श्री आदिपुराणके रचयिता—

कविवर पं० तुलसीरामजी देहलीका संक्षिप्त परिचय।

स्वनाम धन्य कविवर पंडित तुलसीरामजीका जन्म देहलीमें संवत् १९१६ में अग्रवाल वंशके गोयल गोत्रमें हुआ। बचपनसे आपकी रुचि जैन ग्रन्थोंके मनन और अध्ययनकी ओर थी। सौभाग्यसे आपको संस्कृतके विद्वान् पं० ज्ञानचंदजीका सम्पर्क हुआ। उनके पास व्याकरण छन्द और सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन चालू किया। थोड़े समयमें आपने गोम्मटसार, सर्वार्थसिद्धि, चर्चा शतक, समयसार श्रुतबोध और सारस्वत व्याकरण आदि ग्रन्थोंका अध्ययन कर डाला। धीरे धीरे उनकी अभिरुचि बढ़ने लगी व अधिकांश समय शास्त्रोंके विचार पठन पाठनमें बीतने लगा जिससे आप संस्कृत और भाषा ग्रन्थोंके कुशल अनुभवी विद्वान होगये।

उस समय भट्टारकोंका प्रभुत्व कम होने लगा था, गृहस्थोंमें विद्वानोंकी संख्या बढ़ने लगी थी 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' की उक्ति श्रावकोंके अन्तकरणमें जाग्रत होगई थी। विद्याकी वृद्धिके लिये अहर्निश प्रयत्न किया जाने लगा। स्वाध्यायकी परिपाटी चालू

हुई। उसी परिपाटीने कुछ ऐसी शैलियां प्रकट कीं जिनसे विद्वानोंकी संख्या बढ़ी। शैलीसे तात्पर्य उस जन समुदायसे था जो किसी प्रभावशाली अनुभवी और मर्मज्ञ विद्वानके सम्पर्कके कारण मुमुक्षु पुरुषोंकी गोष्ठी स्वयं ज्ञान बढ़ानेकी तीव्र अभिलाषा रखती थी और दूसरोंको प्रोत्साहन देती थी उनमेंसे अधिकांश महानुभाव जैन धर्मके निष्णात विद्वान बन जाते थे। किसी समय दिल्ली, आगरा, जयपुर, अजमेर, कोटा और ग्वालियरकी शैली अधिक प्रसिद्ध रहीं। पंडितजीके ज्ञानका विकाश भी ऐसी शैलीके प्रभावके कारण ही हुआ।

दिल्ली भारतवर्षका हृदय है, व्यापारिक नगरोंमें अग्रगण्य है, जैन समाजकी दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। बहुत समयसे विद्वानोंकी परिपाटी यहां लगातार होती चली आई। पं० द्यानतरायजी, पं० बुधजनदासजी, पं० दौलतरामजी, पं० बुलाकीदासजी, पं० शिवदीनजी, पं० ज्ञानचंदजी और पं० जिनेश्वरदासजी जैसे योग्य विद्वानों और आत्म रसिकोंको विकसित करनेका काम दिल्लीके महानुभावोंने ही किया। पंडित तुलसीरामजीका भी इसमें महत्वपूर्ण भाग रहा है।

जैन धर्मका प्रचार अधिकांशतया ऐसे उदार निष्पृह विवेकी स्वावलम्बी सद्गृहस्थ विद्वानों द्वारा ही हुआ। जो आवश्यक समय आजीविकाके लिये निकालकर बचे हुए अवकाशमें दृढ़ अध्यवसाय और असाधारण उत्साहके साथ शक्तिभर कार्य करते रहे। पंडितजीने भी जैन धर्मकी विभूति पाकर उसके आनंदमें दूसरोंको भी आस्वादन करनेका पूरा पूरा अवसर दिया। उनके धर्म प्रचारकी प्रवृत्ति बहुमुखी

थी। वे स्वयं कुशल वक्ता, चतुर व्याख्याता और ज्ञान गोष्ठीके लिए विशेष मर्मज्ञ थे।

जैन पाठशाला नया मंदिर सेठ हरसुखराय सगुनचंद्रजी जो दिल्लीकी सभी संस्थाओंमें प्राचीन संस्था है उसके आप मंत्री थे। सेठके कूचेके सरस्वती भंडार और सामिग्री भंडारका प्रबन्ध आप ही करते थे। दोनों समय शास्त्र सभा करना, साधर्मी भाइयोंको प्रेरणा करके उनमें स्वाध्यायकी अभिरुचि जगाना, जिज्ञासु पुरुषोंसे तत्वचर्चा करना आपका दैनिक कृत्य था। आवश्यकता पड़ने पर नया और पंचायती मंदिरमें व्याख्यान करने जाते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि मेरे द्वारा ज्यादासे ज्यादा जन समुदायमें जैन धर्मका ज्ञान फैले।

पंडितजीके जीवनकी सबसे महत्वपूर्ण घटना अजैनोंको जैन धर्ममें दीक्षित करनेकी है। आचार्यश्री जिनसेनस्वामीने जिसे प्रजान्तर सम्बन्ध कहा है वह आपमें पूर्ण रीतिसे विद्यमान था।

तत्त्वो महानयं धर्म प्रभावोद्योतको गुणः।
येनायं स्वगुणैरन्या नात्म सात्म कर्तुमर्हति॥

—२१० श्लोक ३८ पर्व।

अपने अलौकिक गुणों द्वारा अजैनोंमें जैन धर्मके प्रति श्रद्धा पैदा करना महान धर्म है और प्रभावनाका सर्वोत्तम गुण है।

आपके सम्पर्कमें आकर कई व्यक्ति जैन धर्मके अनन्य भक्त हो गये। त्यागमूर्ति सौम्य हृदय **बाबा भागीरथजी वर्णी** उनमें प्रमुख हैं। युगोंसे दीक्षा देनेकी प्रवृत्ति बन्द सी होगई है। अधिकांश जैन

प्रचारकी समुचित कमीके कारण जैन धर्मसे विमुख होते जाते हैं। द्वार बन्द है। पंडितजीने दीक्षा देकर एक श्लाघ्यनीय और अत्यावश्यकीय कार्य किया।

शुद्धि और दीक्षाके बिना जैन समाज संकीर्ण विचारोंके दलदलमें फंसी रहेगी उसमें उदारता और कर्तव्यनिष्ठाकी भावना बलवती न होगी यह सभी जानते हैं। वर्तमान त्यागीवर्गमें बाबा भागीरथजी वर्णीने अपने असाधारण त्याग और जैन धर्म प्रचारकी तीव्र भावनाके कारण विशेष स्थान पा लिया था। स्याद्वाद महाविद्यालय जैसी निधि श्रद्धास्पद बाबाजी और प्रातः स्मर्णीय पं० **गणेशप्रसादजी वर्णीके** बोए हुए पुण्य बीजोंका ही फल है। इसलिये आवश्यक है कि अन्य विद्वानोंको बिना किसी संकोच और भयके दीक्षाकी प्रवृत्ति चालू करना चाहिये जिससे जैन धर्मके तत्त्वज्ञानका यथार्थ फल सर्व साधारण जिज्ञासुगण ले सकें और अपना वास्तविक हित कर सकें।

पंडितजीका व्यवसाय सर्राफेका था **'तुलसीराम सागरचंद'** के नामसे फर्म है जो पहले चांदनीचौकमें थी व आजकल दरीबाकलामें है जिसपर बड़ी द्यानतदारीके साथ काम होता है और खोटी चांदीका माल नहीं रक्खा जाता। इस दूकान पर आपके सुपुत्र **पं० सागरचंदजी बैठते हैं**। आपके ३ बेटे और ४ पोते हैं जो अपने पिताकी ही भांति कुशल अनुभवी जैन शास्त्रोंके रहस्यके वेत्ता और साधर्मी प्रेमी विद्वान हैं। आपने पौराणिक ग्रन्थोंका अच्छा स्वाध्याय किया है। सेठके कूचेके मंदिरमें वर्षोंसे शास्त्र पढ़ते हैं शरीर शिथिल

होनेपर भी प्रतिदिन शास्त्र सभामें आते हैं। आज भी स्वाध्यायकी परिपाटी उसी प्रकार चालू है उसका श्रेय आपको और दो अन्य महानुभावोंको है। वर्तमानमें गुड़ाना निवासी पंडित महबूबसिंहजी सर्राफ शास्त्र पढ़ते हैं। पंडितजी वयोवृद्ध और श्रीमंत होते हुए भी कर्तव्यनिष्ठ वात्सल्यभाजन और धर्मपरायण हैं। सेठके कूचेकी सभी संस्थाओंकी निःस्वार्थभावसे देखरेख करते हैं। नये मंदिरमें तत्वचर्चा और स्वाध्यायमें जो उत्साह दिखाई देरहा है उसके एक मात्र अवलम्ब, धर्मज्ञ, जैन धर्म रसिक, विद्वानोंके अनन्य प्रेमी पंडित दलीपसिंहजी कागजी हैं। ये तीनों महानुभाव दिल्लीकी जैन समाजके भूषण हैं। उन्होंने अपनी स्वभाविक रुचि और कर्तव्यनिष्ठासे प्रेरित होकर स्वयं और दूसरोंको तत्वज्ञान विभूषित किया है इसलिए जैन समाजका कर्तव्य है कि वह अपने इन पथप्रदर्शकों और निःस्वार्थ शुभचिन्तकोंका यथोचित सम्मान करके अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करें।

पंडितजीकी प्रमुख रचना आदिपुराण है, जिसे अपभ्रंश भाषामें पुष्पदंत आचार्यने बनाया, और संस्कृतमें श्रीसकलकीर्ति आदि भट्टारकोंने बनाया, उन्हींके आधार पर भाषामें दोहा चौपाई छंदोंमें कविवर पंडित तुलसीरामजीने रचा है।

इस ग्रंथकी रचना मनोहर और हृदयग्राही है। भाषा परिष्कृत और परिमार्जित है। अनुवादके साथ मौलिक भावोंका पूर्ण ध्यान रक्खा गया है। ग्रंथ सभी प्रकारसे उत्तम और अपूर्व है।

ऐसे परोपकारी धर्मनिष्ठ महानुभावका संवत १९५६ में सिर्फ

४० वर्षकी अवस्थामें ही स्वर्गवास होगया। उनके उज्वल यशको जीवित रखनेके लिए यह ग्रंथ ही चिरस्थाई है जो आज प्रगट हो रहा है।

इस ग्रंथके प्रकाशनका श्रेय दिल्लीके प्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री० बाबू हीरालाल पन्नालालजी अग्रवाल जैन बुकसेलरको है। जिनके सहयोगसे अभीतक कई हस्तलिखित अप्रगट ग्रंथोंका प्रकाशन होचुका है जो वीर सेवा मंदिर सरसावा और जैन कन्या पाठशाला धर्मपुराके आनरेरी मंत्री है। तथा जो वर्षोंतक जैन मित्रमंडल देहलीके मंत्री रह चुके हैं।

—सुमेरचन्द जैन साहित्यरत्न न्यायतीर्थ शास्त्री, देहली।

विषय-सूची।

(जो भूलसे पृ० ३५३ से छपा है)

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्री आदिपुराण ।

(श्री ऋषभनाथपुराण)

प्रथम सर्ग ।

श्रीमंतं त्रिजगन्नाथमादितीर्थकरं परं ।
फणींद्रं नरेन्द्राच्यं वंदे नंतगुणार्णवि ॥ १ ॥

गीताछंद–सुखकरन आनन्दभग्न तारनतरन विरद विशाल है ।
नवकंज लोचन कंज पदकर कंज गुणगण माल है ॥
उनके बचन जो उर धरे, भवरोग तिनके टाल हैं ।
ऐसे वृषभ जिनराजको मैं, नमूं कर धर भाल हैं ॥ २ ॥

चौपाई–

श्रीयुत तीन लोकके नाथ, आदि तीर्थंकर परम विख्यात ।
इंद्रादिक कर पूजित सदा, वंदूं नंत गुणाकर मुदा ॥ ३ ॥
कल्पवृक्ष पृथ्वीसे गये, आदि प्रजापति प्रगट जु थये ।
अस मसि कृषि वाणिज्य सु आदि, सिखलाई करके आह्लाद ॥४॥
इन्द्र जो लायो देवी एक, नृत्य कलामें अधिक विशेष ।
तिसे निरखके श्रीभगवान, भव तन भोग विरक्त ही ठान ॥५॥
जीर्ण तृणवत् राज तजंत, स्वयं बुद्ध वैराग्य धरंत । वनमें जाके श्री भगवंत, दीक्षा धारी चित हरषंत ॥ ६ ॥ कायोत्सर्ग धरो

षटमास, दुःधर तप कीने गुण रास। बन हस्ती कमलन कर सदा, पूजे जिन चर्णांबुज मुदा ॥ ७॥ एक वर्ष पीछे आहार, हस्तनागपुरमें निरधार। राय श्रेयांस महलके मांह, रत्नवृष्ट सुर अधिक करांह॥ ८॥ शुक्लध्यान असि ले तत्कार, घाते कर्म घातिया च्यारि। केवलज्ञान प्रगट तब भये, सर्व जगत् कर वंदित ठये॥ ९॥ मोह अंध्यतमको कर नाश, ज्ञान भानको कियो प्रकाश। जगमें रुलते जीव अनेक, दरसायो शिवपंथ विवेक ॥ १० ॥ सब कर्मनको करके नास, पहुंचे सिद्ध थान सुख रास। दर्शन ज्ञान अनंते थये, अष्ट गुणन कर राजित भये ॥ ११ ॥ आदि तीर्थकर्ता वृषभेश, वृषलांछन नित यजे सुरेश। है अनन्त महिमाके स्थान, वंदन करूं कर्म मुझ हान ॥ १२ ॥

दोहा—जिनको धर्म कहो भयो, अब बर्तै अमलान।
स्वर्ग मुक्त कारण परम, च्यार संघ हित दान ॥ १३ ॥
अंत समैं महावीर जिन, सन्मति सन्मति दाय।
तिनको वंदूं भाव युत, जातैं दुर्गति जाय ॥ १४ ॥
बाकी सब जिनराजको, कर प्रणाम मन लाय।
त्रिजगत—पति पूजित चरण, भव जीवन सुखदाय ॥ १५ ॥
श्रीमान् जगत सु पूज्य हैं, धर्मतीर्थ करतार।
सकल विश्व कर वेद्य हैं, द्यो निज गुण सुखकार ॥ १६ ॥
ज्ञान मूर्ति जगवंद्य हैं, लोक शिखरके वासि।
सिद्ध अनंत सुखी बसे, वंदूं द्यो निज पास ॥ १७ ॥

पद्धड़ी छंद—जे पंचाचार धरंत धीर, औरनको उपदेशे महीर।
छत्तीस गुणनके हैं निधान, निज गुण मुझकों दो पापहान॥१८॥
जे पढ़न पढ़ावनमें प्रवीन, श्रुत द्वादशांगको पाठ कीन।
तिन पाठकके मैं यजूं पाय, सुज्ञान होय कुज्ञान जाय॥१९॥
ग्रीषम वर्षा अरु शीतमांहि, जे तीनों काल सु तपकरांहि।
ते साध नमूं मैं बार बार, मेरी भव बाधा टारटार॥ २० ॥
जो वृषभसेन नामा यतींद्र, गणधर जो आदि भये मुनींद्र।
सब अंग पूर्वको रचन कीन, ज्ञानांबुध बर्द्धनको प्रवीन॥२१॥
श्री गौतम गणधर भये अन्त, चवज्ञान ऋद्धि धारे महंत।
मैं स्तुति करहूं सु बार बार, मेरे सब कारज सार सार॥२२॥
जे चौदहसै छ्यावन महान, बाकीमें गणधर जे ऋद्ध खान।
सब मोक्षनगरमें गये सोय, ते ज्ञान तीर्थ उद्धार होय॥२३॥
जे कुन्द कुन्द आदिक महान, कविता आचार्य भये प्रधान।
सब जियके हितकारक सु जान, मैं नमन करूं जुग जोर पान॥२४॥
श्री जिनवाणीको कर प्रणाम, जाके प्रसाद बुध हो ललाम।
वैराग्य पत बीजन निहार, ग्रंथादि रचनमें प्रथम धार॥२५॥
श्री जिनमुखतैं उत्पन्न जान, भारती जगत् वंदित महान।
मैं वंदूं तुमको बार बार, मम ज्ञान देहु अज्ञान टार॥२६॥
जो बाह्याभ्यंतर ग्रंथ मुक्त, अर रत्नत्रय लक्ष्मी संजुक्त।
ते गुरु मुझपै हूजे दयाल, अपने गुण देकर कर निहाल॥२७॥

दोहा—शास्त्रादिकको नमन कर, जग मंगलके काज।
सर्व विघ्न नाशन अरथ, नमूं सकल जिनराज॥ २८ ॥

पद्धड़ीछंद-निज परि उपगार हिये विचार, पावन चरित्र वंदूं उदार । श्री ऋषभ जिनेश तनो महान, जो ज्ञान तीर्थ-कर्ता प्रमाण ॥ २९ ॥ श्री भरत आदि चक्री प्रधान, सत भ्रातायुत चरमांगि जानि, बाहूबलि आदि चरित बखान, सबके भवको बरनन सुजान ॥ ३० ॥

चोपाई-जिस चारित्रके भाषनहार, पुष्पदंत भुजबली निहार । सो मैं अल्पबुद्धि अब कहूं, हास्य तनो भय चेत नहीं लहूं ॥ ३१ ॥ तिन नमकरि जो पुण्य उपाय, सोई मुझकौ होय सहाय । लघु बिस्तार सहित मैं कहूं, मान हृदय मैं रंच न लहूं ॥ ३२ ॥

दोहा-सोई ज्ञान चारित्र है, वै ही काव्य पुराण ।
जो हितकारक जीवको, पढ़ो सुनो धर ध्यान ॥ ३३ ॥
सत्य कथा मैं कहत हूं, सुनो भव्य सुखदाय ।
सार प्रतिष्ठाको लहो, यही ग्रंथ जगमांहि ॥ ३४ ॥

सवैया-सर्व परिग्रह त्याग दियो जिन, त्यागी सर्व कषाय मुनीश। सर्व इंद्रियां जीत लई जिन, श्रुतसागरके पार जतीश ॥ तीन काल जाननको पंडित, दृढ़ चारित माह विख्यात । जगत जीवके हितके कर्ता, चाहत निज पूजा नहि ख्यात ॥ ३५ ॥ जिन शासन वत्सल आचारज, जिनके बचन परोक्ष प्रमाण । सत्य बचन महा बुद्ध युक्त हैं, धरमतनो नित करें बखान ॥ कवितादिकके गुणके आश्रय, है जिनकी कीर्ति विराजे स्वेत । जगतमान्य बहु तपकरि संयुत, ऐसे आचारज जयसेत ॥ ३६ ॥ निरभिमान करुणाकरि पूरित, सत मारग उद्योत कराह । बिन

इच्छा निःकारण बांधव, निःप्रमाद शुभ आश्रय थाय ॥ ग्रंथ आदि रचनेकी शक्ति, जिनके प्रगट भई उर मांहि । ते धर्मोपदेशके दाता, तिनके वंदे पाप पलाय ॥ ३७ ॥

दोहा—ऐसे आचारज कथित, पूरव ग्रंथ उदार । मैं अब बरनो बुद्ध रहित, वही करे उद्धार ॥३८॥ ज्ञानहीन व्रत सहित जो, करे धर्म व्याख्यान । पंडित पुरुषोंके विषै, होय तास अपमान ॥ ३९ ॥

चोपाई—ज्ञान सहित जो व्रतकर हीन, भाषे धर्म दया परवीन । तो सब नार पुरुष यह कहै, वरहै तो यह क्यों नहीं गहे ॥ ४० ॥ दर्शनज्ञान चारित्र भंडार, मुद्रा नगन धरें मुनि सार । जे बाईस परीसह सहै, तेई वक्ता उत्तम कहे ॥ ४१ ॥ मुनिवर विद्यमान नहीं दिखे, तो सरधानी श्रावक मुखे । सुनये आगम धर्म पुराण, जासे होवे निज कल्याण ॥ ४२ ॥ अरु श्रोता कैसो यक होय, गुरुको कहो विचारे सोय । सारासार विचार कराय, सार ग्रहे जु असारत जाय ॥४३॥ खोटी मतिको त्यागी सोय, गुण अनुरागी निश्चय होय। धर्म शास्त्र सुनिने परवीन, जिनमतकी परभावन कीन ॥४४॥ इत्यादिक गुण पूरण होय, उत्तम श्रोता कहिये सोय । उत्तम कथा सुने बुद्धवान, जो हिंसादिक गुणजुत ठान॥ ४५ ॥

पद्धड़ी छन्द—गौमृतका छलनी महिष हंस, शुक सर्व छिद्र घटसम विध्वंस । फुन डांस जोक अरु मार्जार, बकरा बगला जु सिला विहार ॥ ४६ ॥ इम श्रोता चौदह भेद जानि, उत्तम

मध्यम जु जघन्य मान । जो घास खाय अरु दुग्ध देय, गौ सम श्रोता बहु पुन्य लेय ॥ ४७ ॥ पै वार मांह तैं दुग्ध पीय, सो हंस सया श्रोता सु धीय । यह दो श्रोता उत्तम सु जान, अरु मध्यम मृतिकाके समान ॥ ४८ ॥ बाकी ग्यारह सो अधम जान, इम श्रोता भेद कहे बखान । जो श्रवण विषै प्रीति महान, शुभ अर्थ तनी धारण सु जान॰॥ ४९ ॥ शुभ श्रोताके आगेर वन्न, सतगुरको भाषो होय धन्न । जैसे मणी कांचनके मझार, शोभा धारे अत्यन्त सार ॥ ५० ॥ वर कथा पढ़ो तुम भव्य जीव, जो सकल तत्व दरसा तदीव । षटद्रव्य पदारथ नव स्वरूप इन सबको जामें है निरूप ॥ ५१ ॥ जहां पुण्य पापका फल अपार, तप ध्यान व्रतादिकका विचार । संजम तपको कीनो बखान सो कथा सुनो तुम पाप हान ॥ ५२ ॥ जहां तप कर साधु मोक्ष जाय, कितनेयक सुर पदकी लहाय । जहां यह वरनन हो पुण्यदाय, सो कथा सुनो नर जन्म पाय ॥५३॥ जहां चौवीस तीर्थंकर पुराण, अरु चक्रवर्ती बलभद्र जान । वर मांगिनको जहां कथन होय, सो धर्म कथा तुम सुनो लोय ॥ ५४ ॥ जहां राग भावको ह्व विनाश, संवेग भावका जहां प्रकाश । शुभ भावनतैं सो सुन कथान, वैराग्य तनी जननी बखान ॥ ५५ ॥ जिस सुनतैं पातक नाश होय, शुभ पुण्यबन्ध कारण सु जोय । जिस सुनने सेती वृद्ध होत, सम्यक्त ज्ञान चरित उद्योत ॥ ५६ ॥ इत्यादिक गुण पूरण उदार, सत् कथा सुनो जो जिन उचार । जो सत्य धर्म कारण बखान, शृङ्गारादिक रसकी त्यजान ॥ ५७ ॥

दोहा—जिस कर आरत रौद्र हैं, शुद्ध ज्ञान नस जाय।
युद्धादिक वरनन कहो, सो विकथा दुखदाय ॥५८॥
द्रव्यक्षेत्र अरु तीर्थ शुभ, काल भाव फल जान।
प्रकृति अंग यह सात हैं, कथातने पहचान ॥५९॥
चौपाई—द्रव्य जीवादिक जानो भाय, क्षेत्र लोक तीनों सुखदाय।
तीर्थनाथ कर रचित जु होय, सोई तीरथ जानो लोय ॥६०॥
भूत भविष्यति वर्त सु मान, यही तीन काल पहिचान।
फल तत्वोंका जानन होय, ज्ञायक भाव सदा अवलोय ॥६१॥
ये ही सातों अंग निहार, कथातने बहु सुख दातार।
जो जिस औसर कहनो होय, दिखलावे अघ-तमको खोय ॥६२॥
वक्ता श्रोता कथा सुजान, इनके गुण समझो बुद्धवान।
जगत गुरुकी कथा महान, धर्म तनी माता पहचान ॥६३॥
जो संवेग उपावन भान, सो भव जीव सुनो धर ध्यान।
जा फलसे सुरगादिक पाय, अनुक्रम शिवपुर माह वसाय ॥६४॥
ये ही जंबूद्वीप महान, जंबू वृक्षन कर द्युतिमान।
लक्ष महा योजन विस्तार, द्वीप समुद्रनके मध्य सार ॥६५॥
तामध्य नाभि समान बखान, मेरु सुदर्शन शोभावान।
एक लक्ष योजनको उच्च, चैत्यालो सोहै अति स्वच्छ ॥६६॥
मेरु सुदर्शन पश्चिम भाग, क्षेत्र विदेह धरे सोभाग।
जहां तीर्थंकर विहरें नित, मुनन उपदेश देय शुभ चित ॥६७॥
जहां मुनि तपकर होत विदेह, तातैं नाम सार्थिक येह।
तिसकी उत्तर दिशा मझार, सीतोदा दक्षिण तट सार ॥६८॥

नीलाचल पर्वतके जान, उभै मालनी नदी बखान।
ताकी पूरब दिशा मझार, मेरु सुदर्शन पश्चिम सार ॥६९॥
गंधिल नाम देश पहचान, विश्व ऋद्ध भोगनको थान।
धर्मादिकको अतुल प्रभाव, स्वर्ग खण्ड मनु उतरो आय ॥७०॥

पद्धड़ी छंद—जहां वन थल सरिता पुर ललाम, कुकड़ा उड़ान तहां बसै ग्राम। सर्वत्र जु बिहरे जह मुनीश, धर्मोपदेश दाता मुनीश ॥ ७१ ॥ अति बैठे धर्म सु ध्यान लाय, अरु शुक्लध्यानको कर उपाय। जहां दिखे नाहि कुलिंग कोय, नाही कुदेवके मठ जु होय ॥ ७२ ॥

पायता छंद—पुर पट्टन खेटज जहां है, अरु द्रौण मटंवता तहां है।
अरु दुर्ग बनन कर सोहै, जिन चैत्यालय मन मोहै ॥७३॥
जहां हेम रत्नमय थाई, प्रतमा सुरनर सुखदाई।
बहुते नर रक्षा काजे, बहु आयुध धरे विराजे ॥ ७४ ॥
गृह गृहमें पूजा करहैं, नर नारी आनंद भरहैं।
अंग पूर्व प्रकीर्णक जानौं, जहां बुद्धजन करैं बखानौं ॥७५॥
तिनहीको भव नित सुनहैं, नहि और कुशास्त्र कुमुनहैं।
यति श्रावक धर्म जहां हैं, नहि और कुधर्म तहां हैं ॥७६॥
सत शील दयामय राजे, श्री जिनशासन छबी बाजैं।
चव संघ जहां शोभंते, नहीं अन्य मतांतर संते ॥ ७७ ॥

गीता छंद—क्षत्री सुवैश्यरु शुद्र तीनों वर्ण जहां नित वर्तते, तीर्थेश गणधर रहित गणना, विचरते जग वंद्यते ॥ बलिभद्र नारायण सु प्रतिहर, चक्रधारी जानिये। जहां कोट पूरब आयु

धनुषसौ, पंच काय प्रमाणिये ॥ ७८ ॥ जहां एक जैन सिद्धांत चर्ते, नाह कुत्सित धर्म है। सम्यक्त धर जिय मोक्ष पावें, जहां अविचल शर्म है ॥ तिस मध्य विजयारध सु पर्वत रूपमय शोभै महा। जिसकी ऊचाई पंचविंशत, दीर्घ योजनतैं कहा ॥७९॥

भुजंगप्रयात छंद—चतुर्थांश भूमध्य राजे जिसीका, नवोकूट सोभै सु सुंदर तिसीका। गुफा दोय बाजे दुश्रेणी बिराजे, तिनोंकी प्रभा देखके भर्म भाजे ॥ ८० ॥

मोतीदाम छंद—महगंधिल देशतनो बिथार, मानो नायनकौ गज उचार। पंचास परम योजन सुजान, भूमाह तास चौडो बखान ॥ ८१ ॥ निज लक्ष्मी कर गरविष्ट होय, कुलगिरकी हांमी करे सोय। दसयोजन ऊपर जाय देख, श्रेणी जहां दोय पड़ी बिशेख ॥ ८२ ॥ इक नव योजन चौड़ी बताय, द्वादश योजन लम्बी कहाय, पचपन पचपन नगरी बखान, नभिगामिनकी सास्वती जान ॥८३॥ यह नगरी स्वर्गपुरी समान, जहां खाई कोट लसे महान। जहां एक सहस गौंपुर प्रमाण, सत पंच लघु द्वारे सुजान ॥८४॥ द्वादश हजार पथ सोभमान, ये नगरी एकतनो बखान। इक कोट ग्राम जा संघ होय, सज्जन जन सेती भरे सोय ॥ ८५ ॥ उससे दश योजन और जाय, दो तरफ दोय श्रेणी लखाय। तहां व्यंतर पुर दैदीप्यमान, शुभ स्वर्णरत्नमय तुंग थान ॥ ८६ ॥ तहां योजन पंच उतंग जाय, शुभ कूट विराजित रश्मि थाय। तहां सिद्धकूट जिनवर सु थाम, मणि स्वर्णमई दैदीप्यमान ॥ ८७ ॥ जहां जिनवर

बिंब विराजमान, सब देव करैं तहां नृत्य गान। जहां चारण मुन विहरे सदीव, जहां ध्यान धरे नित भव्य जीव ॥ ८८ ॥ बाकी सब कूट रहे सु आठ, तहां व्यंतर देवन तने ठाठ। मणि कांचनकर दैदीप्यमान, तिन देवनतने अवास जान। ८९॥

दोहा—इत्यादिक बरनन सहित, विजयारध सोभाय। उत्तर श्रेणीके विषैं, अलका नगर बसाय ॥९०॥ जहां धर्मात्मा बसत हैं, करते पूजा जाप। सामायक मुनदान दे, हरते भव भव पाप ॥ ९१ ॥ केयक पात्र सुदानकर, लहे हैं अचरज पंच। और भव्य तिन देखके, करते धर्म सु संच ॥ ९२ ॥

चौपाई—तीन काल सामायक करै, दिव्य विमान माह संचरै। यात्रा पूजा करै सदीव, मेरु आदि मंदिर भव जीव ॥९३॥ मानुषोतरके मध्य सु थान, सब जिनवर अरु गुणधर मान। अरु मुनीश जिनप्रतमा जहां। कृत्याकृत्यम पूजे तहां ॥९४॥ नानाविध ले पूजा द्रव्य, भक्त करैं मोक्षार्थी भव्य। पर्वोंके उपवास सु करै, समकित सहित शीलव्रत धरै ॥ ९५ ॥ धर्म अर्थ अरु मोक्ष सुजान, तिन साधुनको चतुर सुभान। और शुभाचरनन कर सोय, धर्म दिपावे दुर्मत खोय ॥ ९६ ॥ याही धर्म तने परसाद, होय अनेक संपदा आदि। सकल सार सुख यासे होय, सब विद्या सिद्ध यासे जोय ॥ ९७ ॥ दीक्षा धर सन्यास सु गहैं, प्राण त्याग करि स्वर्ग हि लहैं। जावै ग्रीवक केई जीव, केई सर्वारथ सिध पीव ॥ ९८ ॥ केयक चरमांगी तप करै, स्व संवेद भाव उर धरै। सब कर्मनको करके नाश,

करैं मोक्ष थानकमें वास ॥ ९९ ॥ स्वर्ग मुक्त कारण जो धर्म, ताको सेवे खगपति पर्म। तहां राजा है अतिबल नाम, खगाधिपसे सेव्य ललाम ॥ १०० ॥ चरमांगी महा सील सुवान, सम्यग्दृष्टी भोगी जान। धर्म कर्ममें तत्पर सोय, साधर्मिनतैं वत्सल जोय ॥ १०१ ॥ दिव्य लक्षण कर संयुक्त, न्यायमार्गमें अति आशक्त। कीर्तिक्रांत संपदा सुजान, शोभादिक गुणकी हैं खान ॥१०२॥ मनोरमा नामा पट नार, सब लक्षण संपूर्ण निहार। धर्म कर्म कर सती बखान, नाम महाबल पुत्र सुजान॥१०३॥ रूप क्रांत लावण्य सु सार, सब ही आय लियो अवतार। बाल अवस्था तज गुणराम, जैन सु उपाध्यायके पास ॥१०४॥ पढ अनेक विद्या बुधवंत, कला विज्ञान अरु जैन सिद्धांत। इंद्र समान सु सुतको देख खगपति हर्षित भयो विशेष ॥१०५॥ पद युवराज सु दियो बुलाय, सब बांधवजनको सुखदाय। पुत्र सहित नृप सोभित भयो, जैसें रवितैं नभवर नयो ॥१०६॥

जोगीरासा चाल–इम अंतर खग काललब्धिवस, भवभोगन वैराजे। जगत विभूति अथिर सब लखके, आतमरसमें पागे ॥ विषयोंमें आशक्त होयके, काल बहुत मैं खोयो। संजम धर निज काज न कीनों, सुखको बीज न बोयो ॥१०७॥ विषय चाहका दुख बुरा है, प्राण हरे निश्चयसे। दाह क्लेश आरतको दाता, भरो हुवो दुःख भयतैं ॥ जहर पुष्पवत दुखदायक है, अघको पुंज बखानो। विषधर सम भोग बुरे हैं, अनरथ कारण जानो ॥१०८॥ सेवत सेवत तृप्त न होवे, हो सुखकी क्या

आसा । देह अपावन अशुचि घिनावन, निंद्य वस्तुको वासा ॥ यह शरीर संसार बढ़ावे, बहु दुःख वारध जानो, कर्मबंधको मूल यही है, यातैं बुद्ध बखानो ॥१०९॥ राजभोग स्त्रीके कारण, मूरख बंध फंसे हैं । बांधव बंधन सम निश्चयसे, संपत विपत बसे हैं ॥ राज्य धूल सम पापमई है, चिंता दुक्ख बढावे । योवन जीवन धन बिजलीवत् क्यों प्राणी सुख पावे ॥११०॥ नहीं किंचित है सार जगतमें, सर्व जिनेश्वर जानो । मोक्ष हेत रत्नत्रय साधो, यही यतन उर आनो ॥ राज छांडके दीक्षा धारूं यह नृपने उर धारी । पुत्र बुला अभिषेक कराकर, सौंपी संपत सारी ॥ १११ ॥ शीघ्र सु वनमें जाके खगपति, तृणवत् ऋद्ध सब त्यागी । अंतर बाहिर परिग्रह सब तज, शल्य रहित बड़भागी ॥ बहु विद्याधर संग लेयकर, जैन सु दीक्षा धारी । स्वर्ग मुक्तकी जननी जानो, कर्महान सुखकारी ॥११२॥ पंच महाव्रत धार जतीस्वर, सुमति गुप्तिको धारैं । अष्टाविंशत मूल गुणनियुत, उत्तर गुण विस्तारे ॥ ग्राम देशमें विहर तपोधन, कानन माह बसंते । द्वादशांगको पढ़त निरंतर, आतम ध्यान करंते ॥ ११३ ॥ जिन स्वरूप धर निप्रमाद ह्वै, इन्द्री पंच दमंते । द्वादश विध तप तपे निरंतर, गिरकंदर निवसंते ॥ ध्यान खड्ग कर कर्म रिपु हत, केवलज्ञान उपायो । सुर असुरन कर पूजित ह्वैके, अजर अमर पद पायो ॥ ११४ ॥

पद्धड़ी छन्द-अब महाबल नामा नृप उदार, चारों मंत्री युत राज धार । तिनके अब नाम करूं बखान, इक महामती

संभिन्न जान ॥ ११५॥ शुभमति स्वयंबुद्धि महान, ता माहि स्वयंबुद्ध जैन मान। सम्यग्दृष्टी बहु गुण निधान, व्रत शील युक्त अति बुद्धिवान ॥११६॥ बाकी तीनों हैं दुराचार, मिथ्या कुमार्गकी पक्ष धार। जैन धर्म बहिरमुख है सदीव, नास्तिक्य पाप मंडित अतीव ॥ ११७॥ ते राज भार धारंत धीर, चारों मंत्री सब हरत पीर। नृप काम भोग भोगे गहीर, निज इच्छा-पूर्वक धीर वीर ॥ ११८ ॥ पूरव भवमें जो पुण्य कीन, तिस हीको भोगे नृप प्रवीन। विद्या विभूत संपत निधान, बिन धर्म जु भोगे हर्षमान ॥ ११९ ॥

चौपाई—इसप्रकार शुभ कर्म पसाय, राजलक्ष्मी नृप भोगाय। खेचरपतिनि कर सेवित सदा, फलो पुन्यतरु ये सर्वदा ॥१२०॥ धर्म जगत सुख कारण जान, सब दुखहर्ता याहि पिछान। धर्म तनो है क्षमा सुमूल, ताकरके हत कर्म्म स्थूल ॥ १२१॥

मालनी छंद—जिनवर वृषभेष पुन्यमूर्त्ती महात्मा, तसु विशद चरित्र जो पढ़े पुन्य आत्मा। तिन घरि मध होवे रिद्धि सिद्धि सुबुद्धी। सुख समुद्र बढ़ावे ज्ञानकी होत लब्धी ॥१२२॥

पद्धड़ी छन्द—तुमसी तुलसी न विभूत कोय, बुद्धसागर वर्द्धनचन्द्र जोय। सो अब मुझको दीजे दयाल, भव बाधा मेरी टाल टाल ॥ १२३ ॥

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचित श्रीवृषभनाथचरित्रसंस्कृत ताकी देशभाषाविषै इष्टदेवनमस्कार करण महाबल खगेंद्र-राज वर्णनो नाम प्रथम सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग।

वृशेश लोके शंकर वृषभ चिह्न पग त्रिषे, भजे तोको योगी चित्त विमल होके तुम लखे। सबै कार्या त्यागे बन गिर गुफा माह निवसे, विरागी हो छोड़े सकल अघ सर्वे-द्रियकसे ॥ १ ॥

पद्धड़ी छन्द–एक औसर राजा अति उदार, सिंहासन पै राजे सुसार। सेनपति श्रेष्ठी अरु प्रधान, सब वर्ष वृद्धको हर्ष ठान ॥ २ ॥ बहु भूपनकी आई सु भेट, तिसको लख हर्षित भयो खेट। गंधर्व गान गावें अपार, आनंद सहित तिष्ठे उदार ॥ ३ ॥ देखो राजाको प्रीतवंत, तब स्वयंबुद्धि हित सो भनंत। सुनि स्वामि मेरे वचनसार, हितकारी अरु अघके प्रहार ॥ ४ ॥ यह खगपतिकी लक्ष्मी महान, पाई सब पुण्य सु योग जान। ये पांचौं इन्द्री तने भोग, तुम पाये हैंगे पुण्य योग ॥ ५ ॥ धर्महितैं इष्ट सु प्राप्त होय, अरु काम सुखादिक भी सु जोय। तातैं कर प्रीत जजो महान, जिस धर्म थकी हो मोक्ष थान। ६॥ सत भोग रोज संयत् प्रताप, उत्तम कुलमें ले जन्म आय। वपु दिव्य सु सुख हावे महान, पंडित चिर-जीवी पूज्यमान ॥ ७ ॥ सब जनमनकौं प्रिय होत जान, यह धर्म तरोत्तर फल महान। नहीं मेघ बिना कहीं बीज होय, नहीं बीज बिना अंकूर जोय ॥ ८ ॥ तप बिना कर्मकौं अन्त नांह, बिन रत्नत्रय नहि शिव लहाय। अनुकंपा बिन नहीं धर्म होय, नहीं कीर्ति न शुभ आचरण जोय ॥ ९ ॥ अरु

धर्म बिना सुख होत नाह, तातैं भव नित दुखको कराहि। धर्म तनो मूल दया सु भान, शुभ सत्य शीलव्रत आदि जान॥ १०॥ इम दया तनौं ऐसो प्रभाव, केवल दृग ज्ञान तनो लखाव। दम दया क्षमा अरु सौच जान, व्रत तप अरु शील करो सुदान॥ ११॥ मन वचन कायको कर हि शुद्ध, वैराग गहो लह धर्म बुद्ध। यह लक्ष्मी चपला सम बखान, जग छलत फिरत कुलटा समान॥ १२॥ इम थिर करनेकी चाह होय, तो धर्म गहौ सब भर्म खोय। इम स्वामी हितकारक महान, वच पंथ्य तंथ्य कल्याण दान॥ १३॥ वृषकारी वच कह स्वयंबुद्ध, फिर मौन ग्रही जिस हृदय शुद्ध। वृष वच सुनके तीनों प्रधान, महामत्यादिक बोले अयान॥१४॥ तीनों दुर्गति गामी बखान, मत धर्म रहित संयुत कुज्ञान। जो धर्मी हो तो धर्म होय, जहां जीव नहीं फल लहे कोय। १५॥ पृथ्वी अप तेज पवन आकाश, इनका संजोग चेतन प्रकाश। जिम मद सामग्री भले होय, मदराकी शक्त प्रकाश जोय॥ १६॥ फिर धर्म्म कारणको काज कांह, नहिं पुन्य पापरजन्म नांह। जल बुद्ध दवत यह जीव जान, वपु क्षयतैं जीवनसे प्रमाण॥ १७॥ तिस कारण इन्द्री सुःख छोड़, तप तपवो जानो वृथा घोर। मुख आगे आयो ग्रास खोय, कर अंगुली चाटत लुब्ध होय॥ १८॥ तिन मंत्रिनको सुनिके बखान, मत भूतवाद आश्रित सुजान। तब बोलो मंत्री स्वयंबुद्ध। तिन मत खंडनिकौं विपुल कद॥ १९॥ हे राजन

सुनो सुनृप स्वरूप, है जीव अरु धर्म अधर्म भूप। परलोक माह संसह सु नाह, फल पुन्य पापको सब लखाह ॥ २० ॥ सुख दुःख अनेक प्रकार जान, ये बुद्धवान करहैं श्रद्धान। यह बात प्रसिद्ध जगके मझार, तिसके सुन नव दृष्टांत सार ॥२१॥

चौपाई—जीव मात्र पे ये दृष्टांत, मद्य तनौ बहु अघकी पांत। सो असत्य बुद्धजनकर निंद्य, जो मतिबाला बके स्वछन्द ॥ २२ ॥ उस सामग्रीमें मद शक्ति, प्रथमहि थी सो हो गई व्यक्त। पुद्गलको चेतन नहि होय, चेतन विना ज्ञान नहि जोय ॥ २३ ॥ जीव धर्म अरु जगत सु ज्ञान, इस पर लोकतनो व्याख्यान। जा दृष्टांतसे निश्चय होय, ताह सुनो सबनन भ्रम खोय ॥ २४ ॥ जो यह जीव अनादि न होय, स्तनपै पान करै शिशु कोय। देखो तप अज्ञान प्रभाव, मरकर होहै राक्षस राव ॥ २५ ॥ दो चारक जिय सांप्रति भये, जीव बिना राक्षसको थये। जीव भवांतर ज्ञान सुहोय, पृथ्वी तल प्रसिद्ध यह जोय ॥ २६ ॥ जीव नहीं था तौ भव ज्ञान, होय किसे तुम यही बखान। पिता न सम गुण पुत्र लहाय, यही बात प्रत्यक्ष लखाय ॥ २७ ॥ सकल जीव कर्मनके बसि, क्यों कर हो जावे सादृश्य। एक धर्म कर सुरग सु जाय, एक पाप कर नर्क सिधाय ॥ २८ ॥ धर्म धर्मके अंग अभाव, नहि हो सकते करो लखाव। मृतक माह ये पांचौ होय, क्यौं नहि जीवे बैठो सोय ॥ २९ ॥ ऐसे नव दृष्टांतसु कहे, जीव अस्ति कारण सरदहे। धर्म पापकौ फल सब जान, ये बुधवंत करौ

सरधान ॥ ३० ॥ ऐसे अब लोक मझार, धर्म धर्म फल नैन निहार, सुख दुख भोगे सब ही जीव, ये प्रत्यक्ष तुम लखो सदीव ॥ ३१ ॥ कोयक पुन्य उदै धारंत, दिव्य पालकी चढ़ चालंत। केई ताको लेकर चले, भोगत पाप वृक्षको पले ॥ ३२ ॥ को धर्मात्म धर्म पमाय, गज अस्वादिकपै चढि जाय। कैयक आगे दोडे नरा, पापतनो फल परतछ करा ॥ ३३ ॥ बिन उद्यम केई लक्ष्मी पाय, केई श्रमण करत न लहाय। केई पुन्यातम भोगे भोग, सुखसागर मध्य रमत अरोग ॥ ३४ ॥ केई दुक्ख करि पूरित रहे, रोग क्लेश आदिक दुख सहे। धर्म पापको फल इम जान, बुधजन धर्म धरो अघहान ॥ ३५ ॥ इत्यादिक दृष्टांत दिखाय, ज्ञान सूर्यकर तिमिर नसाय। राजा और सभाजन सबै, तिस वचनामृत पीया तबै ॥ ३६ ॥ जीवादिक दृढ़ करने काज, सुनये एक कथा महाराज। देखी सुनी अनुभवी थाय। कथा प्रमाण कहूं हितदाय ॥ ३७ ॥ तुमरे बंस विपै जो राय, तिनकी कथा सुनौं सुखदाय। ध्यान शुभाशुभको फल जोय, कहूं सुनौ तुम राजा सोय ॥ ३८ ॥ तुमरे वंश विषै राजान, अरविंद नाम खगाधिप जान। विपयशक्त प्रतापी थाय, वृत शीलादिक दूर बगाय ॥ ३९ ॥ विजयादेवी राणी तास, दिव्य रूपमय आनंद रास। हरिश्चंद्र कुरुश्चंद्र सयान, ताके दो सुत उपजे आन ॥४०॥ बहु आरंभ परिग्रह धंध, रौद्रध्यान कर कर्महि बंध। विषयाशक्ति होय अति राय, धर्म वृतादिन भावन भाय ॥ ४१ ॥ लेश्या कृष्णरु तीव्र कषाय, ता करि कर्म बांध दुखदाय। नर्क आयुको

बांध खगेश, जहां दुख हैंगे अधिक विशेष ॥ ४२ ॥ कबहूक पाप उदै भयो आय, कुमरण निकट हुवौ दुखदाय । दाहज्वरसे तप्त शरीर, दुःसह दुख व्यापी बहु पीर ॥ ४३ ॥

पद्धड़ीछन्द–चंदन कुंकम कर्पूर सार, बहु तनमैं लायौं तापहार । तन थिरता नहि धारत नरेश, बहु बढा दाह व्यापौ कलेश ॥ ४४ ॥ तिस नृपकी जो विद्या महान, सो विमुख भई अति ही सुजान । पुण्य क्षयतैं इम जगत मद्ध, नस जावैं सब संपत सु रुद्ध ॥ ४५ ॥ नृप गात्र विषैं वेदन असार, तिस दाह थकी विह्वल अपार । युगसुतको तब लीनो बुलाय, तिनसे तब ऐसैं बच कहाय ॥ ४६ ॥

नाराचछंद–सुनौं सुपुत्र सर्व अंग तापमें जु हो रहा, सुचंदनादि कुंकुमादि सीत वस्तु सब गहा । तटस्थ सीता नदिके प्रदेश सर्व सीत है, तहां मुझेसु लेचलो जहां न कोई भीत है ॥४७॥

चोपाई–जहां कल्पद्रुम है अधिकाय, सीत पवन कर ताप नमाय । वहां यह दाह सर्व क्षय होय, विद्या कर ले चाले मोह ॥ ४८ ॥ इम बच सुनकरि पुत्र महान, नभ चालनकों उद्यम ठान । विद्या विमुख भाव तब जोय, पुण्यक्षयतैं कछु नहीं होय ॥ ४९ ॥ इम आगे अब सुनो बखान, दोय विस्मगा लडी महान । पूंछ कटत तिम रक्त जु झरो, सो राजाके मुखपै परो ॥ ५० ॥ तिस पडनेतैं साता भई, दाह शांत थोडोसी थई । तबै विभंगावधि उपजाय, नर्कतनो कारण दुखदाय ॥ ५१ ॥ तिस करके जानों मूढ थान, कुरविंद सुतसे वचन बखान ।

इस वनमें है मृगकी रास, तिनको बांध लगाके पास ॥ ५२ ॥ मृगके रक्त तनों सर भरो, मेरी इच्छा पूरण करो। मैं जल-क्रीडा करहूं तहां, नातर मर्ण होय मम यहां ॥ ५३ ॥ इम वच सुन सुत वनमैं गयो, बहुत हिरण तहां देखत भयो। पासी करके पकडे सोय, यथा पारधी धीवर होय ॥ ५४ ॥ तिसकौं पाप करत मुन देख, तीन ज्ञान संजुक्त विशेष। तोह पिताकी थोडी आयु, बेमतलब क्यों पाप कमाय ॥ ५५ ॥ तेरो पितु करके अपध्यान, रौद्रध्यान मर नर्क हि जात। तुम क्यौं वृथा पापको करो, निंद्य नर्कमैं जाके पड़ो ॥ ५६ ॥ तब वह कहत भयो नृप पूत, मोह पिता त्रय ज्ञान संयुत। छिपी भई सब जानें सोय, कैसे नर्कगमन तसु होय ॥ ५७ ॥ तबसौं मुनवर कहतो भयो, तोहि पिता अब पंडित कहो। पाप हेतकौ जानत सोय, पुन्य वक्तको ज्ञान न होय ॥ ५८ ॥ तुम जाकर नृपसे पूछाय, वनमें क्या क्या वस्तु रहाय। जो वा हमकौ देय बताय, तौ ज्ञानी नहिं झूंठौ थाय ॥ ५९ ॥ ये सुनि नृप सुत गृह पथ लीन, जाय पितासौं पूछन कीन। मृग सिवाय वनमें कछु और, क्या क्या है तुम कहौ बहोर ॥ ६० ॥ तब नृप कहौ और कछु नाह, जब इन मुन वच निश्चय थाय। लाख रंगकी वापी भरी, ता मध्य पापी क्रीड़ा करी ॥ ६१ ॥ तास प्रवेश करंत इम जान, मनु वैतरणी करे सनान। तिममैं न्हाके कुरले करै, कुबुद्ध सहित बहु आनंद धरे ॥ ६२ ॥ जानो लाख रंग दुख-दाय, क्रोध अगनकर प्रजली काय। पुत्र मारनेको दोडियो,

गिरो छुरीने उर तोडियो ॥ ६३ ॥ रौद्रध्यानसै पाई मींच, नर्क गयौ अघ तरुकौं सींच। इसी कथाके जाननहार। वृद्ध सुषग तिष्टत इसवार ॥ ६४ ॥ एक कथा तुम और ही सुनौ, देखो सुनी अनुभवी गुनौ। तुमरे वंश विषैं राजान, दंड नामा एक खगपति जान ॥ ६५ ॥ देवसुंदरी राणी मान, मणमाली सुत तास पिछान। पद युगराज तासको दियो, आप कामसुख भोगत भयो ॥ ६६ ॥ नेम व्रतको नाम न कोय, मायाचार कुटिलता जोय। खोटे कर्ममें रत होय, तिर्यग आयु खग बांधी सोय ॥ ६७ ॥ आरत ध्यानथकी सो मरो, पापथकी अजगर अवतरो। नृपके भयो खजाने मांह, ताकौं जातिस्मर्ण लिहाय ॥ ६८ निज सुत विना न घुसने देय, और जाय तिसकौं डस लेय। हृदबारण नामा मुनिराय, अवधिज्ञानलोचन हितदाय ॥ ६९ ॥ मणिमाली नृप तिनकौं देख, नम करि हर्षित भयो विशेष। अजगरकौं वृतांत सुनाय, तब मुनिवर तिस भेद बताय ॥७०॥ तुमरो पिता दंड नृप थाय, पाप थकी अजगर तब पाय। इम बच सुन अजगरके पास, गयो सु राजा धरे हुल्लास ॥७१॥ कहत भयो सु पिता तुम सुनौं, तुमने लोभादिक नहि हनौं। विषयाशक्ति रहै तुम सदा, माया क्रोधादिक धर मदा ॥७२॥ तिस करके खोटी गति पाय, सकल आपदाकौं समुदाय। विषयनकौं सुख निंदत जोय, कालकूट विष सम अवलोय ॥७३॥ परिग्रह इच्छा दुखकी दान, कर संतोषत जो बुधवान। खोटो ध्यान दुखाकर थाय, धर्मध्यान कर ताह नसाय ॥७४॥

धर्म अहिंसा लक्षण जान, ताइ भजो तुम पुण्य निधान।
पंचेन्द्रीके सुख सब त्याग, पंच अणुव्रत धर बड़ भाग ॥७५॥
जो दुर्गति बारभके पार, करे शीघ्र शुभ गतिमें धार।
पूर्वोपार्जित पाप जु हरै, सुरग मुकतकी प्रापत करै ॥ ७६ ॥
इस वृष बिन नहि धर्म सु कोय, जीव उधार जासमे होय।
दुर्गति दुखसे रक्षा करै, स्वर्ग मुक्त मारग संचरै ॥ ७७ ॥

दोहा–सुत संबोधन वचन सुनि, अजगर जगो महान।
लख संसार विचित्रता, निज निंद्या बहु ठान ॥ ७८ ॥
गुरु वच सुन व्रत धारकर, परिग्रह इच्छा त्याग। श्रावकके व्रत धारकर, धर्मध्यान चित पाग ॥ ७९ ॥ आयु तुछ लख छांडियो, चव विधिको आहार। मर्ण समाधि थकी चयो, व्रतफल पायो सार ॥ ८० ॥ प्रथम स्वरगमें देवसो, भयो महर्धिक सार। अवध ज्ञान परभावतैं, पूरब भव सु निहार ॥८१॥ सुर आयो इस अवनिपै, मणि मालीकों पूज। रत्नहार देतो भयो, मनमें आनंद हूज ॥ ८२ ॥ सो वो हार प्रत्यक्ष है, राजाके गल मांह। सर्व लोक इस कथाकों, जानत हैं शक नाहि ॥ ८३ ॥ आगें सुन एक और कथानक, ताह सकल जाने धीमान्। जिसके देखनहारे लोय, वृद्ध सु खग किंचित अब होय ॥ ८४ ॥

गीता छन्द–भूप सतबल नाम जानौं नृप पितामह थायजी। सो एक दिन भव भोग सुखसे हो वैराग्य सुभायजी। तुमरे पिताको राज भार विभूत सब सौंपी सही, सम्यक्त ज्ञान सु शुद्ध करके

सर्वे श्रावक व्रत ग्रही ॥ ८५ ॥ मन वचन काय त्रिशुद्ध करके, शक्ति सम निज तप करौ। पुन देव आयु सुबुध कीनौं, सदाचार सबैं धरो ॥ पुन अन्त सल्लेखन जु करके, वपु कषाय जु कृष करे। दीक्षा जु धार समाध युत, तज प्राण सुरग सु अवतरे ॥ ८६ ॥ चौथो सुसुर्ग महेन्द्र नामा, तहां महर्द्धिक अवतरौ। जहां सात सागर आयु पाई, धर्म्म ध्यान सु फल वरौ ॥ तुम बालवय क्रीड़ा करनकौं, चार मंत्री संग लिये, आनंद युत बहु केल कीनी, मेरु पर्वतपैं गये ॥ ८७ ॥

छंद पायता—सो अमर जिनालय आयो, जिन पूज सु चित हर्षायो। तुमकौं मनेहसे देखा, उरमैं धर हर्ष विशेखो ॥८८॥ सो कहत भयो इम वाणी, सुन पुत्र मोख सुखदानी। जो स्वर्ग मुक्त सुख देवे, सो धर्म्म तू क्यों नहीं सेवे ॥ ८९ ॥ समरथ सब काज करनकौ, सो धर्म न भूलो छिनकौ। तुमकौं मैं राज सु दीनौं, वृष फलको स्वर्ग सु लीनौं ॥ ९० ॥ ऐसो जिन धर्म सु जानौं, शिवदाता भव हिय आनौं। अब और कथा सुन लीजे, जिस सुनतैं सब अघ छीजै ॥ ९१ ॥ बहु खगपति नृप कर वंदित, तुम पढ़वाया अति पंडित। तिस नाम सहसबल जानो, शिवगामी बहु गुण खानो ॥ ९२ ॥ सो एके दिन बड़ भागे, भव भोगन सो बैरागै। सतबल निज पुत्र बुलायो, सब धन तसुकौं सौंपायो ॥ ९३ ॥

चौपाई-बाह्याभ्यंतर परिग्रह त्याग, स्वर्ग मोक्ष कारण बड़ भाग। अर्हत दीक्षा धारण करी, मुदित होय वृषधी अनुसरी

॥ ९४ ॥ घोर तपस्या करते भये, शुक्लध्यान असि करमें लये। घाति कर्मको करके नाश, केवलज्ञान कियो परकाश ॥ ९५ ॥ तीन जगतमें दीप समान, देवादिक लष पूजन ठान। शेषकर्म हत तनको त्याग पहुंचे मोक्षमाहि बड़भाग ॥ ९६ ॥ तैसे ही तुम पिता महान, राजभोग दुखदायक जान। है विराग जिन दीक्षा धरी, तुमको राज दियो उस घरी ॥९७॥ तप कर घाति कर्म क्षय ठान, उपजायो वर केवलज्ञान। शेषकर्म हत शिवको गये, द्वैकल्याणक सुर पूजये ॥ ९८ ॥ तिनकी केवल पूजा काज, देवागमन भयो महाराज। हमने तुमने सब देखियो, सब प्रत्यक्ष अवनपे भयो ॥ ९९ ॥ धर्म्म अधर्म्म तनो फल येह, प्रगट निहारो सबने तेह। तुमरे वंश विषैं भूपाल, तिनकी कथा प्रसिद्ध गुणमाल ॥ १०० ॥ इन दृष्टांतको मतलब येह, शुभ अरु अशुभ कहो फल तेह। ध्यान शुभाशुभ जैसो कियो, तैसो ही फल ताने लियो ॥ १०१ ॥ रौद्र ध्यान वस नर्क हि गयो, तिर्यग दुख आरतते लियो। धर्म ध्यानसे सुरग गत जाय शुक्ल ध्यानसे शिवपद पाय ॥ १०२ ॥ आर्त्त रौद्र दोय षोटे ध्यान, दुर्गति ले जावे दुख खान। तिनको तज शुभ ध्यान सु करो, धर्म शुक्ल बुध जन आचरो ॥ १०३ ॥ धर्म पापको बरनन सुनों, सकल सभाजन मनमैं गुनों। दृष्टांतनिकरि जानो यही, जीव पाप वृष है सब सही ॥ १०४ ॥ खोटे मति खोटे बच छोड़, पकड़ो पांचों इन्द्री चोर। तुम बुधवान विचारो यही, मुक्त हेत वृष धारो सही ॥१०५॥ इम मंत्री बच सुनिकर जबै, कथा धर्मादिक लक्षण सबै।

सारी सभा मुदित तब भई, मंत्रीकी थुति करती हुई ॥१०६॥

पद्धड़ी छन्द—यह स्वयं बुद्ध मंत्री महान, बुधवान सर्व आगम सुजान। जिन भक्ति सदाचारी महंत, स्वामी हित-कारक बच कहंत ॥ १०७ ॥

सवैया २३—खगाधीश तिस बचको सुनिकरि, प्रीत सहित परसंसा कीन। स्वयं बुद्धकी पूजा करके, बहु स्तुति कीनी परवीन ॥ एकै स्वयं बुद्ध सुमंत्री, जिन चैत्यालय भक्ति सुलीन। मेरु सुदर्शन गिरके उपरि जिनबिम्बकी पूजा कीन ॥ १०८ ॥ भद्रशाल अरु नंदन वनमैं, बन सौमन तसु पांडुक जान। सर्व जिनालय पूजा कीनी, भक्त सुकर बैठो बुधवान ॥ अब आगे सुनि पूर्व विदेह, धर्म कर्म कर्ता शुभ थान। सीता नदीसु उतर तटमैं, कक्षा नामा देश बखान ॥ १०९ ॥

चौपाई—तहां अरिष्टा पुरी मझार, नाम युगंधर तीरथकार। तीन जगतके भव्य सु जिने, नर सुर मिल सब पूजे तिने॥११०॥ समोसरण कर मंडित सोय, धर्म्मोपदेश सुनें सब लोय। तिन जिनेन्द्रके वंदन काज, आयो चारणयुग ऋषराज ॥ १११ ॥ आदितगत सु अरिंजय जान, दौनौं कुलके नाम महान। तीन जगतकर पूजित देव, तिनकी युग मुन कीनी सेव॥११२॥ पूजा कर नभ मारग आय, मंत्री लख उठ सन्मुख जाय। जब दौनौं मुनिवर बैठाय, मंत्रो पुन पुन नमन कराय ॥११३॥ अस्तुति पूजा करतो भयौ, मनमांहि बहु आनंद लयौ। हे भगवत् जग वंदन योग्य, तुमरौ ज्ञान परार्थ मनोग्य॥११४॥

कछु यक प्रश्नसु पूछा चहूं, वृषकारक अघहारक कहूं।
हे स्वामी ममपत खगधीश, ख्यात महाबल जो अवनीश ॥११५॥
सो भवि है या अभवि बषान, धर्मग्रहण कब करहैं आन।
तब आदितगत चारण मुनी, अवधि ज्ञान धारी बहु गुणी॥११६॥
कहत भये तुम राजा सोय, निकट भव्य है संशय खोय।
तुमरे उपदेशनतैं मही, राजा धर्म ग्रहेगो सही ॥ ११७॥ जंबू
द्वीप भरत भुव मांह, त्रिभुवनाथ अर्चित सुषदाय। आदि
तीर्थंकर होय महान, दसमैं भव यह निश्चय जान ॥ ११८ ॥
स्वर्ग मुक्त मारग परकाश, जाय मुक्ति सब कर्म विनाश।
ये नृप पहले भवके मांह, निद्या निदान कियो शक नाह॥११९॥
इस खगके पूरब भव सुनौं, जो कछु बीते सो मैं भनौं।
तातैं भोग विमुख नहि होय, वृषमैं बुद्ध न धारे सोय ॥१२०॥
ये ही मेरु सुदर्शन जान, अपर विदेह लसे दुतवान। गंधिलदेश
महा विख्यात, सिंहपुरी नगरी अवदात ॥ १२१ ॥ तसु राजा
श्रीषेण महान, प्रिया सुन्दरी राणी जान। तिनके दो सुत
उपजे आय, जैवर्मा श्रीवर्मा भाय ॥ १२२ ॥

पद्धड़ी छन्द–श्रीवर्म्मा लघु सुत नृप निहार, सब जनको
प्रिय आनंदकार। फुन सब जनकौ अनुराग देख, दी राज्य
लक्ष्मी करभिषेख ॥ १२३ ॥ जैवर्मा दीरघ पुत्र सार, त्यागूं
सब परिग्रह इम विचार। मुक्तश्रीके वसु करण काज, धारु
दिक्षा भव समुद पाज ॥ १२४ ॥ मम मन भंग जिहविध न
होय, वैराग्य श्री उत्पन्न जोय। निज पाप उदै लखके सुजान,

वैराग्य भाव हिरदै बढ़ान ॥१२५ ये पाप महा दुखदाय जान, सब जीवनको बैरी महान । जबलौं जियकै अघ उदै थाय, तहां सुखको लेश नहीं रहाय ॥ १२६ ॥

जोगीरासा छन्द—संजम अस धारण करने, बिन कर्म अरि नहिं मरेहैं । अब तिन अघ नाशनके कारण, संजम धारण करे हैं ॥ इम चिन्तवन कर्‍यो भय्यो तम, गेहादिक सब त्यागे । गुरु स्वयं प्रभके ढिग जाके, ली दिक्षा बड़ भागे ॥ १२७ ॥

अडिल्ल—नव संजत मुन केशन लोचन करे जवै, पाप सर्प मनु बबई तज भागे तबै । तिम अवसरमैं महिधर नामा खगपती, जातो हुतो अकाश ताह लख ये यती ॥ १२८ ॥ करतो भयो निदान निद्य दुखदायजी, खगपति लक्ष्मी होय अपर भव मांहजी । तहांतैं चयकर राय महाबल थायजी, कृत निदान बस दोश भोगन तजायजी ॥ १२९ ॥ आज रातको स्वप्न लखे उसने सही तीनों मंत्री दुष्ट डबोवे मुझ मही । पंचू माहमें फंसों बहुत दुख पायही, स्वयं बुद्धने तुरंत निकालो आय ही ॥ १३० ॥ फिर करके अभिषेक सिंहासन थाप ही, एक सुपनो तो येह लखो नृप आप ही, दूजे स्वपने माह महाज्वाला लखी, विद्युत्पात महान सर्वजनको भखी ॥ १३१ ॥ रजनी अन्तमझार स्वप्न ये दो लखे, तिनके पूछन काज आगमन तुम दिखे । जब तक नृपन ही कहे कहो तुम जायजी, शीघ्रसु दो सुपननका भेद बतायजी ॥ १३२ ॥ तिनके सुनने मात्र प्रति अचरज करैं, सकल तुम्हारे बचनोंकै निश्चय धरै । पुन्य ऋद्ध तिस

भाव बढ़े निश्चै मही। आदि स्वप्नकौं फल उत्तम जानौं सही ॥ १३३ ॥

चौपाई–दुतिय स्वप्नको फल इम जान, एक महीना आयु प्रमाण। इम कह मुनि युग नभकौं गयै, मंत्री तिनको नमते भये ॥ १३४ ॥ स्वयं बुद्ध तब निजपुर आय, राय महाबलकौं सिर नाय। जो चारण मुनि कियो बखान, सो सब नृपसे भाखो आन ॥ १३५ ॥ मंत्री बच सुनिके तत्कार, अपनी आयु लखी तुछ सार। परम संवेग माह दृढ़ होय, इम विचार कीनो भ्रम खोय ॥ १३६ ॥ विषयाशक्ति माह मम आय, सकल गई सो कही न जाय। कोट भवन मैं दुर्लभ जोय, जिन वृष नरभव दीनो खोय ॥ १३७ ॥

पद्धड़ी छन्द–यह मंत्री मेरौ मित्र जान, मेरो हित वांछक है महान। मैं भव भोग विच मगन थाय, इन काढो मम वृष बच कहाय ॥ १३८ ॥ ये भोग भुजंगमकी समान, सब अनरथके कर्ता बखान। फुन ज्ञानीजन क्यों रचे जान, बुधबानन‍के सब त्याज्य मान ॥ १३९ ॥ इम देहीको पोखन कराय, सो ही सदोष जानौ सुभाय। जो सकल अशुच वस्तु बखान, तिन सबकौं खान शरीर जान ॥१४०॥ संसार दुख पूरित सु जान, नहि अन्त आदि इसकी बखान। जो कर्म्ममूल पराधीन होय, तिससेती कैसी प्रीति जोय ॥ १४१ ॥

सोरठा–धर्मरत्न सु चुराय, पांचों इन्द्री चौर यह। इने हते बुधराय, ये अभ्यंतर अरि महा ॥१४२॥ रामा नर्क दुवार,

बांधव दृढ़ बंधन समा। पुत्र प्राप्ति उनहार, गृह बंदिगृह सम कहो॥ १४३॥

दोहा—राज पापदायक कहो, सुत संखल सम जान। संपत थिर नहीं रहत है. चपलाकी उनमान॥ १४४॥

त्रोटक छन्द—विष मिश्रित अन्न समान गिनौ, सुख इंद्रियकौ जिनराज मनौं ये यौवन रोग सुपूर्ण सही. निज आयु मुख यमराज गही॥ १४५॥ नहीं किंचित सार असार सबै, तिहुंलोक विषै थिरता न कबै। इम चिंत नरेश विराग भये, जग भोग सुखादिक त्यागि किये॥ १४६॥

पायताछंद—तब अतिबल पुत्र बुलायो, सब राज तक्ष सौंपायो। निज गृह चैत्यालय मांही, तब शोभा अधिक कराई॥ १४७॥ अष्टाह्निक पूज कराई, जो स्वर्ग मुक्ति सुखदाई। सिद्धकूट जिनालय मांही, बहुविध तहां पूज रचाई॥ १४८॥ उपदेश स्वयं बुद्धी तैं, मन वचन काय शुद्धी तैं। सब त्याग परिग्रह कीनों, चारौं आहार तज दीनों॥ १४९॥ ह्वै सबसे ती वैरागी, ममता शरीरकी त्यागी। कच लोच कियो तज नेहा, दीक्षा धारी गुण गेहा॥१५०॥ सन्यास मर्ण कर भाई, चव आराधन सुखदाई। बहु यत्न थकी विध कीनो, वृष ध्यान मांह चित्त दीनो॥ १५१॥ सब अंग सू सूक गये हैं, चर्म अस्थि जु शेष रहे हैं। जो कायर जन भयदानी, ते परिषह सर्व सहानी॥ १५२॥ पण परमेष्टीको ध्यावो, निर विकलप चित रहावो। जो महाबली निज नामा तेह प्रगट करैं गुण धामा॥ १५३॥ बाईस दिवस तप कीनो, शुभ अंत सलेखन लीनों।

प्रायोपगमन सन्यासा, धारो तज तनकी आसा ॥ १५४ ॥ जप नमस्कार मंत्र हिको, ध्यायो आराधन चवकों। शुभ आशय पुन्य निधाना, बहु यत्नथकी तज प्राणा ॥ १५५ ॥ ईसान स्वर्गके मांही, तहां पुन्य उदै उपजाई। ललितांग नाम सुर जानो, श्रीप्रभ विमान शुभ थानो ॥ १५६ ॥ उत्पाद सेजपैं थायो, सम्पूर्ण सुयोवन पायो। शुभ एक महूरत मांही, सब कांति गुणादि लहाई ॥ १५७ ॥ दिव्य माला वस्त्र अभूषण, सुर दिये रहित सब दूषण। वह तेज मूर्ति इम जानो, सोवत उठ बैठो मानों ॥ १५८ ॥ तब कल्पवृक्षने कीनी, पुष्पनिकी वृष्ट नवीनी। दुंदभी नाम जो बाजे, स्वयमेव बजे दुख भाजे ॥ १५९ ॥ शुभ गंधित वायु चले हैं, जल कणयुत दुक्ख दले हैं। इत्यादिक अचरज देखे, जन्मत सुर हर्ष विशेखे ॥ १६० ॥

दोहा—इत्यादिक आश्चर्य युत, देव समूह नमंत। स्वर्ग संपदा देखके, चिंते सुर इस भंत ॥ १६१ ॥

गीताछंद-मैं कौन हूं किस थान आया, कौ सुखाकर देश है। किस पुन्यसे ये थान पाया, किस विभूत विशेष है ॥ त्रै जगतसार सुवस्तु दीखत, पैंड पैंड सवै यहां। दिव्य रूप धारक महादेवी, भोग कारण है महा ॥ १६२ ॥ इम चिंतवन करते सु करते, अवधिज्ञान उपायजी। पूर्व भवमैं तप तपौ, तसु फल फलौ सुखदायजी ॥ तब देवता सब एम जानौ, भयो हम स्वामी यहै। कर नमन बहुविध हर्ष मानौं, धर्मफल पायो कहैं ॥ १६३ ॥

पद्धड़ी छन्द—मैं धर्म सु फल साक्षात् पाय, इम लखके सुर नित धर्म ध्याय। अब धर्म सिद्ध कारण महान, जिन मंदिरमैं गयो पुण्यवान ॥ १६४ ॥ तहां पूजा कर फुनि नमन ठान, भक्ति स्तुति कर बहु पुन उपाव। फुनि अष्ट भेद ले द्रव्य सोय, संकल्प मात्र शुभ भये जोय ॥ १६५ ॥ बहु गीत नृत्य उत्सव सु ठान, शिवकारण पूजा कर महान। फुनि चैत्य वृक्ष ढिग जाय सोय, प्रतिमा पूजी पुन हर्ष होय ॥ १६६ ॥ निज स्थान मुदित होके सु आय, निज स्वर्ग संपदाको गहाय। जहां देवी हैं हज्जार चार, अरु चार महादेवी उदार ॥१६७॥ लावण्य रूपकी है सु खान, सब सुक्ख करन हारी बखान। एक स्वयंप्रभ नामा सु जान, अरु कनकप्रभा दूजी सु मान ॥ १६८ ॥ शुभ कनकलता तीजी गिनेय, विद्युत्तलता चौथी भनेय। जहां सप्त हस्तकौ है शरीर, तापे सुवर्ण सम जान वीर ॥१६९॥ बह सुरदेवी नित मीत ठान, इस संग रमें आनंद मान। शुभ लक्षण पूरण अंग थाय, जिस चक्षु रूपक मोही लहाय ॥ १७० ॥ अणमादिक ऋद्ध कर युक्त होय, त्रैज्ञान विक्रया ऋद्ध जोय। एक सहस वर्ष जब बीत जाय, अमृत अहार मनसा सु थाय ॥ १७१ ॥ अरु एक पक्षमें लेय श्वास, दस दिशकौ करत सुगन्ध वास। नित चढ विमान क्रीड़ा कराय, पर्वत वन उद्यानादि माह ॥ १७२ ॥ अर दीप समुद्र जो है असंख, तहां क्रीडा करत फिरे निसंक। नृत देखे गीत सुने पुनात, अपछन कृत सुख अनुपम लहात ॥ १७३ ॥ भोगोपभोग कर सुख लहाय, जब सार सुक्ख

थानक कहाय। निज पुन्य उदै कर देव सोय, अत्यंत सुक्ख भोगे बहोय॥ १७४॥ सुख बारध मांही मगन सोय, नहि जानत काल केतेक होय। बहु देवी तसु बिनसी सुजान, जिम जलध मांह बेला बखान॥ १७५॥ पल्योपम आय सुधरन-हार, उपजी बिनसी तसु कहां पार। जब तुच्छ आयु अवशेष थाय। तब स्वयंप्रभा प्रिय भई आय॥ १७६॥ तब प्रेम भरे दोनों महान, भोगे सु भोग आनंद ठान। इम वृषफल सुर-लक्ष्मी लहाय, निरुपम सुख सार सबै गहाय॥ १७७॥ दुख दूर करे गुण मणि निधान, चारित्र योग लह स्वर्ग पान। ये धर्म सदा अघरम नसाय, भवदधि मथनेकौं यह उपाय॥१७८॥ सब जग चूडामणि धर्म जान, गुण अन्तातीत धरे महान। सुख निध आता मन धरो सोय, चक्री विभूत यातैं सु होय॥ १७९॥ सर्वज्ञ लक्ष यातैं सु होय, सो नित्य करौ भ्रम सर्व खोय। बहु वचनन करके काज कोय, याहीसे सुर शिव लक्ष होय॥ १८०॥ 'तुलसी' गौगापत जो कुदेव, तिसकी मैं भव भव करी सेव। तिनसे मेरो नहीं सरो काज, अब तुम देखे भव सिन्धु पाज॥ १८१॥ तुम भव भव मम स्वामी सु थाप, मैं तुमरो दास सदा रहाय। ये वर मांगू मैं जोर हाथ, जब लौं शिवपुर नहि लेहू नाथ॥ १८२॥

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीवृषभनाथचरित्रसंस्कृत ताकी देशभाषामें महाबल भवांतर ललितांग कथन वर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः॥ २॥

तृतीय सर्ग।

धर्मेश्वरके चरन युग, वंदूं वृष कर्तार।
लक्षण वृषभ तनों लसे, धर्म अर्थ हितकार ॥ १ ॥

मालनी छंद–सकल सुगुण सुधामं देव देवेन्द्र वंद्यं, भविक मल समूहं फुल्लितं सूर्य्य विंबं। भवजनकर वंद्यं तीर्थनाथं युगादं, सुख समुद सुचंद्रं आदि ब्रह्मा प्रभुत्वं ॥ २ ॥

पद्धड़ी छन्द–अब तिम निर्जरकी आयु मांहि, बाकी षट् महिना जब रहाय। मरनेके चिह्न भये विशेष, तिसको लख सुर दुक्खेत अशेष ॥ ३ ॥ भूषण संबंधी तेज थाय, सो विनस भयो तुछ ना रहाय। जो निशा अन्तमें दीप जोत, त्यौं क्षीण भयो मणिको उद्योत ॥ ४ ॥ माला मुरझाय गई सु तबै, तरु कल्प लगे कंपन सु जबै। तिम अंग विषें जो क्रांत थाय, सो ही सब मंदी पडी भाय ॥ ५ ॥

चाल मेघकुमारकी–तिम संबंधी देवयांजी मृत्यु निकट तसु जान, हिरदैमें व्याकुल भई जी रुदन करे अधिकान। रे भाई पाप उदै दुखदाय ॥ ६ ॥ इम पतिके परशादतें जी सुख भोगे अधिकाय। तिसकी येह दशा भई जी जिम बिजली बिनसाय, सयाने पाप उदै दुखदाय ॥ ७ ॥ तिम सामानक देव थे जी दुख मेटनको आय, सम्बोधन करते भये जी। प्रीत वचन कहवाय, सयाने धर्महितैं सुख होय ॥ ८ ॥ भो बुध धीरज उर धरो जी शोक सबै छिटकाय, क्षणभंगुर यह जगत है जी

तुम क्या नहीं लखाय। सयाने धर्महितैं सुख होय ॥ ९ ॥ सिद्धों विन जो जीव हैजी, तीन जगतमें वास। जन्म जरा मृत सब लहैंजी, इंद्रादिक सुरराय, सयाने धर्महितैं सुख होय ॥ १० ॥ जन्म मृत्युसे जो डरैंजी, सो शुभ ध्यान धराय। आरत रौद्र हनें सदाजी मर्ण समाधि कराय, रे भाई धर्महितैं सुख होय ॥ ११ ॥ भली मृत्यु पर भावतैंजी, उत्तम कुल नर थाय राज्यादिक सुख पायकेजी, बहु निरोग दृढ़ काय ॥ सयाने धर्महितैं सुख होय ॥ १२ ॥ मोह अरी हतके सहीजी, तप नानाविध कार। अहमिंद्र पद पायके जी, नर ह्वै केवल धार ॥ सयाने धर्महि तैं सुख होय ॥ १३ ॥ तप करके सुरपद लहोजी, भोगे सुख अधिकाय। व्रतको क्लेश नहीं कहोजी, धर्म धरो सुखदाय ॥ सयाने धर्महि तैं सुख होय ॥ १४ ॥ यह जिय चहुं गतिमैं रुलोजी, नरक दुख बहु पाय। आर्तरौद्र तहां बहु भयेजी, नहीं व्रतादिक पाय ॥ सयाने धर्म हितैं सुख पाय ॥१५॥ पशु विवेक रहित सदाजी, दुख भोगे अधिकाय॥ शिव कारण वृष ना गहेजी, खोटे ध्यान पसाय ॥ रे भाई पाप महा दुखदाय ॥१६॥ मनुज जन्म विन कहीं नहीं जी, उत्तम दीक्षा थाय। स्वर्ग मुक्त दाता कहीजी, केवलज्ञान उपाय ॥ सयाने धर्महि तैं सुख होय ॥ १७ ॥

पद्धड़ीछन्द–तिस वचरूपी दीपक महान, तिसकरि सुर शोक तजो सुजान। धीरज धारण तबही कराय, पंद्रह दिन जिन पूजन रचाय ॥ १८ ॥ अच्युत सुर तहां आयौ सुभाय,

सो लेय गयौ निज स्वर्ग मांह। तहां जिनबिंबनकी पूज कीन, बहु भक्त धरी उरमें प्रवीन ॥ १९ ॥ तहां चैत्यवृक्ष बीचे सु थाय, निज आयु अंतको सुर लखाय। तब नमोकारको जप प्रवीन, एकाग्र चित्त कर ध्यान कीन ॥ २० ॥ सो मरन भयो तब ही सुदेव, जहां उपजे राग सुसुनो भेव। ये जंबूद्वीप दीपे महान, शुभ मेरु तनी पूरब दिशान ॥ २१ ॥ पूरब विदेह संज्ञा कहाय, जो धर्म शर्मकौं वास थाय। तहां पुष्कलावती देश जान, जहां नित मंगल वर्ते महान ॥ २२ ॥ पुर उत्पल खेट तहां लखाय, जहां भव्य पुन्य संचय कराय। जहां वज्र-बाहु राजा बखान, सो धर्म कर्ममें सावधान ॥ २३ ॥ तसु वसुंधरा राणी बखान, शुभ लक्षणमंडित पुन्यवान। ललितांग नाम जो देव थाय, सो चयके याके गरभ आय ॥ २४ ॥ जन्मो सुत अति ही रूपवान, तसु वज्रजंघ शुभ नाम ठान। पयपान करत सो बढत बाल, जो शुक्ल चन्द्रमा बढत हाल ॥२५॥

लावनी-बडे बुध क्रांत आदि सब ही, गुणोंकर पूरण है जब ही। भयो षट वर्षनको तब ही, जैन गुरुको सौंपो सु सही ॥ २६ ॥ शस्त्र शास्त्रकी विद्या जेती, पढी इसने सबही तेती। कला विज्ञान विवेकादि, दिव्य गुण सुंदर क्रांतादि ॥ २७ ॥ वस्त्र भूषण युत अति सोहै, देवबत सबकौं मन मोहै। तबै यौवन आरंभ मांही, भये सबहीको सुखदाई ॥ २८ ॥ दान पूजादिक सब करते, सुक्ख भोगे सब मन हरते। स्वयं-प्रभादेवी जानो, सुनो तसु कथा बुद्धवानौं ॥ २९ ॥

पायता छन्द–भरतार वियोग हुवो है, तिसकर बहु शोक भयो है। जैसे जो बेल जलावे, तसु क्रांत कछु न रहावे ॥३०॥ तहां समामाह सुर जे हैं, ते बहु वृष बचन कहे हैं। हे देवी तुम यह जानो, सब वस्तु अथिर पहचानों ॥ ३१ ॥ ऐसे बहु वचन सुनाये, तब देवी शोक तजाये। विन धरमनकौं सुखकारा। इम चितवन उरमें धारा ॥ ३२ ॥ षट मास सु पूजा कीनी, उरमें धर भक्त नवीनी। सो मेरु जिनालय जाके सोमनस नाम बन ताके ॥ ३३ ॥ पूरब दिश मंदिरमांही, तहां चैत्यवृक्ष तल ठांई। मनपंच परमगुरु ध्याके, चितमैं समाधकौ लाके ॥ ३४ ॥ जैसे तारा बिन साई, त्यौंहि तसु तन खिर जाई। अब चयकर जहां भई है। सोई मुन सर्व कही है ॥ ३५ ॥

काव्य छन्द–मेरु सुदर्शन जान तास पूरब दिश सोहै, पूर्व विदेह सुजान सब जनकौं मन मोहै, पुंडरीकनी पुरी तहां सब जन सुखदाई। वज्रदंत चक्रेश तहां शुभ राज कराई ॥३६॥

गाथा छन्द–लक्ष्मीमति तिय जानौं, क्रांतादिक धर्मशील गुणखानों। दूजे स्वर्ग सुदेवी, स्वयं प्रभा नाम तिसु मानौं ॥ ३७ ॥ सो इस गर्भ मझारे, पुत्री उपजी सु श्रीमति नामा। लक्ष्मीसम तन सोहै, शुभ लक्षण भूषित तामा ॥ ३८ ॥

पद्धड़ी छंद–क्रमसौं यौवन जुत भई बाल, लावण्य रूप संपत विशाल। वर क्रांतकला शुभगुण अपार, धारे मानो देवी सुसार ॥ ३९ ॥ अब तिसही पुरके बनमझार, जिस नाम मनोहर सुक्खकार। वर ध्यानरूढ़ जगकर सुचंद, मुनि आप यशोधर

सुखकंद ॥ ४० ॥ मुनि ध्यान खड्ग करमाह धार. चव घाति तनी संतत निवार। तिहुं जगको दरसावत सुज्ञान, उपजायो केवलज्ञान भान ॥ ४१ ॥ तब केवल पूजा करन सार, आये दिवतैं सुर भक्ति धार। दुंदभि शब्दनतैं दिशा पूर, नभतैं बरसावैं देव फूल ॥४२॥ जहां देवकरैं जैनंद गाय, संख्या अतीत बहु देव आय आतभक्ति धारकरी नमस्कार, वाणी सुनके हर्ष अपार ॥ ४३ ॥ इस अंतर श्रीमति नाम बाल, सो तिष्ठी महल सिखर विशाल। निशअंत विषैं धुन सुन महान, ततक्षण जागी सो पुण्यवान ॥ ४४ ॥

सवैया—देवागम देखकरि पूर्व जन्म याद धर सुर ललितांगको वियोग चित्त आनके, पड़ी मूर्छा खाय तब सखी जन दुख पाय करत उपाय बहु हित चित आनके। चंदनादि द्रव्य सार तासु अंग माह धार सीत वायुकौ विचार करत सुजानके. तब सो चैतन्य भई नींचा मुख कर रही मन माह लाज गही मौन उर ठानके ॥ ४५ ॥ सखीजन सर्व जाय पिता सौ कही सुनाय मूर्छा मौनादिक सर्व बात समझायके, राय सर्व बात सुन सुता ढिग आय मन अहो सुता शोक तज बुद्ध उर लायके। पुत्री तेरो भरतार मिले तोह शीघ्र सार, यही चित्त माह धार भरम नसायके। शोक मौन सर्व तज हृदय माह सुख भज, संबोधन बच इम कहे नेह लायके ॥ ४६ ॥

गीता छंद—चक्रीसुताको देख करके प्रियासे कहतो भयो, मुग्धे! सुनो पुत्रीसु तनमैं पूर्ण यौवन छागयो। कोई विथा तन

मोह नाही जान तू निश्चय यही, अब शोक भय सब ही तजो इम मान मेरे बच सही ॥ ४७ ॥

सोरठा—पूरब भवको नेह, जिम जियको होवे सही। याद भये दुख देय, मूर्छादिक सबही लहे ॥ ४८ ॥ इम कहकर सोगाय, निज स्थानक जातो भयो। धात्री तहां रखाय, जासु पंडिता नाम है ॥ ४९ ॥

चाल त्रिभुवनगुरु स्वामीकी—नृप सभा सुजायेजी धर्म कर्म करतायजी, तहां आये दो पुरुष करी इम वीनतीजी। तुम पिता महानोजी केवल उपजानोजी, जिन नाम यशोधर त्रै जगके पतीजी ॥ तुम आयुध शालाजी शुभ रतन विशालाजी। तहां चक्र विशाला उपजो जानियोजी, द्वय कारज सु सुनकेजी। मनमैं इम गुनकेजी, इन दोनों कृत माह प्रथम किम मानियेजी ॥५०॥

अडिल्ल—वृषको फल यह चक्रि रतन उपजो सही, अन्य संपदा धर्म बिना होवे नहीं। तातैं सब कारज तज वृषकौं ध्याइये, धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष जो पाइये ॥ ५१ ॥ इम निश्चय कर सब परवार बुलायके, बहु विभूत संग लेय चलो हर्षायके। सैन्या पुरजन लार सर्व चलते भये, त्रैजगपतिको जाय भक्ति धर सिर नये ॥ ५२ ॥

पद्धड़ीछन्द—जै तीर्थंकर परमात्म सार, इंद्रादिककर पूजित उदार। मन वचन कायसे करि प्रणाम, फुन बहुत स्तुति कीनी ललाम ॥ ५३ ॥ अति भक्ति भारसे नम्र होय, परणाम शुद्ध है मल जु खोय। तब ही देशावध भई आय, गुरु भक्ति थकी किम किम न पाय ॥ ५४ ॥

अहो जगतगुरुकी चाल- अहो गुरुकी भक्ति थकी क्या क्या नहिं होई, इस भवमें सब काज सिद्ध होवे दुख खोई। पर भव सुखकी कथा कहांतक बरनी जावे, स्वर्ग संपदा भोग अविचल ऋद्ध लहावे ॥ ५५ ॥

चौपाई-येह जान पंडित शुभ चित, करो दान पूजादिक नित। जगत उदयकर्ता सु विशाल, ज्ञानी वृष सेवें तिहुं काल ॥ ५६ ॥ तब चक्री निज भव लख सही, अच्युततैं उपजो इम मही। वृष फल लख सम्यक्त लहाय, पूरब भवके बोध पसाय ॥ ५७ ॥ श्रीमति पति ललतांग जु थाय, सो चयकर वज्रजंघ उपजाय, यह वार्ता परतक्ष लखाय, चक्री मन संतोष लहाय ॥ ५८ ॥ तीर्थनाथको कर परणाम, उपजाये बहु पुन्य ललाम। भक्ति भावसे नम्रित होय, चक्री निज ग्रह पहुंचे सोय ॥ ५९ ॥

पायता छन्द-तब चक्री सुपूज कराई, पुत्री धायको सौंपाई। सब दिश जीतन उमगानो, सेन्या जुत कियो पयानो ॥ ६० ॥ अब धाय पंडिता नामा, सुअशोक बनांतर नामा। चन्द्रकांति शिलापे थाई, श्रीमतसे बचन कहाई ॥ ६१ ॥

पद्धड़ी छन्द-हे सुता मौन कारण अपार, मो सेती भाषो लाज टार। तू मुझको प्राण समान जान, मेरे आगे कर सब बषान ॥ ६२ ॥ मोको सब कारज करन हार, जानो मन बांछत कहो सार। निज बुद्ध थकी सब विध मिलाय, करहौं कारज तोह सुखदाय ॥ ६३ ॥ यों पूछन तैं बच कहैं सोय, लज्जासे नीचै मुखयु होय। मैं सर्वकथा तुमसे कहाय, तुम

सुनौं मात चित स्थिर कराय ॥ ॥ ६४ ॥ यह पुन्य पाप फलसे सुजीव, सब ही उपजे विनसे सदीव। मैं पूरव प्रीति सुयाद कीन, सुर आगमको लखके प्रवीन ॥ ६५ ॥ ममपूरव भवको जो चरित्र, जातिसुमरणसे हो विदित। तुम मम जननीकी तुल्य थाय, तातैं तुम आगैं सब भनाय ॥ ६६ ॥ इक धातकी खंड सुदीप सार, तिसकी पूरव दिश मेरु धार। तिसका पश्चिम सु विदेह जान, तहां गंधिल नगर कहो प्रमाण ॥ ६७ ॥ तहां पाटन नामा ग्राम थाय, तहां नागदत्त बणिक रहाय। सुरती नामा भार्या बषान, पण पुत्र भये तसु सुक्ख दान ॥ ६८ ॥ इक आननंद अरु नंदमित्र, पुनि नंदषेण तीजा सुपुत्र। धरसेन नामा चौथा बषान जैसेन पंचमो सुत महान ॥ ६९ ॥ पुत्री सु मदनकांता विचार, अरु दूजी श्रीकांता निहार। इम मात पुत्र पुत्री सु थाय. अष्टम सुगर्भ मम जीव आय ॥ ७० ॥

पायता छंद–मम पाप उदै जो आयो. तब पितुने मरण लहायो। सब भाई मरै जबै ही, मैं पैदा हुई तबै ही ॥ ७१ ॥ भगनी द्वै मरण लहाई, नानी भी यम बस थाई। माता परलोक सिधाई, निर्नामिक मोह कहाई ॥ ७२ ॥ सब बंधुवर्गसे मुक्ता, जीवे बहु कष्ट संयुक्ता। एक दिन काननमैं जाई, तिलकाचलपें सुखदाई ॥ ७३ ॥ मम पुन्य उदै कछु आयौ. पिहताश्रव मुनि लखायो, सो चारण ऋद्धके धारी, चव ज्ञानी जगत हितकारी ॥ ७४ ॥ सत पंच मुनि जिस संगा, आये ऋद्ध धरे

अभंगा मैं कर प्रणाम सिर नायौ, पुनि धर्म सुनौ सुखदायो ॥ ७५ ॥ दुख दारिद्को सो हर्ता, स्वर मुक्त तनों पद कर्ता। निर्नामिक औसर देखो, मुनिसे पूछौं सु विशेखो ॥ ७६ ॥ भगवत मैं निंद्य शरीरा, तनमैं पाई बहु पीड़ा। निर्धनता कुटुम्ब वियोगी, किस कारण पाई जोगी ॥ ७७ ॥

चौपाई–निर्नामिक तने मुन बैन, कृपा क्रांत धारक हत मैन। बोले है तनुजा तुम सुनौं, पूर्व भवांतर जो मैं भनो ॥७८॥ यही धातकी खंड मंझार, क्षेत्र विदेह लसे सुखकार। तहां पलाशपर्वत इक ग्राम, ग्राम कूट सुपुजारी नाम ॥७९॥ सुमति नाम तास घर नारि, तासु धनश्री पुत्री मार। एक दिन तनुजा वनमें गई, बट कोटरमें मुनि निरखई ॥ ८० ॥ नाम समाधगुप्त है जास, करते तेरवे शास्त्राभ्यास। पंच इंद्रयाजीत योगिंद, जग जिय हितकर्ता गुण वृंद ॥ ८१ ॥ तिन निरखके ग्लान करी, स्वान कलेवर मुन ढिग धरी। जो दुर्गंध सही नहीं जाय, जाकरि यह मुनवर उठ जाय ॥ ८२ ॥ तिसे निरखके श्री मुनराय, दया धार हित बचन कहाय। तेने दुखद कर्म जो कियो, पुन्य वृक्ष जडसे काटियो ॥ ८३ ॥ इस अघको जब उदै जु थाय, बहुत कटुक फल याके आय। तेने मुन अपमान कराय, या फलतें नर्कादिक जाय ॥ ८४ ॥

अडिलछंद–इस प्रकार मुनि गिरा श्रवण करती भई, पाप थकी भयभीत चित तब ही भई। पश्चातापसु हाहाकार करत ठई, मुन पुंगवके चर्णनको फुनि फुनि नई ॥ ८५ ॥

चौपाई–निज निंदा तब करती भई, बार बार मुखसे ती चई। मैं अपराध कियो अज्ञान, सो सब क्षमा करो बुद्धवान ॥ ८६ ॥ तब उपसम परणाम सु भये. ताकर बहु पातक नस गये। ता कारण मानुषगति पाय, वैश्य सुकुलमें उपजी आय ॥ ८७ ॥ अरु वह निंद्य कर्म जो कियो, किंचित सत्तामें रह गयो। ताही तें सुकुटुंब वियोग, दुख संतत बाढो बहु रोग ॥ ८८॥

गीताछंद–सतगुरुकों परणाम करते होय उन्नत पद महा, पद पूज पूजासे सुहो सुखमार भक्तिसे कहा। आज्ञा गुरुकी पालनेसे होय आज्ञा सब विषें, गुण ग्राम गुरुके जपन सेती होय सुख संपत अषें ॥८९॥ जो योगियोंकों निंद्य कहि वे होय निंदित सर्वदा, अपमान आदिक बहुत पावें दुक्ख संतत है सदा। जो मान करके नमें नांही नीच कुल पावे वही, मातंग आदिक होय करके नर्कमें जावे सही ॥ ९० ॥ यह जान बुध जन सत्य गुरुकी भक्ति सत पूजा करो, मन बचन काय त्रिशुद्ध करके शर्म कारण उर धरो। निर्नामिका निज भव श्रवण करि पापसे कंपित भई, ऋषराजको पुनि नमन करके ये गिरा मुखसे चई ॥ ९१ ॥ भो धर्म्म तात सुदया करके देहि किंचित व्रत अबै, जिस व्रत थकी मम पाप नाशे होय सुख संपत सबै। सद गती सुष संपत सु होवे देहमें निरोगता, हे जगत बन्धु कृपा करके व्रत कहो मम योगता ॥ ९२ ॥

चौपाई–तब श्री कृपासिंधु मुनराय, तिसके योग्य सुव्रत बतलाय। जिनगुण संपत नाम विधान, दूजो श्रुतज्ञान व्रत

जान ॥९३॥ सब सुख संपतको करतार, ताकी विध सुन इम मन धार। सोलह कारण भावन जोय, ताके सोलह ही व्रत होय ॥ ९४ ॥ पंचकल्याण पंचमी पांच, प्रातहार्य अष्टम वसु सांच। चौतीस अतिशयके उपवास, चौतीस जानौं गुणकी रास ॥ ९५ ॥ जन्मतनें अतिशय वसु होय, ताको दस दसमियां होय। दस अतिशय शुभ केवल तने, तिथ दसमीके दस व्रत भने ॥ ९६ ॥ देवन कृत अतिशय सु महान, चौदह ताकी चौदस जान। चौदह ही होवे गुणगाम, जानो सब त्रेसठ उपवास ॥ ९७ ॥ जिनगुण सपत शुद्ध ह्वै करै, सो नर स्वर्ग माह अवतरे। नर भवके सुख भोग अपार, अनुक्रम पावें शिव सुख सार ॥ ९८ ॥ श्रुतज्ञान व्रतकों सुन भेद, जासे होवे पाप उछेद। मतिज्ञानके भेद बताय, अष्टाविंशति सुव्रत थाय ॥९९॥

अडिल छन्द—बारह अङ्गके वरत सु ग्यारह जानिये, दोय वर्त पर कर्म तने उर आनये। सूत्र तने अट्टासी व्रत परमानिये, एक वरत प्रथमानुयोगको मानिये ॥ १०० ॥ चौदह पूरवतने बरत चौदह गहो, पांच चूलकातनें बरतपण संग्रहो। अवधज्ञान षट भेद बरत छ जानिये, मनःपर्ययके बरत दोय उर आनिये ॥ १०१ ॥ केवलज्ञान तनों व्रत एक कहो सही, इकसौ अट्ठावन सब व्रत कहे यही। श्रुतज्ञान व्रत श्रेष्ठ उदार महान है, भक्त करें अस टार सोई बुधवान है ॥ १०२ ॥

दोहा—इस व्रतको जो भवि करे, भक्त धार मल खोय, देव मनुष्य सुख भोगके। केवल लहि सिध होय ॥ १०३ ॥

ऐसो फल इम व्रतनकौं, हे पुत्री चित आन। व्रत दोनौं कर शुद्ध चित्त, ज्ञानादिक सिद्ध ठान ॥ १०४ ॥ मुन मुखतैं इम बरत सुन, व्रत ग्रह आनंद धार। वंदन कर निज गृह गई, करत भई व्रत सार ॥ १०५ ॥

चौपाई—अन्त समैं सन्यास सुधार, शुभ भावनतैं तनको छार। नाम ईशान कल्प शुभ थान, देवी उपजी सुखकी खान ॥१०६॥ तहां ललितांग नाम शुभ देव, ताके स्वयं प्रभा प्रिय एव। धरे रूप लावन्य अपार, कोमल सुन्दर अङ्ग सु सार ॥१०७॥ पहतःश्रव निज गुरु पे गई, प्रिय ललितांग सहित सिर नई। तिनकी पूजा कर बहु भाय, व्रत फल स्वर्ग माह भोगाय ॥ १०८ ॥ पंचेंद्रीके वांछित भोग, भोगे बहुत पुन्य संजोग। पुनि अपनी थित थोड़ी जान, पूजे जिन षट मास प्रमाण ॥ १०९ ॥ पुन्य शेषते देव सु चयो, जो ललितांग नाम बरनयो। मेरे पिया वियोग पसाय, आरत शोक बढ़ो अधिकाय ॥ ११० ॥ मैं चयकर यहां पैदा भई, मोकौं वाकी कछु सुद्ध नहीं। उसका जो है दिव्य स्वरूप, मम उरमैं तिष्ठ सुख रूप ॥१११॥ उसका मेरा मिलना होय, तौ मैं व्याह करूं भ्रम खोय। अरु जो वो पति नाह मिलाय, तो तप धारूंगी सुखदाय ॥ ११२ ॥ तिसकी प्रापति हेत महान, करों उपाय एक बुधवान। मेरो लिखो पट्ट ले जाय, जिन मंदिरमें दो फैलाय ॥ ११३ ॥ महापूत जिस नाम कहाय, अहो पंडता वहा ले जाय। गूढ चिह्न कर संयुत होय, जिस

व्याकर्णमें प्रत्यय होय ॥ ११४ ॥ जिन मंदिरमें बहु खेचरा, नृप श्रेष्ठी आदिक बहु नरा। आवेंगे तहां भव्य अमान, धर्म तनी बांछा उर ठान ॥११५॥ तिममेंसे कोई गुण खान, इस पटको अवलोके आन। पूर्व जन्मके नेह पसाय, जाति सुमरण वाकौं थाय ॥ ११६ ॥

दोहा—केते धूरत आयगें, पट लख झूंट कहाय। गूढ अर्थ पूछन थकी, लज्जित ह्व घर जाय ॥ ११७ ॥ तबै धाय कहती भई, पुत्री हो निश्चंत। सब मनोरथ पूरुं सही, कर उपाय बहु भंत ॥११८॥ इम कहकर सा पंडिता, तिम ही पटको लेय। कार्य सिद्ध करने चली, हर्षित चित जिन गेह ॥११९॥

पायता छंद—उतंग सु तोरण सोहे, बादि आदिक मन मोहे। ऊंचे बहु कूट बिराजे, ध्वज मालादिक कर छाजे॥१२०॥ रत्नोपकर्ण जहां साहै, मणि हेम चित्र मन मोहे। महापूत जिनालय नामा, बहु भवि आवे तिस ठामा ॥ १२१ ॥ जिनवरकी पूजा कीनी, पुनि गुरुको नम हित कीनी। फिर पटशालामें आई, तहां पट खोलो अधिकाई ॥ १२२ ॥ जो भव्य सु आवें जावें, तिनकों सब भेद बतावें। पटखण्ड महीकौ साधो, तब चक्री निजपुर लाधो ॥ १२३ ॥ व्यंतर सुखगाधिप जेते, अरु मुकटबंध नृप तेते। ते सब ही लार सु आये, पुरकी बहु शोभ कराये ॥ १२४ ॥ चक्री निज पुत्री सेती, मिलिये बहु हर्ष समेती। तज पुत्री मौन सु अब ही, अरु शोक तजो तुम सब ही ॥ १२५ ॥ मोह अवधज्ञान उपजायो,

तुझ पतिके भव दरसायो। हमरे तेरे गुरु एकी, पहताश्रव महाविवेकी ॥ १२६ ॥ सुन पुत्री निज भव भाखूं, जिसतैं संदेह जु नाखूं। अबतैं पंचम भव थाई, नगरी पुंडरीकनिमाही ॥१२७॥ वासव नामा नृप जानौ, सुत चन्द्रकीर्ति गुणवानौ। सो मेरो जीव सु थाई जयकीर्ति मित्र सुखदाई ॥ १२८ ॥ पितु मरने सेती लहियो, सब राज संपदा गहियो। सहमित्र सुक्ख भुंजाई, अणुव्रत माही रत थाई ॥१२९॥ सम्यक श्रद्धाके धारी, सब अतिचार परहारी। पर्वोपवास सब करते, अरु धर्म ध्यान चित धरते ॥१३०॥ चन्द्रसेन गुरु शुभ पाये, तिनको बहु नमन कराये। जानी निज आयु सु अल्पा, तब त्यागो सर्व विकल्पा ॥ १३१ ॥ तब ही संजमकौ लीनौ, चारों अहार तज दीनौ। सत प्रीत नाम उद्याना, सन्यास मरण तहा ठाना ॥१३२॥ माहेन्द्र सुरगमैं जाई, वृषफल सुर ऋद्धि लहाई। जय-कीर्ति मित्र जो थाई, सामानिक जात लहाई ॥ १३३ ॥ जहां सागर सात सु आयु, भोगे सु पुन्य बसायु। अथ पुष्कल द्वीप सो सोहै, पूरव मेरु मन मोहै ॥१३४॥ तहां विजय मेरु दुखदाई, मंगलावती देश कहाई। तिस देश मध्य नगरी है, रत्न संचय नाम भली है ॥ १३५ ॥

चौपाई—राजा श्रीधर नाम महान, सुंदर लक्षणयुत गुण-वान। राणी मनोहरी सुक्ख निधान, रूप लावन्य धरे अधिकान ॥१३६॥ चन्द्रकीर्ति जिय सुरथो जोय, स्वर्ग थकी चयके सुत होय। श्रीवर्मा नामा बुद्धिवान, हलधर उपजो पुन्य निधान

॥ १३७ ॥ मनोरमा शुभ दूजी नार, जै कीरत चर सुर जो सार। सो चयकर इस सुत उपजाय, नाम विभूषण तास धराय ॥१३८॥ नारायणपद धारक भयो, श्रीधर राजभार दोहूं दयो। आप विरक्त होय तप धरौ, सुधर्माचारज कौ गुरु करौ ॥ १३९ ॥ सब कर्मनिकौं करके नाश, केवलज्ञान कियो परकाश, सिद्ध गुणनको प्रापत भये। इंद्रादिक नुतकर दिव गये ॥ १४० ॥ मनोहरी मम माता जोय, मम सनेह आर्या नहीं होय। गृहमें रहके बहु तप करे, व्रत उपवास अधिक आदरे ॥ १४१ ॥ गुरुको कहो धर्म बहु धरो, कर्मनाशको कारण खरो। मर्ण समाधि थकी तज प्राण, शुभ भावनतैं पुन्य निधान ॥ १४२ ॥ अब सो द्वितीय स्वर्ग ईशान, तहां पुण्य फलतैं उपजान। श्रीप्रभ नाम विमान सु जहां, सुर ललितांग भयो सो तहां ॥१४३॥ बलनारायण प्रीत बढ़ाय, तीन खंड लक्ष्मी भोगाय। राय विभीषण वृष नहीं लहो, बहु आरंभ परिग्रह गहो ॥ १४४ ॥ पाप उपार्जन कर बहु भाय, प्राण त्यागके नर्क सिधाय। श्रीवर्मा बलभद्र महान, भ्रात वियोग शोक बहु ठान ॥ १४५ ॥ जननीचर ललितांग सुदेव, आय संबोधन बचन कहेव। शोक धर्मको हर्ता कहो, तातैं बुधजन तज वृष गहो ॥ १४६ ॥ तीन जगत क्षणभंगुर सबै, आतम क्यों नहि चितो अबै। सज्जनका क्या सोच कराय, आयु अंत्यकर मर्ण लहाय ॥ १४७ ॥ यमकी दाढ महा नित सोय, नाह लखे ते मूरख होय। ऐसो जानौ तुम बुधवान, धर्म जिनेश्वरको उर आन

॥१४८॥ मोह अरीको करके नाश, संजम लक्ष्मी करौ प्रकाश। इम ललितांग बचन सुनि भाय, बोध प्राप्त भयो शोक नसाय ॥१४९॥ तबही निज सुतकौं बुलवाय, सर्व राज दीनौं बिहसाय आप युगंधर मुनि ढिग जाय, सर्व परिग्रह त्याग कराय ॥१५०॥ दस हजार राजनके लार, दीक्षा लीनी हित करतार। तप फल कर सो अच्युत गये। इंद्र पदीके सुख भोगये ॥१५१॥ सो बलभद्र पुन्य परभाय, बाईस सागर पाई आय। तहांमैं प्रत्युपकार निमित, सुर ललितांग सु पूजो नित्य ॥१५२॥ सोलम स्वर्ग लेय मैं गयो, क्रीड़ा विनोदादिक बहु कियो। अब आगे सुन और कथान, जंबू पूर्व बिदेह सुजान ॥१५३॥ मंगलावती देश सुजहां, विजयार्द्ध पर्वत है तहां। उत्तर श्रेणी तहां सुजान, नाम गंधर्व सु नगर बखान ॥१५४॥ वासव नामा राजा तास, प्रभावती राणी सुख रास। सुर ललितांग तहां तैं चयो, पुन्योदय इनके सुत भयो ॥१५५॥ जाकौ नाम महीधर सही, सकल श्रेष्ट गुणगणकी मही। तास पुत्रको देकरि राज, खग-पति कीनो आतम काज ॥ १५६ ॥ बहुत भूमिपतिको संग लेय नाम अरिंजय गुरु भेंटेय। दुद्धर दीक्षा गृहण कराय, तप मुक्तावलि आदित पाय ॥ १५७ ॥

इंद्रवज्र छंद–ध्यानेन छेदी सब कर्मराशी, कैवल्यपायो हुय मुक्तवाशी। प्रभावती राणी सुमोद थाई, आर्या सु पद्मावतिको लहाई ॥ १५८ ॥ ग्रहो तबै संजम शुद्ध भाव, रत्नावली आदि सु तप कराव। अंते समाधी धर प्राण त्यागे, सम्यक्त माहे चित धार लागे ॥ १५९ ॥

गीता छंद—तियलिंगकौं तब छेद करके स्वर्ग सोलम स्वर भयो, पदवी प्रत्येंद्र तनी सु पाई धर्मको फल चितयो। पुष्कर सुदीप अनूप सोहै मेरु पश्चिमको गिनौं, पूरव विदेह सुवत्सकावति देश ता माही भनौ ॥ १६० ॥

पायता छंद—तहां प्रभाकरी सु पुरी है, विनय धर मोक्ष वरी है। तिन पूज करनके काजे, आये सुर बहु ऋद्ध साजे ॥ १६१ ॥ तहां अच्युतेंद्र भी आयो, पुजा कर पुन्य उपायौ। फिर मेरु गयो सो देवा, नंदन वन तहां लखेवा ॥ १६२ ॥ पूरब चैत्यालय माही, विद्याधर तहां लखा ही। तिस नाम महीधर जानौ, तिसको सम्बोधन ठानौ ॥१६३॥ भो विद्याधर चित माही, तुम एम विचार कराहीं। मोको अच्युत सुर जानौं, ललितांग सु उर तुम आनौं ॥१६४॥ तुम मम माताके जीवा, तातैं हम प्रीत सदीवा। तुम हमकौं बोधित कीनौं, बलभद्र भवैहि प्रवीनौ ॥१६५॥ अब विषय परिग्रह त्यागौ, कर संजमसे अनुरागौ। इन भोगौं कर यह प्राणी, नहिं त्रप्ति होय अज्ञानी ॥ १६६ ॥

दोहा—इम प्रकार खग बचन सुन, जाती सुमरण पाय। काम भोग विरकत भयौ, ज्ञान भावना भाय ॥ ११७ ॥

चौपाई—बडो पुत्र महिकंप बुलाय, ताकौं राज दियौ हर्षाय। किये जगतनंदन गुर सार, बहु खेचर संग दीक्षा धार ॥१६८॥ घोर बीर तप कीने सार, कनकावलि आदिक निरधार। मर्ण सन्यास थकी तज प्राण, तप व्रत फल पायो सख खान॥१६९॥

प्राणत नाम कल्प शुभ थान, इंद्र भयो तहां अति ऋद्धवान।
वीस उदधकी पूरी आयु, धर्म कर्ममें तत्पर थाय ॥ ७० ॥

पद्धड़ीछंद—अब दीप घातकीखंड जान, पूरबदिश मेरु विजय महान। ताकौं पश्चिम सु विदेह सार। तहां गंधिल देश बसे उदार ॥ ७१ ॥ तहां नाम अयोध्या नगर जान, जयवर्मा राजा तेज खान। ताके राणी सुप्रभा नाम, अजितंजय सुत उपजो ललाम ॥ ७२ ॥

चौपाई—मनबंछित सुख भोगे सार, जिनपूजा कीनी सुखकार। प्राणतेंद्रसो चयकर भयो, मुक्तगामि गुण आकरि थयो ॥ ७३ ॥ जयवर्मा बिरकत चित भयो, राजभार अजितंजय दियो। अभिनन्दन मुनिके ढिग जाय, दीक्षा लीनी मन हर्षाय ॥ ७४ ॥ व्रत आचाम्ल सुवर्द्धन सार, तप कीने नाना परकार। सर्व कर्म्म हत दुखकी रास, कीनो अविचल धाम निवास ॥ ७५ ॥ नाम सुप्रभा राणी जोय, भव भोगनतैं बिरकत होय। सुदर्शना आर्यिके पास, दीक्षा धारी गुणकी रास ॥ ७६ ॥ रत्नावलि आदिक तप करै, सहित समाधि प्राण परहरैं। स्त्रीलिंग छेद दुख रास, अच्युत सुर उपजौ सुख रास ॥ ७७ ॥ अजितंजय चक्री पद पाय, अभिनन्दन जिन भक्त पसाय। तिनकौ नमकर पूजा करी, बारबार चरनन सिर धरी ॥७८॥ ताते विहिताश्रव इन नाम, दूजो प्रगट भयो गुण धाम। शुभको संग्रह निसदिन करै। तातैं सार्थिक नाम सु धरे ॥ ७९ ॥

जोगीरासा चाल—अन्य दिवस अंच्युतकौ स्वामी, तिस

संबोधन आयो। भो भवि विषसम भोग बुरे हैं, इनसे ये दुख पायो ॥ इंद्रादिकके भोग बहुतसे, भोगत तृप्त न थाई। दुख मिश्रित नर जन्म तने सुख, तिनसे कया तृप्ताई ॥ ८० ॥ भोगोंमें कछु सार नहीं है, यह चितो उर सारा। इंद्रय मोह अरीको हनके, संजम गह हितकारा ॥ इसप्रकार संबोधन वच सुन, उर वैराग्य चितारो, निज सुतकों सब राज भार दे, कानन मांहि पधारो ॥ ८१ ॥ पहताश्रव चक्री मुनके ढिग, दीक्षा ली हर्षाई। सब परिग्रहकों त्याग जु कीनो, बीस सहस संग राई ॥ अजितंजय मुन दुद्धर तप तप, मन वच तन शुद्ध कीनो। चारण ऋद्धको पाय यतीश्वर, तिलकांत हि गिर लीनो ॥८२॥ पहताश्रवकों नम पुत्री तें, धर्म सुन्मुख होई। जिन गुण संपत श्रुतज्ञान फुन, ये व्रत धारे दोई ॥ निर्नामिक भवमें तप करके, दूजे स्वर्ग सु थाई। पहताश्रव योगी जो तुम गुरु, सो मम गुरु कहाई ॥ ८३ ॥

दोहा—ललितांग हि जो देव थो, हलधर भवके माह। मोको संबोधित कियो, तातैं मम गुरु थाय ॥ ८४ ॥ मैं बाईस ललितांगकों, गुर बुध कर पूजाय। तेरो पति ललितांग जो, अंतम उपजो आय ॥८५॥ सो चयकर मम भाणीजा, वज्रजंघ नृप सोय। कीर्तिकांत धारक वही, निश्चय तम पति होय ॥८६॥

सवैया २३—मात पिता सुत बांधव सर्व, सुमित्र भवार्णव से नहि तारे। जे गुरु मूलगुण सु अठाईस धारत है, सबके अघ टारे ॥ ते भव अंबुध तारनहारे, तिनेही भजो तुम भव्य

सु सारे। स्वर्ग सु मुक्तकी प्रापत हेतु, भजो तिन पाय सबै सुखकारे ॥ ८७ ॥ अरहंत सिद्ध सुरकों नमके, उपाध्याय अरु साधु मनाय। सकल गुणनिकी खान यही है, स्वर्ग मोक्षको बाट बताय ॥ तीन भुवनके हितकारक हैं, तीन जगतके नाथ नमाय। रहित सर्व दोषनिकर स्वामी, धर्मचक्रके अधिपति थाय ॥ ८८ ॥

गीताछंद–तुलसीरु सीतापति, जिते हैं देव ते जु कुदेवजी। षटखंड मंगल गयो, कहगन दीपनंदो एवजी ॥ तिम ये त्रिदेव कुदेव हैं, नहि देव लक्षण इन विषै। अब बुध 'सागर' बर्धनेकों चंद्र सम जिनवर लखे ॥ ८९ ॥

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचित श्री वृषभनाथ चरित्रे संस्कृत ताकी देशभाषामें वज्रजंघोत्पत्ति श्रीमती वज्रदंत भवांतर वर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ सर्ग।

दोहा–श्रीयुत श्री अरहंतकों, सिद्धलोकके ईस। गण आकार मुनि त्रयनकों, वंदूं नित धर सीस ॥ १ ॥

त्रिभंगीछंद–जै जै ऋषभेषं नमत सुरेशं त्रैजगतेशं परं प्रभू। गणधर मुनि सेवत नमत असेषं वृषचक्रेशं तुम्ही स्वयं ॥ भक्तिजन नित ध्यावै मंजुल गावै, पूज रचावै मोद धरे। सुख संपत पावै ज्ञान बढावै स्वर्ग लहावै मोक्ष वरे ॥ २ ॥

चौपाई–सावधान है पुत्री सुनौ, मेरे बचन हृदैमैं गुनौ।
प्रभू युगंधरकौ सु चरित्र, बरनू पावन परम पवित्र॥ ३॥

गीताछंद–एक दिन सुब्रह्म सुइंद्र लांतव ईशने वाणी चई।
श्री जिन युगंधर पास हमने शुद्ध समकितको गही॥ तातैं सु
उनका चरित भाखूं जास त्रिध गणधर चयो। तैं पति सहित
सुनियो सकल अब तोह भाखूं निश्चयो॥ ४॥

चौपाई-जंबूद्वीप सु पूर्व बिदेह, बत्सकावती देश भनेह।
भोगभूमिकी तुल्य गिनेय, सीता नदी दक्षिण दिश जेह॥५॥
तहां सुसीमानगरी जान, राजा अजितंजय बलवान। तासु
अमितगति मंत्री जु कहो, तसु तिय सतनामा सुख लहो॥६॥
ताके सुत प्रहसित ऊपजो, तासु मित्र बुध बिकसित भनो।
व्याकरणादि कला विज्ञान, करे सभारंजन नित आन॥ ७॥
पंडितता अरु राज्य सुमान, ज्ञान गर्भसे उद्धृत जान। एक
दिवस पुर बाहर थान, मतिसागर मुनि आये जान॥ ८॥
अमृत–श्रावी ऋद्ध मुन धरे, धर्मवृत्ति कर पातक हरे। मुनि
आगम सुन नृप तत्कार, गयो सु मुनके पास उदार॥ ९॥
नमस्कार कर पूछौं जबै, तत्व स्वरूप कहो मुन अबै। इस जिय
उत्पति कारण नाहि, कहो जीव क्यौंकर उपजाय॥ १०॥
तब ज्ञानी मुन बोलत भये, तत्व स्वरूप यथारथ चये। स्याद्-
वाद नय अगम पसाय, निर उत्तर कीनें नरराय॥ ११॥

दोहा–गर्भ तजो दुहूं मित्रने, नमत भये मुन चर्ण।
दीक्षा ली हर्षायके, स्वर्ग मोक्ष सुख कर्ण॥ १२॥ प्रहसित

विकसित मुन भये, तज परिग्रह दुखवास। लोच पंच मुष्टी-थकी, कीनो गुरुके पास ॥ १३ ॥

चौपाई—अब दीक्षाकों पालन करै, जातैं भवभवके अघ टरै। वर्धन आचाम्लादिक सार, तपकीने नाना परकार ॥ १४ ॥

जोगीरासा चाल—एक दिवस अज्ञान थकी मुन दर्शन तज सुखदाई, वासुदेव पदकों निदानकर जो दुर्गत लेजाई। तब तिस वरत तने फल करके चयके स्वर्ग थये हैं। दसम स्वर्ग महाशुक्र तासमैं इंद्र प्रत्येंद भये हैं ॥ १५ ॥ वीस उदधिकी पूरव आयु दीक्षातप फल थाई, सुख सागरमें मगन रहे दुहूं दिव्य अंगना पाई। खंड धातकी पश्चिम दिशका पूर्व विदेह बतायो, पुंष्कलावती देश मनोहर पुंडरीक पुर भायो ॥ १६ ॥

अडिल्ल—तिस नगरीको भूप धनंजय नामजी, जयसेना तसु नाम मनोरति कामजी। दसम स्वर्गतैं चय सुर इनके सुत भयो, विकसित नामा मंत्रि तनौं चर बरनयो ॥ १७ ॥ हुवो सोई बलिभद्र महाबली नामजी, यशस्वी नृपनार सुदुजी तामजी। सो प्रत्येंद्रको जीव आय यहां अवतरौ, नामसु अतिबल जान त्रिखण्डपती वरौ ॥ १८ ॥ नाम धनंजय पिता वैराग्य भयै जबै, दोनौ पुत्र बुलाय राज दीनौ तबै। धरो सुसंयम भार घोर तप आचरो, ध्यान खड्ग गह हाथ कर्म रिपु जै करो ॥ १९ ॥ केवललह भविबोध शिवालय थिर भये, देवन सेती अर्चित है गुण वसु लये। रामजु केशव पुन्य थकी त्रय खंडके, नृप अमरनको साधे जुत बल वंडके ॥ २० ॥

सुन्दरी छन्द—सरब सुख निरंतर भोगतैं, परम प्रीत युतापन योगतैं। बहुत सुखसु भोगे वृष बिना, बहु आरंभ परिग्रहको ठना ॥ २१ ॥

पायता छन्द—तिमतैं अतिबल नृप नामा, लहो सुभ्र महा दुख धामा। तिन पीछे सो बलि भ्राता, कियौ शोक महादुख दाता ॥ २२ ॥ फिर बलि वैराग उपायौ, भोगादिक तृणवत भायौ। बाह्यांतर संग सबैही, त्यागो नृप बली तबैही ॥ २३ ॥ सुसमाध गुप्त योगीस्वर, तिन पास भये सुमुनीश्वर। तप तपत भये अति भारी, सन्यास थकी तन छारी ॥ २४ ॥ चौदम जो स्वर्ग कहायौ, तहां प्राणतेंद्र उपजायो। विशत दधि आयु जहां है, सु नीरुपम सुक्ख तहां है ॥ २५ ॥ सो चय कर जहां उपजाई, सो बर्नन सुनी सुखदाई। अथ दीपधातकी खंडा, तिस पूरब मेरु प्रचंडा ॥ २६ ॥ तहां पूर्व विदेह सुजानौ, बत्सकावति देश महानौ। तहां पुरी प्रभाकरी सोहै, मन सेन-राय मन मोहै ॥ २७ ॥ ताके वसुधरा नारी, गुण रूप कलाकर भारी। तिसके जनमें बलधारी, जयसेन पुत्र हित-कारी ॥ २८ ॥ तिन चक्रवर्त पद पायो, षटखंड मही भोगायौ। एक दिन चक्री वैरागे, सब भोगहि विषसम लागे ॥ २९ ॥ सब ही संपत तज दीनी, जिन भाषित दीक्षा लीनी। श्री मंदिर जिन ढिग जाई, षोडश सुभावना भाई ॥ ३० ॥ चिरकाल महातप कीनो, सन्यास अंतमें लीनो। चितधर समाध तज प्राणा, ऊरध ग्रीवक उपजाना ॥ ३१ ॥ अहमिंद्र भयो

तहां जाई, त्रिशत सागर सुख पाइ । नहीं प्रवीचार जहां होई, सुख भोगे दुख न कोई ॥ ३२ ॥ पुष्कर पूरबदिश जानों, तहां पूर्व विदेह महानों । मंगलावती देश बसे है, रत्नसंचै नगर लसे है ॥ ३३ ॥ अजिंतजय भूप बखानों, वसुमति राणी तसु जानौं । सोई अहमिंद्र चया है, इनके वर पुत्र भयो है ॥३४॥ सुत तीर्थंकर उपजानों, त्रैजगलक्ष्मी सुख खानौं । त्रैजगपति सेवा करि है, सु जुगंधर नाम जु धरि है ॥ ३५ ॥ जग धर्मुपदेश सु करहै, जग तारण तरण सु वरहैं । गर्भादिक पंचकल्याना, सुख भोक्ता गुणकी खाना ॥ ३६ ॥ कल्याण तीनके माही, सब देव आय पूजाही । फुनि दीक्षा धर तप कीने, चव कर्म अरी जे लीने ॥ ३७ ॥ वर केवलज्ञान उपायो, सब विश्वतत्त्व दरसायो । छासठ सागर सुख कीनों, फुनि तीर्थंकर गुण लीनों ॥ ३८ ॥ अब समवसरणके माही, तिष्ठ है जग सुखदाई । वेही श्री युगंधर स्वामी, कल्याण अर्थ होउ नामी ॥ ३९ ॥

गीताछंद-ये सब कथा मैंने युगंधरके समोसृतमें कही । ब्रह्मेंद्र लांतव इंद्र तुम पत और तूने सरदही । ये कथा मम मुखथकी सुन बहु देव सम्यक आदरी । तूने सुपत ललतांग युत बुध परम धर्म विषै धरी ॥ ४० ॥

पद्धड़ीछंद—दोनों सुधर्ममैं प्रीति ठान, संवेगभाव चित माह आन । केवलज्ञानीकी पूज ठान, पहताश्रव गुरु वंदे महान ॥ ४१ ॥ हम तुम दोनौं तिन भक्ति कीन, बहु देव सहित

पूजा नवीन। निर्वाण पूज कीनी विशाल, तिलकांत नाम गिरके सु माल॥ ४२ ॥ हे पुत्री तुम सुमरण कराय, क्या पूजा तुमको याद नाह। हम तुमने क्रीड़ा करी संग, अंजन-गिरपे जानों अभंग ॥ ४३ ॥ अरु रमण स्वयंभू उदधि जोय, जो मध्यलोकके अंत सोय। तामें क्रीडा नाना प्रकार, कीनी सो याद करौ अवार ॥ ४४ ॥ तब सुनकर श्रीमती सु जान, सब पिता वचन कीने प्रमाण। जाति सुमरण कर सब लखाय, फिर पिता थकी ऐमें कहाय ॥ ४५ ॥ मो पतिको जनम कहांसु थाय, सो अब किरपा करदो बताय। ऐमें पुत्रीके वचन सार, सुनके चक्री बोले उदार ॥ ४६ ॥ जो होनहार कारज महान, सो तुमसे मैं कहूं बखान। पूरब भव तुम वर थो महान, सो अब भी निश्चै मिले आन ॥ ४७ ॥ दिवश्रुत्वा नामा नगर जान, तहां राय यशोधर तेज खान। राणी वसु-धरा सीलवान, सुत वज्रजंघ उपजो महान ॥ ४८ ॥ वर रूप कला धारे अनेक, तुम पति वरबाढे युत विवेक। पूरब भवमें जो वृष उदार, सेयो तिस फल भोगे अपार ॥ ४९ ॥ निज आयु अंत तज स्वर्गवास, हम तुम उपजे यहां सुखरास। अब निश्चै तीन दिवस मझार, तोहि वज्रजंघ मिलसी कुमार ॥५०॥

सवैया ३१—तुम पति ललितांग वर भयो आय इत वज्र-जंघ नाम सार कुंवर उदार है। तेरी भुवाको तनुजमैं ही वाकौ मातुल हूं सोई वज्रजंघ तेरो पति होनहार है। धाय पंडिता खबर तोहे देयगी सुवाके लेनेके निमति मेरा जानेका विचार

है। चक्री कहे सुन सुता शोक तज वेग अब धर अनुराग कर सुंदर अहार है ॥ ५१ ॥

चौपाई—इस प्रकार बहु वचन उदार, पुत्री संतोषी तिह बार। चक्रवर्त फुनि गये प्रवीन, और कथा सुनिये सु नवीन ॥ ५२ ॥

पद्धड़ी छन्द—सो धाय पंडिता तबहि आय, तिस मुखपर फुल्लित जबहि थाय। हे पुत्री श्रीयमती सुजान, मैं तुझ कारज साधो महान ॥ ५३ ॥ सखि तेरे पुण्य उदै महान, तुव सर्व मनोरथ सिद्ध थान। यहांसे पटमें लेगई जबहि, मंदिरमै फैलायो तबहि ॥ ५४ ॥ बहु जन तब विस्मयवंत थाय, मिथ्यावादी केई इम कहाय। इस पट तनो सब ही वृतांत, हम जानत निश्चै रहित भ्रांत ॥ ५५ ॥

चौपाई—गूढ अर्थ पूछत परमाण, भये निरूत्तर लज्जावान। वज्रजंघ इस अंतर आय जिनमंदिरमें पूज रचाय ॥ ५६ ॥

चाल अहो जगत गुरुकी—रूप सुगुण संजुक्त मोहित सब जन चिता, पट्टसालमें आय पट्टको देख पवित्ता। स्वयंप्रभा जिस नाम सो मम देवी थाई, तसु वियोग चित ठान लोचन जल भर लाई ॥ ५७ ॥ जाती सुमरण थाय तबैंही मूर्छा आई, तिसको जो परवार पवनादि कहि कराई। चेत-नताको पाय मुझसे इम पूछायो, हे भद्रे येह पट्ट किस प्रियने लिखवायो ॥ ५८ ॥ मैं ललितांग सुदेव स्वर्ग ईसान जु मांही, मेरी देवी सोय कहां चय कर उपजाई। क्रीडादिक सब चिह्न

गूढ़ दिये बतलाई, तबमै भाषौ एम मातुल बेटी थाई ॥ ५९ ॥ श्रीयमती जिस नाम लक्ष्मी समदुत वानौ, तुमरे गुण आशक्त तुम ललितांग सुजानौ । तुम मिलापके काज पट्ट लिखो सुखदानी, ममकरमें निज पट्ट तब दीनौ हरषानी ॥ ६० ॥

चौपाई—इम सुनके नरराय उदार, चित्र कर्म तिम मम निर्धार । अपनो पट लिखके ततकार, मम करमें दीनो हित धार ॥ ६१ ॥

दोहा—येह वचन सुन धायके, श्रीयमती हर्पाय । चितमें अति हर्पित भई, आनन्द अंग न माय ॥ ६२ ॥ तब कन्या निज हाथ पसार, पटको लेत भई सुखकार । चलो चलो इम बैन उचार, जिनमंदिर पहुंची तत्कार ॥ ६३ ॥ तिसको दियो पट्ट निरखंत, सूचक स्नेह तनो परवंत । श्रेष्ट जु वरकी प्रापत मान, शुभ भागन चितमें हर्पान ॥ ६४ ॥ तिस पटकौं करमें ले सोय, पूरब भव अपने सब जोय । निज चितमाही तब हर्षाय, मानो पति मिलयो सुखदाय ॥ ६५ ॥ तब चक्री संपत ले लार, नित तट गमन कियो हित धार । नार पुत्र जुत मिलयो जबै, वज्रबाहु भूपति सो तबै ॥ ६६ ॥ चक्री बहु पाहुनगत करी, मनमाही बहु आनन्द धरी । यथा उचित कीनो सनमान, सत बच भाषें प्रीत निधान ॥ ६७ ॥ बुधवान मम गृहमें सार, रत्नवस्तु जो रुचे अबार । तिसकौं प्रीत थकी तुम गहौ, मम आग्रहते नरपत अहो ॥ ६८ ॥ तुमरे हमरे प्रीत

महान , वर्तै स्नेहवर्धनी जान। निज नारी अरु सुत जु होय, मम घर चालो प्रीत सुमोह॥ ६९॥ इम सुन वज्रबाहु नरराय, कहत भयो इम वच सुखदाय। तुम सनेह कर जो देखियो, तातैं धन्य धन्य मैं भयो॥ ७०॥ वो रत्नादिक वस्तु अपार, क्षणभंगुर जानौं निरधार। नाथ तुम्हारी कृपा रूमाल, रत्न-राससे अधिक विशाल॥ ७१॥ तौं पण तुम वचमैं उर धार, मो सुतकौ दो कन्या सार। संपत वाहन वारंवार मिले हैं तुम किरपा अनुसार॥ ७२॥ तातैं सिद्ध कछु नहीं थाय, मम प्रार्थना पूरो राय। तब चक्री बोले विहसाय, कन्या रतन लेउ सुखदाय॥ ७३॥ और रतन सब अपने जान, हमरा तुमरा भेद न मान। तब चक्री नृप आय सदीन, मंडप व्याह रचौ परवीन॥ ७४॥ सोनेके बहु थंभ लगाय, मोती माल तहां लटकाय। कूट सु उज्जल तुंग महान, धुज पंकत कर शोभावान॥ ७५॥

अडिल्ल–स्थापित रत्नने निर्मायो मंडप वही, सहस देवता आज्ञा जसु माने सही। पद्मराग मणिमय जहां वेदी सोहये, चारों दरवाजे कर जन मन मोहये॥ ७६॥ चक्रवर्त जिन पूजा करत भये तहां, महापूत नाम चैत्यालय है जहां। पर्व अठाई तनी महा पूजा करी, मंगलकारक भक्त प्रभूकी उर धरी॥७७॥ बहु भव्यनके साथ न्हवन जिनको कियो, जिन पूजनतैं जन्म सफल निज कर लियो। शुभ दिन लग्न मझार महा उतसव करो, गीत नृत्य शुभ गान मनोहर ध्वन भरो॥ ७८॥ कंचन

कुम्भ भराय स्नान वधुवर कीयौ, वस्त्राभूषण माला आदिक पहरयो। वेदी मध्य प्रवेश वधू वरने कियो, पट्टे ऊपर बैठ बहुत आनंद लयौ॥ ७९॥

गीताछंद—पाणिग्रहण विध सहित करके, अति सुखी दंपत भये। फिर वधूवर जिन पूज करने, जैन मंदिरमें गये॥ अभिषेक कर जिनराजको, पुनि अष्ट द्रव्य संजोयके। शुभ रतन मई जिनबिंब पूजे, चित्त निर्मल होयके॥ ८०॥

चौपाई—जिन पूजा कीनी बहु भाय, प्रभु गुण मधि रंजित अधिकाय। स्तोत्र आरम्भ कियौ तब राय, जातैं भव भव पातक जाय॥ ८१॥ कल्प बेल सम पूजे येह, भव जनको मन वांछित देय। सब हित अर्थ तनी दातार, स्वर्ग मुक्त कर्ता निरधार॥ ८२॥ नाथ तुमारी प्रतमा जोय, दीप्त प्रभाकर सोभित सोय। चिंतत अर्थतनी दातार, चिंतामणिसे अधिक निहार॥ ८३॥ हे स्वामी तुम भक्त पसाय, पुन्य उपार्जन कर बहुभाय। धर्म अर्थ काम हि शिवसार, साधे पुरषारथ भवि चार॥८४॥ जिनाधीश तुम स्तोत्र पसाय, पंडित गुणगण जुत शुभ थाय। तीन जगत जिनकी थुति करें, असी पदवीसों नर धरें॥ ८५॥ जो नर तुमरी पूजा करें, पूजनीक पदवी सो धरें। इंद्र होय वा चक्री थाय, तीर्थनाथ होवे सुखदाय॥ ८६॥ तुमको नमस्कार जो करै, विनय भक्त बहु उरमें धरैं। ते होवे त्रिभुवनके ईश, तिनको नावें सुरनर सीस, जो भवि तुम आज्ञा आचरे॥ ८७॥ तुम समान प्रभुताकों वरे, जो

तुम नाम जपे मनलाय। तौ परमेष्टी पदवी पाय॥ ८८॥

मरहटी—नेत्र सफल तुम दर्शन देखत बचन सफल तुम गुण गावंत। सफल भयो मन तुम गुण चिंतन, चरण सफल निज गृह आवंत॥ हस्त सफल भये जिन पूजनतैं, सीस सफल भयो नमन करंत। तुम चरणन भेटनतैं, स्वामी जनम जनमके पावन संत॥ ८९॥ तुम गुण सागर अगम अथाई, गणधरसे नहि पार लहे। हम तुच्छ बुद्धि निपट अज्ञानी, तुम गुण वरनन केम कहे॥ नमस्कार है तुमको स्वामी, तुम गुण मणके समुद उदार। तीर्थनाथ तुमको मैं वंदूं, बिन कारण जग बांधव सार॥ ९०॥ अस्तुति पूजा जो मैं कीनी, कर प्रणाम तुम जस उचार। ताकौं फल मैं ये बांछित हूं, देवो निजगुण संपत सार॥ इम अस्तुति तीर्थेशनकी, कर पुन्य उपायौ बहुत तत्कार। बहुत भव्य बांधव नारी युत, नमन कियौ बहु बारंबार॥९१॥ जात भयो चक्रीके पुर फुन, काम समानी सुन्दर देह। आपसमें आशक्त भये अति, पूरब भवकौं हुतो सनेह॥ बहुत काल सुन्दर सुख भोगे, क्रीडा करे चित उमगाय। वज्रबाहुने फुन निज कन्या, अनुधरी जिस नाम कहाय॥ ९२॥ चक्रवर्तके सुतको ब्याही, अमित तेज जिस नाम बताय। निज भाणीजको कन्या तब ही, प्रीत सहित दीनी हर्षाय॥ वज्रजंघ अरु श्रीयमती फुनि निज, पुर चलनेको उमगाय। चक्रीने जमातको दीने, हय गयरथ शिबका बहुभाय॥ ९३॥

चौपाई—रत्नादिक बहु देश सु दिये, पट भूषण दीने

वरनये। नारीवर परवार समेत, वज्रजंघ बहु हर्ष उपेत ॥९४॥ दानमानसे तोषित कीन, तिनकों बिदा करे परवीन। क्रमसे धुनवादित्र समेत, वज्रजंघ बहु हर्ष उपेत ॥ ९५ ॥ मातापिता नारी जुत सोय, महाविभूत लिये संग जोय। कई प्रयाण करके नर राय, निजपुर उत्पलखेट लखाय ॥ ९६ ॥ महल सु देखे सुखकी खान, धुज तोरण कर सोभावान। क्रमसे सोभा निरखतराय, राजमहलमें पहुंचे जाय ॥ ९७ ॥ अब सो महल विषैं नरराय, श्रीमति तिय संग केल कराय। वज्रजंघ नृप पुण्य पसाय, निसदिन सुख भुंजे अधिकाय ॥ ९८ ॥ श्रीमतिके क्रमसे सुत भये, वीर बाहु आदिक वरनये। इकयावन जोडे क्रम सो लहे, दिव्य अंग धारक सब थये ॥ ९९ ॥

जोगीरासा—वज्रबाहु एक दिवस महलपै बैठे जुत अनुरागे, सरद बादले विघटत देखे मनमाही वैरागे। जगत भोग तन-राज अथिर लख वृष फलमैं चितलाये, मन बचकाय तिहूं सुध करकें दीक्षाको उमगाये ॥ १०० ॥ अहो बादले जेम विघट गये देखत देखत भाइ, बंधू जन अरु राज रमा सब त्यौंही ये खिर जाई। राज्य पापमय निंद्य अधिक है पापखान यह नारी, भोग भुजंग समान कहे हैं दुख सागर संसारी ॥१०१॥ पांचौ इंद्री बडी चोर हैं रत्नत्रय ले लेवै, रिपुकषाय सब अनरथकारी बिस्वैसे दुख देवे। जलबुद्ध बुद्धवत जगतभोग सब इनमैं सार नहीं है, तीन जगतमैं सुन्दर सो भी सांस्वत तान लही है ॥ १०२ ॥ सार एक रत्नत्रय जामें केवल लहि शिव-

पावे, तप समान इस जगमैं ना हि प्राणी सुक्ख लहावे । इम विचारकर मोह रिपु हत पणइंद्री वसकीनी, शिव साधन जो ज्ञान चरणतप दर्शन युत बुध दीनी ॥ १०३ ॥ इम विचार कर सब पर्यनसे मनमांही वैरागे, पुत्र तनौ अभिषेक सु करके राज दियो वड़भागे । अहिवत श्रियकौं त्याग ततक्षण उमगौ नृप तप काजे, शिव कारण राजा गयो बनमैं यमधर मुन जहां राजे ॥ १०४ ॥ नमन कियो यमधर मुनको जो तीन लोकके ज्ञाता, अन्तर बाहर परिग्रह तजके दीक्षा ली शिवमाता । वज्रबाहु नृप उदास ह्वके जिस दिन संजम लीना, सात सतक नृपने संग तिस ही ग्रहको त्याग जु कीना ॥ १०५ ॥ वीर बाहु आदिक श्रीमति सुत एक शतक ह्व जाना, निज दादाके लार ततक्षण दीक्षा ली गुण-खाना । अन्तर बाहर परिग्रह तजके चित्त वैराग्य जगाये, होत भये मुन जग हितकारी सब जग धंद नमाये ॥ १०६ ॥ वज्रबाहु मुन देश देशमैं कर विहार भविबोधे, दर्शन ज्ञान चरित तप करके निज परणाम सु सोधे । शुक्लध्यान असिलेय मुनीस्वर कर्म आदि सब नासे, केवल ग्यान लये सुख सागर शिवपुरकी नौं वासे ॥ १०७ ॥

चौपाई—वज्रजंघ नृप पुन्य पसाय, राज संपदा बहु भोगाय । न्याय थकी नृप राज सु करे, तातैं परजा आनंद धरे ॥ १०८ ॥

लावनी—चक्रधर एक सुदिनमांही सभा, सिंहासन बैठाई ।

इंद्रकीसी लीला करतो, राज्यगण सेवत मन हरतो ॥ १०९ ॥ तबै वनपालक तहां आयो, भेंटधर चरनन सिरनायो । हाथमें कमल तबै दीनों, गंध संजुत अतिही भीनों ॥ ११० ॥ लखो चक्रीने तब वोही, मृतक षटपद उसमें सोई । निजही मृत्यु शंका जब कीनी, चित वैराग्य दशा सु लीनी ॥१११॥ काम भोगादिक सब तजहूं, राज तज निज आतम भजहूं । अहो एक इंद्रीवस होके, भ्रमरने प्राण अविझोंके ॥ ११२ ॥ पंचइंद्री जो भोगाई, लहे सो दुःख क्यों नाही । सकल जग दुखकर्ता जानो, निंद्य दुर्गतिमैं उपजानो ॥ ११३ ॥

चौपाई–काया कर जो सुख भोगाय, काम दाहकी शांत चहाय । सो सब असुच वस्तु भंडार, नारीको तन अतिही सार ॥ ११४ ॥ पांचों इंद्री तस्कर जहां, अरु कषाय शत्रु है तहां । क्षुधा तृषादिक रोग महान, तिस कायामैं क्यों रतिमान ॥११५॥ एते दिन में योंही गमाय, वृथा शरीर जु पोखन थाय । भोगन करके त्रप्त न भयो, अज्ञानीवत घरमैं रहो ॥ ११६ ॥

पायता छन्द–मैं ज्ञानत्रयको पायो, कछु काजनतौ भिसरायो । वसु कर्मतनौं क्षय करहूं, फुन मुक्तरमाको वरहूं ॥११७॥ धन धन्य वही जगमाही, जो शिव साधन सु कराही । यह है अनंत संसारौ, दुख पूरित जास न पारो ॥११८॥ चहूं गत मैं बहु दुख पायौ, सुखकौ नहीं अंस लखायौ । जो इस जगमैं सुख माने, विषयनकी इच्छा ठानै ॥ ११९ ॥ सो

दुक्ख बहुतसे पाके, संसार माह भटकाके । गृह आश्रम बुधजन निंदो यह मोह अरीको फंदो ॥ १२० ॥ यह राज पाप संतानौ, संपदा नर्क दुष दानौं । यह बंधन समहै रामा, दुखकी माता अघधामा ॥ १२१ ॥ सुत पास समान निहारौ, पिंजर सम कुटंब विचारौ । मृतकी घटिका जब आवे तब कोई हितू न बचावे, जब रोग ग्रसित न होई तब होय सहाय न कोई ॥ १२२ ॥ जो पुन्य उदैसे पाये निधरत्नादिक मन भाये ॥ १२३ ॥ सो काल अग्निको पाई, सब भस्मीवत हो जाई । इम सब हि अनित्य विचारौ, चक्री विरक्तता धारौ ॥ १२४ ॥ तब निज सुतको बुलवायो, निज राज देन उमगायो । जिस अमित तेज है नामा, शुभ जेष्ठ पुत्र गुण धामा ॥ १२५ ॥ तासैं इम बैन उचारे, सब राज गहो तुम प्यारे । सो अति विरक्त परणामा, कहे राज नहीं मा कामा ॥ १२६ ॥ मैं तुमरे संग रहूंगो, दीक्षा गुरु पास गहूंगो । इस राजमाह जो दोषा, तुमने निरखो सुख पोखा ॥ १२७ ॥ तासो विशेष मैं जानौं, अनरथकी खान लखानौ गृह आश्रममें सुख होई, तौ तुम ही क्यों त्यागोई ॥ १२८ ॥ मैं तुमरे साथ लहूंगो, दीक्षा ग्रह नांहि रहूंगो । इन उत्तर करके जानौ, तिसे राज परान्मुख मानौ ॥ १२९ ॥ तब पुत्र हजार बुलाये, तिनकौं सब बैन सुनाये । तुम राज ग्रहो सुखदाई, मैं दीक्षा लूं बन जाई ॥ १३० ॥ ते सबही है वैरागी, उच्छिष्ट समान ऋध त्यागी। तब पुंडरीक जिस नामा, सुत अमिततेजको

तामा ॥१३१॥ बालक वय तिसकों राजा दीनों विभूति समाजा। चक्री नृप चलौ तबही, तपके कारणसु जबै ही॥१३२॥

गीताछंद–सब त्रिया आदिक साथ लेके, सुत हजार मिलायके। तहां जिन यशोधरके सुगणधर, तिन नमो हित लायके॥ मन वचन काया सुध करी जिन, त्रै जगत हितकार हैं। बाह्यभ्यंतर त्याग परिग्रह, आत्म मैं स्थित धार हैं॥ १३३ ॥ तिन पास चक्री लही दीक्षा, सहस सुत तप धारियो। फुनि सहस तीससु और राजा, सब परिग्रह छारियो॥ अरु सहस साठ सुराणियौ, मिल सबनने तप तहां लियो। फुनि पंडिता जो धाय थी, निज योग्यताने तप कियो॥ १३४ ॥ सुभ पंडिताई सोई जानौं, जो संसार हितें तिरे। अब सब मुनि तप घोर करते, देश बन मध बीहरे॥ अब वज्रदंत मुनीश करमैं, शुक्लध्यान सु असि गहो। सब कर्म रिपुकों नाश करके, केवली पदको लहो॥ १३५ ॥ इंद्रादि चहुविध देव आये, सबन पूजा कर ठये। फुनि वज्रदंत सु मुक्त पहुंचे, सुख अनंते तहां लये। अरु मुनी चरमांगिके इक ध्यान असि करमैं लये, दुट कर्म अरिको नाश करके, शिवपुरी बसते भये॥ १३६ ॥ और मुन तप तपनसे ही, स्वर्गमें जाते भये। सौधर्मसेती आदि लेके ग्रीवकादिकमैं गये॥ सम्यक्त बलतें अर्जका सुरलोकमैं कितनी गई। सौधर्मसे अच्युत सु ताई, देव देवी बहु भई॥ १३७ ॥ अब पुंडरीक सुमात जानो, लक्ष्मीमति जिस नाम है। सो करत चिंता राज केरी, भई दुखकी धाम है॥ यह चक्रवर्त विभूत

थी, इतनादि समरथ जानियो। यह बाल वय अरु बुद्ध रहित, दुहू बात दुर्घट मानिये ॥ १३८ ॥

चौपाई—वज्रजंघ बिन राज अबार, अरिगणसे पीडित उर धार। सकल शत्रुकर पीडत जोय, कैसें कर निकंटक होय॥१३९॥ यह उरमैं करके निरधार, मंदरमाली खग सुत सार। गंधर्व-पुर कोई स्वर जोय, चिता गति मनगत सुत दोय ॥ १४० ॥ सकल काजकर्ता परवीन, तिन करमें पटयारी दीन। अपनौ पत्र भेद जुत धरौ, तिनसौं सब ब्यौरो उच्चरौ ॥ १४१ ॥ वज्रजंघके निकट सु जाय, तिनसे सब कहियो समझाय। पुत्र सहित चक्री वन गये, घोर तपस्या करते भये ॥ १४२ ॥ पुंडरीककौ राजमझार, स्थापो बालक तब निरधार। कहां अद्भुत चक्रीको राज, कहां दुर्बल बालक बेकाज ॥ १४३ ॥ ताके कोई नाह सहाय, बिन सहाय नहीं राज रहाय। तिस सु देशके पालन काज, आपहि चलें येह महाराज ॥ १४४ ॥ इस विध दूत दियो समझाय तब अकाश मारगसो जाय। उत्पल खेट नगर पहुंचयो, नृप मंदिरमैं जातौ भयो ॥१४५॥ बैठो सभा मह भूपाल, वज्रजंघ अरिगण उर साल। तिनकौ नमस्कार इन कियौ, भेट करंडादिक सब दियो ॥ १४६ ॥ पत्र खोलके बांचौ जबै, ताकौ रहस लखौ सब तबै। कर अचरज इम कहते भयौ, देखो चक्राधिप पुन भयौ ॥ १४७ ॥ राज-लक्षको करके त्याग, जिनदीक्षा लीनी बड़ भाग। धन्य धन्य चक्री सुत थाय, बहु साहस कीनो उमगाय ॥१४८॥ पंचेन्द्री

बैरी हत सही, पिता साथ जिन दीक्षा लई। ऐसें तिनकी थुत बहु कीन, तिस कारज करणे परवीन ॥ १४९ ॥ श्रीमति आगैं सर्व सुनाय, पत्र माह जो बरनन पाय। तिस वृतांतको सुनके सही, श्रीयमती मन खेदित भई ॥ १५४ ॥ ताकौं नृप संबोधत भयौ, तहां चलनेको उद्यम कियो। तब ही दूत विसर्जन कियौ, तीर्थेस्वरपद पूजत भयौ ॥ १५१ ॥ सर्व विघ्न हर्ता है सोय, स्वर्ग मुक्त कारण है जोय। चतुरंग सेन्या सब संग लई, श्रीमतितिय भी साथ ठई ॥ १५२ ॥ मतवर मंत्री संग सु ठान, आनंद नाम पिरोहत मान। श्रेष्टी है धनमित्र महान, सेनापति सु अकंपन जान ॥१५३॥ इन चारोंको संग सु लियौ, अन्य प्रधान पुरुष चालयो। वज्रजंघ नृप कियौ पयान, देवराज सम क्रीडा ठान ॥ १५४ ॥ बाजे बाजत बहुत प्रकार, तिस विभूतकौं गिनत न पार। मंत्री आदिक सुभ सावंत, साथ चले सब ही दुतवंत ॥ १५५ ॥

अडिल छन्द—बन खंड माहीं सर्प सरोवर ढिग गये, सीतल तरु छाया लख तहां ठैरत भये। तहां मध्याह्न बेलामें धीर महाव्रती, लाभ अलाभ समान घोर तप धर जती ॥१५६॥ मनुष देव अरु खेचर जिनकौ बंदते, ऋद्ध अनेक सु भूषित जगकौं निंद्यते। बन चर्याकी नेम सु तिनकौं नौ सही, तीन ज्ञान संजुक्त भव्य हितकी मही ॥ १५७ ॥ जो संसार उदधिके तारनहार हैं, दमधर सागरसेन नाम जुग धार हैं। चारण ऋद्धके धारक तहां जाते भये, पुण्य उदै परमाण

राय तिन लष लिये ॥ १५८ ॥ वज्रंजघ तिन देखत निधि सम जानियो, श्रीमतिराणी साथ सु आनंद मानियो। मुन चरणनको नमस्कार कीनौ सही, तिष्ठ तिष्ठ इम भावभक्ति अधिकी ठई ॥ १५९ ॥ ऊंचे आसनपे तिनकौ बिठलाईयो, सुद्ध सु जलसे पद प्रक्षाल कराइयो। अष्टद्रव्यसे पूजन कर वंदन करी, मन वच काय त्रिशुद्ध एषणा शुधबरी ॥ १६० ॥ ऐसे नवधा भक्तकरी नृपने जबै, फुन दातारतने गुणा सप्त धरै तबै। श्रद्धाशक्त अलुब्धभक्त ये जानके, ज्ञानदया अरु क्षमा सप्त यह ठानके ॥ १६१ ॥ मधुर पुष्टकारी अरु प्राशुक जानिये, छ्यालिस दोष रहित तप बृद्धक मानिये। श्रीमतिराणी साथ भक्त करके दिये, विध संजुत अन्नदान परमपात्रनिलिये ॥ १६२ ॥ ततक्षण दान प्रभाव देव तौषित भये, नृप आंगणके माह पंच अचरज ठये। पुष्प वृक्ष अर रत्नधार बरषाइयो, गन्धोदक जुत वायु सु गंध चलाइयो ॥ १६३ ॥ दुंदभि बाजे बजे समुद जिम गरज ही, अहो धन्य यह दान धन्य दाता सही। धन यह दुर्लभ पात्र पोतसम जानियो, बहु देवोंने मिल इम वचन बखानिये ॥ १६४ ॥ दान तनौ फल इम साक्षात लखौ तबै, लख करके राजा सुविचार करे तबै। दान थकी सब संपत होवे सारजी, दान स्वर्गको कारण है निरधारजी ॥ १६५ ॥ ग्रह नायक यह दान सदा ही दीजिये, दात्रपात्रको सुखकर्ता लख लीजिये। देखो पुन्य उदैते चक्रि सुता गही, पुन्य उदै तैं राज संपदा सब लही ॥ १६६ ॥ सर्वभोग उप-

भोग सु उनने पायही, ऐसो जान सो भव्य धर्म रत थाय ही।
दर्शन ज्ञान चारित्र गुण उर धरे, ऐसें पात्र गुणां बुध तिनकी
नुत करे ॥ १६७ ॥

गीता छन्द–'तुलसी' सीतापति जिते हैं देव ते जु
कुदेवजी। षट्खण्ड मंगल गयो कह गत दीय वंदो एवजी,
तिमये भिदेव कुदेव हैं, नहि देव लक्षण इन विषें। अब बुद्धि-
सागर वर्द्धनेको, चन्द्रसम जिनवर लखे ॥ १६८ ॥

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचित श्री वृषभनाथ चरित्रे वज्रजंघ
श्रीमती विवाह पात्रदानं करण वर्णनो नाम चतुर्थ: सर्ग: ॥ ४ ॥

अथ पंचम सर्ग।

गीता छंद–धर नगन मुद्रा बन बसे, पीछी कमंडल कर
लिये। सागर सुबुध वर्धनको शशि वर पात्र तेई धर हिये,
तिनको सुदान सु देय भविजन सोई, बटतरु समझ ले। जो
देयदान अपात्र कासो बीज वृक्ष सब जले ॥ १ ॥

चौपाई–महा पात्र गुण पूरण सार, उत्तम गुरु जगके
हितकार। जगजेष्ट जिनवर जग सार, वंदूं निजगुण दो
हितकार ॥ १ ॥ बुद्धज्ञान भूपत तब एव, खोजेके मुख
सुनि सब भेव। अपने लघु सुत जाने सार, बालकवय
जिनदीक्षा धार ॥ २ ॥ श्रीमति हर्षित चित उचार, भो
स्वामी जगके हितकार। यही धर्म जो है सुखकार, सो

भाखो अब किरपा धार ॥ ३ ॥ तिसके प्रश्न थकी मुनराज, जेठे दमवर धर्म जहाज। कहत भये ये वृषसागार, अति विभूत संपत दातार ॥ ४ ॥ अच्युत स्वर्ग विषैं उपजाय, राजसंपदा यहां बहु पाय। धर्म संजुत नित काल बिताय, षटकर्मोमें रत नित थाय ॥ ५ ॥ जिनपूजा सतगुरुकी सेव, स्वाध्याय संजम बहु भेव। तप अरु दान भक्तिजुत करो, शक्ति समाना सुख आकरो ॥ ६ ॥

दोहा—षट सुकर्म इम विध कहे, धर्म मूल सागार। विध संजुत तुम नित करो, धर्मसिद्ध हितकार ॥ ७ ॥ हर्षित चित इम धर्म सुन, नमन कियो ततकार, अपने गुरु निजनारके, भव पूछे नृप सार ॥ ८ ॥

पद्धड़ी छन्द—तब सो मुनि कहत कृपा निधान, जयवर्मादिक भव सब बखान। मुनि अवधिज्ञान संयुत निहार, भव सुन नृप कीनो नमस्कार ॥ ९ ॥ फिर पूछत है योगी सुसार, मतिवर मंत्री आदिक सु चार। इनके ऊपर मम अति सनेह, वर्तत हैं प्रभु कारण सु केह ॥ १० ॥ तब मुनिवर इम उत्तर बखान, एकाग्रचित सुन बुधवान। तुम पूरव भवकी जो कथान, मैं कहूं सर्व संक्षेप जान ॥ ११ ॥ जंबू सुद्वीप पूर्व विदेह, तहां देश वत्सकावति गिनेह। तहां प्रभाकरी नगरी विचार, तहां मुक्तिकाज वृष बहुत धार ॥ १२ ॥ अतिग्रद्धि नामक राजा सुजान, अतिलोभी वृषसे रहित मान। अति मूढ विषय आशक्त जोय, सब धर्म कर्मसे रहत सोय ॥ १३ ॥ बहु आरंभ

परिग्रहमैं सु लीन, तब नरक आयुकौं बंध कीन। मर चौथे नर्कहि माह जाय, तहां दस सागरकी आयु पाय ॥ १४ ॥ तहां बहु दुख भुगते नाहि पार, वहांसे निकलौ तन व्याघ्र धार। तहां प्रभाकरी नगरी सु पास, धननाम सु पर्वत द्रव्य रास ॥ १५ ॥ एक दिन पुरके बाहर उद्यान, प्रीतीवर्धन राजा वखान। सो जात भयो बन क्रीडा काज, तहां तरु कौटरमें मुनि विराज ॥ १६ ॥ पहताश्रव नाम योगिन्द्र सार, बैठे सु मास उपवास धार। मनमैं सुधर्म अनुराग धार, नृपने कीनो तब नमस्कार ॥ १७ ॥ मुन धर्मवृद्ध तब ही सु दीन, राजा मनमैं आनंद लीन। निज नगर माह ततक्षण सु आय। सब ग्रहमें तोरण बंधाय ॥ १८ ॥ सब नगरीमें घोषण दिवाय, मुनको अहार कोई नाह द्याय। सबके आंगन अरु मार्ग माह, सब थान पुष्प दीने बिछाय ॥ १९ ॥ जब मुन आवे करुणा निधान, अप्राशुक मारग नहि चलान। स्वयमेव राजमंदिर सु जाय, तब ही मम कारज सिद्ध थाय ॥ २० ॥ आये मुनवर करने अहार, पथको सचित तब ही निहार, तिस ऊपर गमन अयोग्य जान, नृप मंदिर पहुंचे दया खान ॥ २१ ॥ सो राजा अति आनंद पाय, मुनको नमोस्तु तब ही कराय। तब नवधा भक्त संजुक्त जान, दातार तने गुण सप्त ठान ॥२२॥ प्राशुक सुमधुर आहार दान, निज पर उपकारक सर्म खान। सो देत भयो राजा महान, जो सेती होवे मोक्ष थान ॥ २३ ॥ ता दानथकी बहु पुण्य लीन, सुरगण तब पंचाश्चर्य कीन। बररत्न

दृष्ट वह व्याघ्र देख, पूरवभव अपने सर्व पेख ॥ २४ ॥

चौपाई—परिग्रह आस तजी दुखकार, सब आहार कीनौ परहार। सुभ संवेग माह धर चित्त, लियो परम सन्यास पवित ॥ २५ ॥ अनसन जुत तिष्टो सेल जाय, ज्ञान थकी मुन सर्व लखाय। भूपतसे मुन इम बच चये, नृप आज्ञा सिर धरते भये ॥ २६ ॥

पद्धड़ी छन्द—भो नृपत व्याघ्र यो थो मलीन, सन्यासमर्ण अब ग्रहण कीन। संबोधन बच तुम देहु जाय, जासे ही भव भिरमन नसाय ॥ २७ ॥

चौपाई—आदि तीर्थंकरके सुत सार, चक्री भरत होय निर्धार। तप धर जाय मोक्षपुर माह, यामैं संसय कछु भी नाहि ॥ २८ ॥

दोहा—इस प्रकार मुन वचन सुनि, विस्मय धरौ नरेश। गयो नृपत मुन युत निकट, साहस धार विशेष ॥ २९ ॥

अडिल छन्द—दिया धर्म उपदेश मुनीश्वरने तबैं, नमोकार वर मंत्र सुनायो शुभ तबै। दिन अष्टादश तनौं सन्यास सुधारियो, निजवपु शेष न ठान ध्यान जिनको कियो ॥३०॥ तन तजकर ईसान स्वर्गमैं जानिये, नाम विमान दिवाकर प्रभसु बखानिये। तहां दिवाकर देव भयौ रिध जुत सही, सो व्हां तिष्टे और कथन अब सुन सही ॥ ३१ ॥ तुमरे दान प्रभाव पंच अचरज भये, सेनापति मंत्री प्रोहत लख लिये। सब अनुमोदन ठान भोगभूमें गये, जंबू दीप मंझार उत्तर कुरुमें ठये ॥ ३२ ॥ भोगभूमि उत्कृष्ट तने सुख पाइयो, कल्पवृक्ष दस

जात थकी भोगाइयो। प्रीतीवर्धन राय तिसी मुनकेनषै, दीक्षा ले विध जाल पाइयो पद अषै॥ ३३॥

चौपाई-मंत्रीचर जो आर्य महान, अन्त समाधयुक्त तज प्राण। दिव ईसान मध कनक विमान, भयो कनकप्रभ सुर दुतवान ॥३४॥ सेनापत चर भी तिस थान, जान प्रभंकर नाम विमान। नाम प्रभंकर सुर अभिराम। होत भयो बहु सुखकौं धाम॥३५॥ प्रोहितचर सुभ आरज सार, आयु अंतमें तनकौं छार। जाय ऊपनौं रुचित विमान। देव प्रभंजन सुखकी खान॥ ३६॥

पद्धड़ी छन्द-ललितांग देवके मित्र सार, ये होत भये चव सुक्खकार। ललितांग देवको प्रीतदाय, वर होत भये पर-वार माह॥ ३७॥

छन्द चौपाई-सिंह जीव दिवसेती चयो, श्रीमति मत सागरके भयो। सुत मतिवर तिस नाम सु धरो, ताने मंत्री पद तुम वरो॥ ३८॥ देव प्रभाकर चय इस थान, नाम अकंपन उपजो आन। मात आर्जवा पुन्य निधान, पिता नाम अपरा-जित जान॥३९॥ नाम कनकप्रभ सुर थो जोय, स्वर्ग ईसान थकी चय सोय। श्रुत कीरत जो पिता बखान, अनंतमती माता सुख खान॥ ४०॥ तिनके सो सुर चय सुत भयो, आनंद नाम सु तिसको दियो। नाम प्रभंजन जो सुर थाय, सो चय-कर उपजो यहां आय॥ ४१॥

दोहा-पूरव भवके स्नेह बस, अब भी बरते स्नेह। अबसे अष्टम भव विषै, तुम सुत होवे येह॥ ४२॥

छन्द गीता—जब क्षेत्र भरत सु माही, जिनवर, वृषभ तुम होगे सही। सुर नरन करके पूज ह्वै के, मोक्षपद पावौ तुम ही ॥ मतिवर सु नामा मंत्रि तुमरो भरत सुत होवे वहां, षट्-खंड कोपत आदि चक्री अर्धपद पावै तहां ॥४४॥ तुमरो जो सेनानी अकंपन, बाहुबल सुत थायजी। आनंद प्रोहित होय गणधर, वृषभसेन सु भायजी ॥ सो अंग पूर्वन तनी रचना सु करे तुम सुत होयके। धनदत्त श्रेष्ठी सुत तुमारो नंत वीर्य सु जोयके ॥ ४५ ॥

पायता छन्द—इम सुनके बहु सुख पायो, राजा मनमें हर-षायो। मानो तीर्थंकर पद लीनौ, इम चित उत्साह धरीनौ ॥४६॥ फुनसिंह सुर कपि आई, चौथो न्यौलो सुखदाई। नृप चारों जीव निहारे, बैठे मन समता धारे ॥ ४७ ॥ सुन पूछो नृप सिरनाई, श्रीगुरु इन भेद बताइ। तिन दानुनुमोदन कीनौ, राजा चित अचरज लीनौ ॥४८॥ ये व्याघ्रादिक दुठ भावा, किम शांत रूप सु लखावा। तुम चरण कमल दिठ दीनी, अटवी तज यहां थिति कीनी ॥ ४९ ॥ यह जन पूरित जु प्रदेशा, क्यों तिष्टे ये तज क्लेशा। पूरब किम पाप कमाये, जातैं पशु जनम धराये ॥ ५० ॥ यह सबही बरनन कीजे, मेरो संसय हर दीजे। इम राजाकी सुन बानी, श्री मुनवर बोले ज्ञानी ॥ ५१ ॥ सुन राजा तुम हित करके, भव व्याघ्र तने चित धरके। इस देश मध्य तुम जानौ, पुरहस्त नाम सु बखानौ ॥ ५२ ॥ वैश्य सागरदत्त सु नामा, धनवती त्रिया है

तामा । उग्रसैन नाम सुत थायो, राखो तुम सठ अधिकायो ॥ ५३ । विषयांध कुशील भयो सो, अघ उदै पुन्य रह तोसो । सो क्रोध अप्रत्याख्यानी, बल तिर्यग आयु बंधानी ॥ ५४ ॥

चाल मद अवलिप्त कपोलकी मात्रा–नृप भंडार मझार करी चोरी अति भारी, नृप आज्ञा कर कोटवाल पकड़ो दुखकारी । लष्ट मुष्ट बहु मार करी तब मृत्य लहाई, आरत ध्यान कुधार मरो गति व्याघ्र जु पाई ॥५५॥ अब वराह भव सुनौ नगर है विजय सु नामा, महानंद तह राय सकल गुणगणकौं धामा । तिय बसंतसे नाहर बाहन पुत्र बखानौ, अति अभिमान सुधार पितादिक अविनय ठानौ ॥ ५६ ॥ अप्रत्याख्यान मान थकी पशु आयु बधाई, पिताने शिक्षा दई माई इम नाह सुहाई । दौडो मारग माह थंभ लागो सिरमाही ॥ ५७ ॥ मस्तक फूटनथकी आरत ध्यान कराई । प्राण छोड़ अब थकी यही सूकर उपजाई । पैड पैड पै दुःक्ख लहे सो कहे न जाई, अब बानरकी कथा सुनौ नृप चित लगाई ॥ ५८ ॥

लावनी–सुधन्यापुरी बड़ी सोहै, तहां श्रेष्टी कुबेर जो है। सुदत्ता सेठानी थाई, नागदत्त पुत्र जु उजाई ॥ ५९ ॥ भयो अति ही मायाचारी, पुन्यसे रहित पापधारी । अप्रत्याख्यान कुछ लखानो, मेषके अंगमम जानौ ॥ ६० ॥

गीता छन्द–अति कुशीलरु पाप करके, तिर्यगायु बंधाईयौ, अपनी बहनके भात देने व्याहमैं सो धाइयौ । तहां इक सलाका स्वर्णमय दीनी सबै ही देखयौ, नृपके सुचाकर आन पकडौ

रायमुद्रा पेखयो ॥ ६१ ॥ फुन बांधके बहु कष्ट दीनो ले गये नृप पासजी, तह दंड बहु सहके मरे बानर हुवो दुखरासजी। अब नकुलके भव इम कहें सुन राय मनमैं ठानिये, सुप्रतिष्ट-पुरमैं हैके दोई नाम लोलुप जानिये ॥ ६२ ॥ सो लोभ अप्रत्याख्यान बसतैं आयु पशु बांधी सही, इक दिवस राजाने सु मंदिर निर्मयो हितकार ही। तहांको मजूर जु चोर लायो ईंट सुन्दर जानिये, छिपकर कुबुद्धीने जु लीनी तिन पुवे पापड दीनये ॥ तिस ईंटको ले ग्रह गयो जब धोइयो हितकरि मही। जानी सु कांचन तनी तब ही लोभ पूरित ह्वै वही। तब उस मजूरसे नित लेवै पुवे पापड धाइयौ, सो एक दिवस निज सुतके ग्रह चलनेको उमगाइयो ॥ ६४ ॥ निज पुत्रसे कहके गयो, तुम ईंट नित्य लाया करो। तब पुत्रने नहिं ईंट लीनी, राज भय उरमें धरो ॥ सो दुष्ट निज घर आयके, सब बात सुन दुख पाइयो। निज पुत्रको बहु मार दीनी, लकुट ले ताडन कियो ॥ ६५ ॥

दोहा—मैं क्यों गांव चलो गयो, यो निज निंदा ठान, अपने पग तोडे सही लेकर इक पाषान ॥ ६६ ॥ नृपने इम जानी सही स्वर्ण ईंट इस लीन। तब बुलाय बहु दंड दियो, मर्ण तबे इन कीन ॥ ६७ ॥ इस भवमैं जु नकुल भयो, तुम रो दान सु देख। चारों जीव खुशी भये, पूर भव निज पेष ॥ ६८ ॥

छंद पद्धड़ी—यह दान सु अनुमोदन सु वान, सब भोग

श्रम जावे प्रमाण। अब धर्म सुननके अर्थ येह, चारों जिय तिष्ठे धर सनेह ॥ ६९ ॥ अबसे अष्टम भवके मंझार, तुम तीर्थंकर होंगे उदार। जब तुमरे सुत ये होय सार, तप धर पावे शिव समेंकार ॥ ७० ॥ अरु पहले भी बहु सुक्ख खान, नरदेव तने सुख तुम समान। भोगेंगे तुमरे ही सु लार, नृप सुनके अपने चित्त धार ॥ ७१ ॥

चौपाई–श्रीयमतीचर है शुभ सार, राय श्रेयांस महा सुखकार। आददान तीर्थहि कर्तार, तप धर जावे मोक्ष मझार ॥ ७२ ॥ महा ऋषीके वाक्य अनूप, अमृत पान कियो जिम भूप। रोमांचित है अंग नमाय, मानो पुन्य अंकूर उठाय ॥७३॥ इस अंतर योगीको वंद, नृप चित भयो सु परमानंद। मतिबर आदिक मंत्री सार, प्रीत सहित तिष्ठे हितकार ॥ ७४ ॥ मुन जग हित कर्ता सुभ सार, संसारांबुध तारनहार। ध्यानाध्यथन सिद्धके काज, नभमारग चाले मुनराय ॥ ७५ ॥ भूपत मुनवरके गुण ग्राम, उरमें चिंते आठों जाम। केई प्रयाण करके नरराय, पहुंचो पुंडरीकपुर जाय ॥ ७६ ॥

दोहा–लक्ष्मीवति आदिक सुजन, सर्व शोक संजुक्त। तिनकों बहु धीरज दियो, शास्त्र तनी कह उक्त ॥ ७७ ॥ पुंडरीकके राज्यको, पूरनवत थिर थाप। कोयक दिन रहते भये, वज्रजंघ निःपाप ॥ ७८ ॥ गुणजननको सन्मान कर, दियो द्रव्य जोधान। बालकको राज हि दियो मंत्री अपने ठान ॥ ७९ ॥ तिस मंत्रीकी बुद्धसे, होवे सगरे काम। सकल

कार्ज थिरकर चले, पहुंचे अपने धाम ॥ ८० ॥ तहां पूजा जिननाथकी, करत निरंतर सोय, पात्रनिकौं नित दान दे, भक्तवान मुद होय ॥ ८१ ॥

पायताछंद—जिनवाणीकौ उर धरहैं. तीरथयात्रा बहु कर है। सब बंध बर्गकर सहिता, इम पुन्य उपार्जे महिता ॥ ८२ ॥ सुख पुण्य उदै भोगाई, कांता संग प्रीत बढाई। इम बहुत काल बीताई, सुखमैं सो अल्प गिनाई ॥ ८३ ॥ एके दिन महल सु माही, भामा संग सैन कराई। सत्याग्रहके अधिकारी, तिन धूप खेई अति भारी ॥ ८४ ॥ कालागुर आदि क्षिपाई, जाली उन खोली नाही। धूवो बहु रुकौ जु जबही। दंपत पीडा लही तबही ॥ ८५ ॥ दोनोंको मूर्छा आई, तब स्वास रुकों अधिकाई। भोगाकत पाप उदै सों, निद्राकर चक्षु मुदे सो ॥८६॥ तब मृत्यु लही छिन मांही, बिन पुन्य सुक्ख किम थाई। इन भोगनको धिक्कारा, प्राणोंके हरने हारा ॥ ८७ ॥ भोगनमें मूढ फंसे हैं, नरकादिक जाय बसे हैं। यह भोग भुजंग समाने, बुद्ध क्यौं नहि त्याग सु ठाने ॥ ८८ ॥ इम जान सु सज्जन लोगा वैरी सम तजो जो भोगा, जो मुक्त वधू संग थाई। सास्वत सुख रहै सदा ही ॥ ८९ ॥ तब दान तने परभाई, उत्तर कुर आयु बंधाई। यह जम्बूद्वीप सु जानौं. मेरोत्तर भाग बखानौं ॥ ९० ॥ उत्तर कुरु नाम तहां है, उत्कृष्ट भोग-भूमा है। तिस सत्याग्रहके माहो, व्याघ्रादिकचत्र तिष्टाई ॥९१॥ सो भी तिस धूपकी धूवां, पाकर प्राणांत जु हुवा। तिन

दानुमोदनकीनौ, ताकर बहुपुन्य लहीनो ॥ ९२ ॥ षट् जीव सु पुण्य उपायौ, सो भोग भूम उपजायो। जिन दानुमोदन कीनौ, तिन हूं बर सुक्ख लहीनो ॥ ९३ ॥ तातैं बुध भावन ठानौं, भव नाशन सो उर आनों। नव मास रहे गर्भ माही, जिम रत्न महल तिष्टाई ॥ ९४ ॥

गीता छन्द—ते सात दिन चूंसे अंगुठे, सात दिन बैठे सही। पुन सात दिन डिगमिग चले, दिन सातमैं भाषा गही। पुन सात दिन थिर पद चले, दिन सप्त सब गुण ज्ञान है। दिन सातमैं योवन लहे, इन दिन उनंचस जान हो ॥९५॥ इम वज्रजंघादिक सुषट, जियदान पुन्य थकी गये। सुन्दर सु भूषण वसन पहरे, भोग भूसुख भोगये। दस कल्पतरुके भोग भोगे, तास नाम सुनौ अबै। मध्यांग अरु वादित्र भूषण। माल दीपादिक फबै ॥ ९६ ॥ जोतिग्रहांग सुभोजनादिक, वस्त्रभाजन देत हे। मध्यां नामा तरु सु जानौ, सर्व बलके हेत है ॥ वादित्र नामा वृक्ष देवे, पटह ताल सु झल्लरी। वानीसु वंसि मृदंग जानौ, संख देय उसी घरी ॥ ९७ ॥ भुषांग वृक्षके पुरमाला, मुकट आदिक दे सही। सब ऋतु तनें जो कुसुम देवे, सो श्रगांग कहो तही ॥ मणि दीप जिम उद्योत हो, दीपांग सोई जानिये। सूरज सहसकी जोति जीते, जोतिरांग बखानिये ॥ ९८ ॥ ऊंचे महल अरु सभाग्रह, शुभ मंडपा जासे लहै। वरनाट्यशाला चित्र जुत, ताकौ ग्रहांग सु बुध कहे ॥ चतुर्विध आहार सुंदर, अमृतसम सुखदाय है। भोजनांग सु

वृक्ष दे षटरस, सु पूरित थाय है ॥ ९९ ॥ थाली कटोरा आदि बर्तन, अरु श्रंगार सु जानिये । ये भोजनांग सु वृक्ष देवे, पुन पुन उदै परमाणिये ॥ रेशमतने शुभ वस्त्र कोमल, अति महीन सुमानिये । वस्त्रांग जात सु कल्पतरुवर, देव सब सुख खानिये ॥ १०० ॥

चौपाई—नहीं वनस्पतिकाय सु जान, देवाधिष्टित नाहीं मान । केवल पृथ्वीकाया मार, कल्पवृक्ष सब सुख कर्तार ॥१०१॥ जाको आदि अंत है नाहि, ऐसे तरुवर तहां तिष्टाय। पात्रदान फलतें उपजाय, दाता बहुविध सुख लहाय ॥ १०२ ॥ दिपे रत्नमय प्रथवी जहां, सर कमलनजुत सोभै तहां । क्रीडा पर्वत सुंदर खरे, फल फूलनसे सब बन भरे ॥ १०३ ॥ उंगल चार प्रमाण जु घास, सुंदर मृग चरते सुखरास । नहीं चांदनी नहीं आताप, शीत ग्रीष्मको नहीं कलाप ॥ १०४ ॥ वर्षादिक ऋतु फिरत न जहां, रात्रि दिवसको भेद न तहां । सौम्यकाल सुखदायक तहां, कोई उपद्रव होय न जहां ॥ १०५ ॥ आदि व्याधि अरु जरा जु रोग, स्वपने नाहीं व्यापे सोग । इष्टवियोग होय नहीं जहां, तिम अनिष्ट संजोग न तहां ॥ १०६ ॥ नही आलस नही निद्रा जान, नही नेत्र माही झपकान । नही मल मूत्र होय सर्वदा, स्वेद लाल जहां नाही कदा ॥ १०७ ॥ नार पुरुषको नाहि वियोग, अनाचारको नही संजोग । नहीं भोगोंमें अंतर होय, अरुच खेद मद ग्लान न कोय ॥ १०८ ॥ बाल सूर्य जो दिपै अभंग, तीन कोसकी देह उतंग । तीन

पल्यकी आयु सु धार, अद्भुत सुंदर शुभ आकार ॥ १०९ ॥

अडिल्ल—वज्र वृषभ नाराच संहनन जानये, दिव्य रूप लावण्य सहित उर आनये। भोगोपभोगतनी सामग्री सम कही, सब समान सुख भोग करैं निश्चय यही ॥ ११० ॥ बदरी फल सम ले अहार दिन त्रय गये, सबके मंद कषाय इसे होते भये। शुभ आशय सब धरैं आय निश्चित ही, हीनाधिक बिन दस-विध सुख भुंजत तही ॥ १११ ॥

चौपाई—दसविध कल्प तरोवर सार, कल्प माखि छाया सुखकार। पात्रदान अनुमोद पसाय, नाना विधके सुख लहाय ॥ ११२ ॥ दंपत साथ ही जन्म लहाय, मात पिता तब ही मर जाय। भगनी पुत्र सुविकलप नाह, छींक जंभाईसे मृत्यु पाय ॥ ११३ ॥ जिनके है कोमल परणाम, मरण सुकर पावे सुरधाम। दान कुपात्र करैं जे जीव, ते वहांके मृग पशू सदीव ॥ ११४ ॥ ते भी युगल सुजन्मत सोय, तिनें उपद्रव कोय न होय। इम प्रकार कुरुक्षेत्र मंझार, वज्रजंघ आदिक वर सार ॥ ११५ ॥ पात्र दान फलसे उपजाय, सुख सागरसे मगन रहाय। अब मतिवर आदिक परधान, नृप वियोग दुख ठान महान ॥ ११६ ॥ चारौं उर वैरागित भये, जग सुख [illegible] अथिर लख लये। वज्रबाहु नृप सुतको राज, देकर कीनौं आतम काज ॥ ११७ ॥ दृढ़ धर्मा नामा मुनि पास, छोड़ौ सब परिग्रह दुख रास। लीनी दीक्षा तब हर्षाय, जासेती शिव शर्म लहाय ॥ ११८ ॥ यत्न थकी विहरैं मुनि सार, पुर अटवी शुभ देश

मझार । वसे विषम अति बनके बीच, पढ़ै जिनागम सहत मरीच ॥ ११९ ॥ मोह कषाय अरी कृष करे, दश विध धर्मसु उरमें धरें । द्वादश विध तप तपते भये, घोर परीषह चिरलौं सहे ॥ १२० ॥ अंत विषै सन्यास सुधार, आराधी आराधन चार । समता जुत तजके निज प्राण, तप जपसे फल लहो महान ॥ १२१ ॥ ग्रैवक अधो नाम सुखकार, जाय मुनीश लियो अवतार। अहमिंद्र पद पाय महान, ज्ञानादिक गुण भूषित जान ॥१२२॥दोय हस्तकी देह उतंग, दिव्य अंग अद्भुत सुअभंग । तेईस सागर आयुप धार, शुभ विक्रय धारे सुखकार ॥१२३॥ निज स्थान बैठे हितकार, वंदे जिनकल्याणक सार । अतुल सुक्ख भोगे अधिकाय, प्रिया राग जिन दूर बगाय ॥ १२४ ॥ वज्रजंघ चर आरज जबै, निज स्त्री संग बैठो तबै। निज लक्ष्मी अवलोके सोय, कल्पवृक्षसे उपजी जोय ॥ १२५ ॥ सूरजप्रभ नामा सुर सार, जाबैथो आकाश मझार । निरखत जाती सुमरण भयो, पूरव भव अपने लख लयो ॥ १२६ ॥ तब ही नभ मंडलके बीच, युगचारण मुन महत मरीच । ज्ञान सु गुण धारध मुनिराज, उतरत देखे धर्म जिहाज ॥ १२७ ॥ तिनकौ निरखो आये महंत, प्रिया सहित उठ नमन करंत । पूरब भव संस्कार पमाय, बारंबार नमो सिर नाय ॥ १२८ ॥ मुनिवर तिनकौ नमन करंत, निरख सुधर्म वृद्ध उचरंत । नमके मुनिसे प्रश्न सु कीन, हे स्वामी जग करुणा लीन ॥ १२९ ॥ तुम यहां किस कारणते आय, तुम कुण होये सर्व बताय । हे मुनि-

वर तुम दर्शन मात्र, स्नेह बढो अधिको मम गात्र ॥ १३० ॥ किस कारणसे स्नेह सु करौ, हे सुखद सो सब उच्चरौ। इस प्रकार सुन प्रश्न अनूप, जेठे मुन बोले हित रूप ॥ १३१ ॥ कारण स्नेह तनौ मैं कहूं, जासेती सब संशय दहूं। महाबल नृपके भव सु मझार, वृष उपदेश दियो हितकार ॥१३२॥ स्वयंबुद्ध मंत्री बुद्धवान, जैनी पंडित मुझको जान। तुम वियोग कीनौ दुखकार, बोध पाय वैराग्य सुधार ॥१३३॥ दीक्षा धर तप कीनो सार, तातैं उपजो स्वर्ग मझार। प्रथम कल्प सौधर्म सु नाम, जान विमान स्वयंप्रभ ताम ॥१३४॥ मैं मणिचूल नाम सुर भयौ, एक जलध तक सुख बहु लहो। जंबूद्वीप सु पूर्व विदेह, पुष्कलावती देश गिनेह ॥ १३५ ॥ तामध्य पुण्डरीकनी पुरी, जा आगे सुरपुर दुहदुरी। प्रियसेन राजा सुखधाम, सुंदर नाम तिया ग्रह ताम ॥ १३६ ॥ स्वर्ग थकी चय कर मैं आय, इनके उपजौ बहु सुखदाय। जेठो मैं प्रीतंकर भयो, प्रीतदेव लघु भ्राता थयो ॥ १३७ ॥ जिन स्वयंप्रभके ढिगसार, विरकत ह्वै हम दीक्षा धार। तप बल अवधिज्ञान उपजाय, चारण ऋद्धजुत गमन कराय ॥१३८॥ ज्ञानथकी तुम यहां लखाय, हितधर हम संबोधन आय। समकित ग्रहण करावन काज, जासे पावो शिवपुर राज ॥ १३९ ॥ नृप महाबलके भव सु मझार, ह्वै प्रबोध तौ पण भी सार। समकित दर्शन नाही पाय, काल लब्धि बिन क्यौं कर थाय ॥१४०॥ काल अनादि थकी यह जीव, मिथ्या तप कर तपत सदीव। काल

लब्धि बिन कबहू न पाय, समकित दर्शन शिवसुखदाय ॥१४१॥
काललब्धि जब प्रघटे आय, समकित दर्शन तब ही थाय।
तिनकौ हेत सुनौ धर ध्यान, मैं भाषूं सो निज चित आन ॥१४२॥
देव शास्त्र गुरु गुणयुत जान, इनकौ सांचौ जो सरधान।
तत्त्व सु धर्म पदारथ मान, सोई समकित दर्श महान ॥१४३॥
जिन गुरुतत्त्व संक नहि आन, सोइ निसंकित गुण परधान।
इस परलोक भोगकी आस, छांडे सो निःकांक्षित भाष ॥१४४॥
मुनि शरीरमैं होय पसेव, देखग्लानि नहि करे सु एव। निर्वि-
चिकित्सा अंग है सोय, धर्मतत्त्व परखे बुद्ध जोय ॥ १४५ ॥
छांड मूढता चेतन होय, सोइ अमूढ दृष्टगुण लोय। ढके
सुधर्मी जनको दोष, सोई उपगूहन गुण पोख ॥ १४६ ॥
धर्म चलितको वृषमैं थाप, सोई स्थितिकरण निःपाप। चार
संघसों धारे प्रीत, वात्सल्य अंगकी यह रीत ॥ १४७ ॥
जिनशासन उद्योत सु करै, सो प्रभावन अंग चित धरे। इम
आठौं यह अंग महान, समकित धर्म तने सुख खान ॥१४८॥
दुष्ट कर्मकी जो संतान, ताके घातक बुद्ध निधान। तीन मूढता
तज दुखदाय, देवशास्त्र गुरु परख सु भाय ॥ १४९ ॥ जात्या-
दिक आठौं मद त्याग, षट अनायतन तज बड भाग। तज
संकादिक आठौं दोष, पचीसमल तज दर्शन पोष ॥ १५० ॥
कैसी है समकित हित सार, मुक्त धामको सीढी सार। ज्ञान
चरितको मूल विचार, दर्शन उत्तम सुख करतार ॥ १५१ ॥
समकित दर्शन जो धारंत, कैयक भवमैं मोक्ष वसंत। तीन

जगतमें जो कछु सार, सुख संपत्त वर पद निर्धार ॥ १५२ ॥ बड़ी विभूति अचरज कर्तार, जिनवर भक्त लहे सुभसार। तीर्थंकर होवे सुखदाय, तीन जगत सेवे तिसपाय॥ १५३ ॥

गीता छंद–अहमिंद्र चक्री शक्र संपद पाय सम्यक्ती सदा, बरजन्म जीवत बुध सकल जो धरे समकृति उरमदा। दृगरत्न भूषित अंगजाको निज अलिंगन देत हैं। शिवतिय मुदाफुन क्या कथासुर प्रियांगणकी कहत हैं॥ १५४ ॥ सम्यक्त सम नहि धर्म कोई लोकमें सुमहान है। मिथ्यात सम नहि पाप दूजो देय नर्कसु थान है। हे आर्य इसविध जानकै सम्यक्तको ग्रहण करो, शिवकाज जिनवर गुरोंकी आज्ञा सु निज उरमें धरो ॥१५५॥

चौपाई–हे आर्या अब तुम भी सारा, सम्यक्त रत्न धरो हितकार। जासें स्त्रीलिंग न होय, अव्वल सुख पावो मल खोय ॥ १५६ ॥ सम्यग्दृष्टि जो नर होय, ऐसी गति पावै नहीं सोय। स्त्री नपुंसक अरु कुल नीच, लघु आयुप में लहे न मीच ॥ १५७ ॥ विकल अंग दारिद संजुक्त सम्यक्ती नहीं ह्वै जिन उक्त। नीच स्थान अर पदवी नीच, नर्कादिक तिर्यग गति बीच॥१५८॥ नृत नाही तोभी नही लहे, उत्तम सम्यकधारी बहे। बहु कहनेसे कारज कौन, सुरनर गति पावे सुख भौन ॥१५९॥ अरु बहुत गति दुख दातार, सो नाहि पावै दर्शनधार। पात्र दान वृषके पर भाय, खाद्य स्वाद्य अमृत जिन पाय ॥१६०॥ उत्तम अंग शरीर अनूप, तीर्थङ्कर होवे शिवभूप। ज्ञानथकी दरशन सुमहान, श्री सर्वज्ञ सुभाषित मान॥ १६१ ॥ अथवा

जिम सब रत्न मझार, चिंतामणि सम दर्शन सार। इम बच सूरज किरण समान, ताकर मिथ्या तमको हान॥ १६२ ॥ अंतर थित अज्ञान नशाय, मुनि पादांबुज नमन कराय। स्त्री पुरुष तबै हरषाय, समकित अंगीकार कराय॥ १६३ ॥ संकादिक दूषण कर मुक्त, अष्टगुणन करके संजुक्त। व्याघ्रादिकके जीव सुजान, मुनि बच अमृतको कर पान॥ १६४ ॥ मिथ्या विषको वमयो तबै, दर्शन ग्रहण कियो तिन सबै। तिन चारण मुनिको तिस घरी, सब जियने मिल बंदन करी॥ १६५ ॥ मुनि नै धर्म वृद्ध तब दियो, गमन अकाश मांहि मुन कियो। जब चारण मुन दोनौं गये, तब यह नर तिय चितवत भये॥ १६६ ॥ इन म्हारौ कीनो उपकार, इम स्तवन कर वारंवार। देखो यह योगीन्द्र रिसाल, परकारज साधत सुविशाल॥१६७॥ ज्ञानऋद्ध गुणके भंडार, सार्थवाह शिव पथ निरधार। कहां मुनी वह वीतसुराग, हम पर कीनों धर्म सुराग॥ १६८ ॥ निधि अरु कल्पद्रुम सुखकार, चिंतामणि कर पर उपगार। तैसै ही सज्जन जन सदा। पर उपगार करें ह्वै मुदा॥१६९॥ धन्य वही योगिन्द्र महान, पर कारजमें तत्पर जान। पर दुख देख दुखी जे होय, निज दुख याद करै नहीं कोय॥ १७० ॥ सर्व पापको कियो विनाश, स्वच्छ पुन्यको कियो प्रकाश। तिन मिलापसे यह फल भयो, सुगति प्रथाको मुख लख लयो॥१७१॥ जिम जिहाज विन समुद न तिरे, त्यों सतगुरु बिन भवदुख भरे। जिम दीपक बिन रजनीमांह, कोई पदारथ दीखत नांह॥१७२॥

तैसे गुरु बिन धर्म न सूझ, मुक्त मार्गसे रहे अबूझ। जिम पयोज बिन सरवर जान, लवण विना जो भोजन मान ॥ १७३ ॥ बिना दान जो लक्ष्मी होय, इनकी शोभा नाहीं कोय। त्रिया पुरुष बिन सोभै नांह, शील क्षमा बिन पंडित कांह ॥१७४॥ संजम बिन त्यागी नहीं थाय, इंद्रीजय बिन तपसी नांह। तत्वज्ञान बिन ध्यान निकाम, दर्शन बिन व्रतविध है ताम ॥१७५॥ तैसे ही गुरु बिन जन मही, शोभा कबहूं पावै नहीं। इम परोक्ष स्तवन सु कीन, नमकर हूं दर्शनमैं लीन ॥ १७६ ॥

गीता छंद–इम पुन्य फल कर सबहि आरज कल्पतरु दश विध तने, सुख भोगते अनुपम सु तबही दुक्ख नाम नहि सुने। दर्शन रतन प्रापत भई सो मुक्त कारण जानिये, इम ज्ञानवान सु जानकर नित धर्म उरमैं आनिये ॥ १७७ ॥ इम धर्मसेती गुण सु पावै अर्थ सुक्ख सबै लहैं, इम धर्म करके मोक्ष पद लह जग उदधि मैं ना बहै। त्रै जगतमैं हितकार वृष सो दूसरो कोई नहीं, जिस धर्म बीन क्षमा सु जानो सोई मम उर हो सही ॥ १७८ ॥ तुलसी पतादिकको निरख मैं वर बिशेष सु मानिया, उनिका स्वरूपजु देखिके तुम वीतराग पिछानियां। तुम देखते वे कुछ नही जिन कांच मणि अंतर कहो, सागर सुबुद्धवर्धनको शशि तुम और देव नही लहो ॥ १७९ ॥

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचित श्री वृषभनाथ चरित्रे मंत्री प्रोहत सेनापति श्रेष्ठ व्याघ्र सूकर नकुल बानर भवांतर वज्रजंघचरार्य श्रीमती चरार्या भोग सुख सम्यक्त लाभ वर्णनो नाम: पञ्चमः सर्गः ॥५॥

अथ षष्ठम सर्ग।

दोहा—गुरु गुणगणकर पूर्ण है, सम्यग्दर्शन दाय। बिन कारण जग बन्धुवर, वन्दूं तिनके पाय ॥ १ ॥

पायता छन्द—अब ते षट जिय सम्यग्दृष्टी, भोगे सुखतैं उत्कृष्टी। त्रैपल्य आयु भुगताई, सुखकर सो प्राणत जाई ॥२॥ सम्यक्रत्न चित धरके, वृषमाही ध्यानसु करके। जगमैं सुखकारी जो है, ईसान स्वर्ग सुलहो है ॥ ३ ॥ तहां श्री प्रभनाम विमाना, वज्र जंघ जीव उपजाना। तिह श्रीधर नाम धरायौ, बहु ऋद्ध सहित सुख पायो ॥ ४ ॥ श्रीमति राणी जो थाई, तिन स्त्रिलिंग छिदाई। सो विमान स्वयं प्रभ माही, सुर नाम स्वयं प्रभ थाई ॥ ५ ॥ सिहकौं जो जीव बखानौं, चित्रांगद नाम विमानौं। चित्रांगद नाम सुदेवा, तिन ऋद्ध लही बहु भेवा ॥ ६ ॥ जो पूर्ववराह बतायौ, तिन नंद विमान सुपायो। निजरमणि कुण्डल नामा, नाना विध ऋद्धको धामा ॥ ७ ॥ बानर चर पूर्व बखाना, सो नंदावर्त विमाना। सुरनाम मनोहर थाई, लह सुंदराग सुखदाई ॥ ८ ॥ जो नकुल जीव सुखदाई, सो विमान प्रभाकर थाई। निर्जर सुमनोरथ नामा, हुवो सो तिस ही ठामा ॥ ९ ॥ तिन सम्यक धर्म फलाई, सो देव भयो दिव जाई। तेतिस वृषके सिद्ध काजे, पूजासु करत जिनराजे ॥ १० ॥ जिन मूर्ति त्रिलोकीमें जो, कल्याण जिनेश्वरके जो। तिन सबकी पूजन करते, इम पुन्य भंडार सु भरते ॥ ११ ॥ सुख नाना विध भोगाई, देवी आदिक सुखदाई। त्रैज्ञान

विक्रिया मांही, रम है सुखसागरमाही ॥ १२ ॥ एके दिन उन सुर जानो, प्रीतंकर मुनि महानो । तिन केवलज्ञान उपाई, सो मम गुरु है सुखदाई ॥ १३ ॥ ऐसो विचार सु कराये, श्री प्रभ पर्वतपे आये । परवार सबै संग लीना, गुरु भक्ति माह चित दीना ॥ १४ ॥ सर्वज्ञ सुदर्शन पायो, हितसो तिन शीस नमायो। सब देवन पूजा ठानी, आनंद जुत तहां बैठानी ॥ १५ ॥ तिन धर्म श्रवण रुच कीनी, गुरु चरणनमें दिठ दीनी । फुन केवलकी ध्वन सुनके, तत्वादिक गर्भित मुनके ॥ १६ ॥ तब श्रीधरदेव पुछायो, उठकर परणाम करायो । जो महाबल भवके मांही त्रय मंत्र कुदृष्टी थाई ॥ १७ ॥ उनने मिथ्यात पसाई, किम किम दुर्गत दुखपाई । इम प्रश्न कियो सुर जब ही, दिव्य ध्वन खिरीसु तब ही ॥ १८ ॥

चौपाई—बुद्धवान सुन धरके कान, फल मिथ्यात अशुभ गति थान । मंत्री दो मिथ्यात पसाय, ते निगोद गति पाई जाय ॥ १९ ॥ तिन भुगतो दीरघ संसार, जामें दुखके नाही पार । दुमृत्यादि जो दुख पाय, सो दुख भोगे कहे न जाय ॥ २० ॥ नास्तिक मत खोटो आचार, मनमें धर मिथ्यात्व असार । शुद्ध धर्मकी निंद्य जो करी, खोटे मारगमें बुद्ध धरी ॥२१॥ देव शास्त्र गुरु निंदा करी, सो निगोद पहुंचे दुखभरी। धरे कुशील पाप बुध धार, चिरलों दुख भुगते नहि पार ॥२२॥ सनमति जो तीजो परधान, मिथ्या दुर्मत अघको ठान । रौद्र-ध्यानसे पाई मीच, उपजो द्वितीय नर्कके बीच ॥ २३ ॥

पद्धड़ी छंद–ये रौद्रध्यान करके अतीव, आरंभ परिग्रह धर सदीव। खोटी लेश्या मद तीव्र धार, अव्रती धर्म द्वेषी विचार ॥ २४ ॥ मिथ्या मारगमैं लीन होय, अघ कीने तिन गिनती न कोय। नित स्वभावमें धरे कषाय, नर्क विले उपजो दुख काय ॥ २५ ॥ इम प्रकार सुन गिरा अनूप, प्रश्न कियो श्रीधर सुख रूप। जिन कथा कथा दुख नर्क मझार, अरु कैसी यक स्थित निर्धार ॥ २६ ॥ तब जिनवर वच भाषे ऐम बुद्धवान सुन धरके प्रेम, नर्क तनो लक्षण दुखदाय। होवे मिथ्या पाप पसाय ॥ २७ ॥ पल आसक्त जल थल नभ चार, होय असैनी पापाकार। प्रथम नर्क ये जावे सही, यामैं संसय रंचक नहीं ॥ २८ ॥ श्री सर्प जो महा अघकार, द्वितीय नर्क जावे निर्धार। पक्षी तीजी धरा मझार, चौथी लहे सर्प अघकार ॥ २९ ॥ सिंह पंचमें नर्क हि जाय, षट सप्तम नरमत्स लहाय। रत्न शर्करा प्रभा सु जान, त्रितिय बालुका प्रभा बखान ॥ ३० ॥ पंक प्रभा चौथी दुखकाय, धूम्र प्रभा पंचम लख भाय। षष्टम तमनामा दुख खान, अन्तम महातमा दुख दान ॥ ३१ ॥ ये सातौंकी प्रभा बखान, अब इन नाम सुनौ धर कान। सातौं नीचे नीचे कही, घम्मा नामा प्रथमकी मही ॥ ३२ ॥

दोहा–वंसा मेघा अंजना, और अरिष्टा जान। मघवी षष्टम जानिये, अन्त माधवी थान ॥ ३३ ॥

चौपाई–तिनमें जो उपपादिक स्थान, मधु छत्तावत दुक्ख

निधान। नीचे मुख ऊपरको पाय, पापी ऊँच दशा न लहाय ॥ ३४ ॥

पद्धड़ी छन्द–पर्याय अन्त लो दुक्ख पाय, दुस्सह दुर्गंध सही न जाय, पूरण शरीर दो घड़ी बीच। तिनकी है आकृत अति ही नीच ॥ ३५ ॥ तहां भूमपरस दुष इसो जान, बिच्छू सहस्र जो डसे आन। तासे भी अधिकी पीड होय, थामैं संशय नाही सु कोय ॥ ३६ ॥ जहां भूमी कंटक सहित थाय, उद्धरत सुगरित दुख बहु सहाय। तिम पृथ्वीकी गरमी पसाय, नारकी गिरे उछले अथाह ॥ ३७ ॥ जिम ततवा तिल उछल जाय, तैसी वेदनको ये लहाय। तिस काल नयौ नारक जु पेख, सब धाय धाय मारत विशेष ॥ ३८ ॥ जब छिन्न भिन्न सब अङ्ग थाय, तब ही पारेवत फिर मिलाय। पूरव भव कौंक २ बैर याद, आपसमें करये बहु वेवाद ॥ ३९ ॥ आपसमैं देवें दंड घोर, तिनको कहते आवे न ओर। तहां असुरकुमार सु देव आय, त्रय पृथ्वी तक दुख दे अपाय ॥ ४० ॥ पुर जन्म बैरकौ दे बताय, तब ते नारक अति युद्ध कराय। जहां नारक विक्रय रूप धार, गृद्धादिक बन करते प्रहार ॥ ४१ ॥

पायता छन्द–केई कोल्हूमैं पिलवाही, केई तले कड़ाहेमाही। जिन पूरव मांस जु खायो, तिन लोह तप्त कर प्याओ ॥४२॥ तिस पीने सेती जानो, मुखकण्ठ हृदय सु जलानो। जे पर त्रिय प्रीत कराई, ते लोहांगन लिपटाई ॥ ४३ ॥ तिस आलि-

गन कर तब ही, होवे मूर्छागत जब ही। मर्मांग विषैं दुख-कारा, दे वज्रदंडकी मारा ॥ ४४ ॥

लावनी मरहटी-शाल्मली द्रुम जहां दुखकारी, वज्र कंटक मय सुखहारी। तिसके ऊपर जु चढ़ावे, फिर नीचेकों घिसटावें ॥४५॥ नदी वैतरणीके माहीं, वहुत दुर्गंध तहां पाही। राध अरु रुधिर तनी कीच, न्हलावैं हैं ताके बीच ॥ ४६ ॥

मरहटी—चारों तरफ फुलंगे निकसे ऐसी सेजपैं सुललावें। छुवत मात्र सब अंग भस्म हो, ऐसे बहुविध दुख पावें । तहां असपत्र जु बन है भारी, दाह मेटने तहां जावे। तिनके दल तरवार सारखे, लगत छिन्न भिन्न वपु थावे ॥ ४७ ॥ सुख कारन पर्वत पर जावे, वहांसे नारक पटकावे। केई आरे सौं तन चीरे, मर्म अस्थि सब भिद जावे ॥ केई तप्तसूई कर लेकर, मस्तक माही चुभवावें। केइ नारकी घाव सुमाही लेकर नून सु बुरकावे ॥ ४८ ॥ जिन पहले अन्याय जु कीनों, तिनतप्ता-सन बिठलावें। केई अन्तर माल सु तोड़े, केई अग्निमें जल-वावे ॥ केई नारक आंख उपाड़े, जिन नेत्रननसे अघ कीने। केईक ताचा गाल पिलावे ॥ ४९ ॥

गीता छंद-जहां त्रषा इतनी होत है, जो सर्व सागर जल पिये। तौभी न उपसम थाय है, वहु काल यौं दुख भुगतये ॥ जो तीन लोक सुनाज सब ही, खाय तौ नहि है धापहै, यहां एक कण भी नांहि मिल है, किये पूरे पाप है ॥५०॥ इत्यादि नानाविध सु दुक्ख कर युक्त नर्कभूम है। हिंसक दुराचारी

कुव्यसनी जाय व्हांके दुख सहे ॥ जे पांच इंद्री विषय लोलुप अहारंभ मगन सदा। मिथ्यात्व आदि कषाय संजुत कटुक फल पावै तदा ॥ ५१ ॥ भार्या कुटंब जु सर्व मिलकर भोगमैं भागे सही। ते सर्व साथी बीछडे मैं आनकर यहां दुख लही ॥ ते सब कुटंबी अन्य है यह बात अब निश्चै भई। तिस कारणे मैं दुक्ख भोगे हाय मो मति कहां गई ॥५२॥ यहांपर ये क्षेत्र कु दुखमई अब हाय मैं यहां क्या करूं। कोई न पूछे बात मेरी पाप फल मैं दुख भरूं ॥ सब दिश विषैं यह नारकीके वृन्द मारनकों खडे। ते रौद्र परणामी सबै मिल तेज शस्त्र लिये अडे ॥५३॥

दोहा—स्वामी स्वजन न दिठ पडे, रक्षक कोई नाह। निज दुख अब किससे कहूं, सुननेवाला काह ॥ ५४ ॥

चौपाई—ये अनंत दुख सागर भरो, मोपै कैसे जावे तिरो। आंगोपांग खंड ह्वै जाय, तौ भी अकाल मृत्यु नहीं थाय ॥ ५५ ॥ इत्यादिक चितवन कराह, विषम व्याध वेदन तन थाय। होय असाध्य पीड तन मांह, कोई कहे वे समर्थ नाहि ॥ ५६ ॥ बहुत कहवेसे कारज कौन, सर्वोत्कृष्ट दुखकों मौन। जगमें रोगक्लेश दुख जेह, नरक भूममें सब ही तेह ॥५७॥

दोहा—चख टिमकार मात्र भी, सुख दीसत जहां नांह। दुखसागरमें नित रहे, पापी सुख किम पाय ॥ ५८ ॥

चौपाई—धम्मा आदिक पृथ्वी चार, तहां उष्णता अति दुखकार। तीन नर्कमें सीत महान, ताकी उपमा नाही कहान ॥ ५९ ॥ योजन लाख लोहको पिंड, तिसके गलि

होवे बहु षंड। ऐसी सीत उष्णता जहां, तिस बरननकौं कवि बुध कहां॥ ६० ॥ तीस लाख बिल प्रथम ही जान, द्वितीय लक्ष पच्चीस प्रमाण। तीजी भूमें पंद्रै लाख चौथीमैं दस लाख जु भाष॥ ६१ ॥ तीन लक्ष पंचममें कहे, पण कम इक लख छट्ठी थये। पांच बिले सप्तममें जान, सब चौरासी लक्ष प्रमाण ॥६२॥ सब ही कारागार समान, सब ही दुखदायक पहचान। केई संख्याते जोजन जान, केई असंख्यात परमाण॥ ६३ ॥

दोहा—एक तीन अरु सातकी, दस अरु सत्रह जान। बाइस तेतिस उदधिकी, नर्क आयु जु बखान॥ ६४ ॥ सप्त धनुष त्रय हस्तकी, षट अंगुल अधिकान। प्रथम नरकमें जानिये, काय नारकी मान॥ ६५ ॥

अडिल—दूजी तीजी माहि दुगुण होती गई, सप्तममें धनु पांच सतक काया भई। सपरस अरु गंध वर्ण महा दुखकार है, हुंडक वपुसंस्थान देख भयकार हैं॥ ६६ ॥ आरत रौद्र कुध्यान कुलेश्या है जहां, निज अंगनको शस्त्र बनावत है तहां। ढालकमूनहि बने खड्ग बन जाय है, अशुभ विक्रिया होय पाप परभाय है॥ ६७ ॥ होत त्रिभंगा अवधि तहां दुखदाय है, पूरब भवके बैर याद जु कराय है। जेती जगत मझार वस्तु दुखदाय है, पाप उदै तिन सबको तहां समुदाय है॥ ६८ ॥ पापकर्ममें चतुर मिथ्याती जे सही, दुक्ख अग्र-कर तप्त नर्क भू तिन लही। इस विध दूजे नर्क माह दुखको सहै, शतमति नाम प्रधान पाप फलको लहै॥ ६९ ॥ तुम तहां

जाय संबोधो उस जियको सही, दर्शन ग्रहन कराय धर्म उपदेस ही। धर्म सिवाय न कोय नर्कसे उद्धरे। जीवोंकी स्वर्ग मोक्ष तनी प्रापत करे ॥ ७० ॥ धर्महीसे हो ऊंची गति सुखदायजी, पाप थकी नीचीगति सहजे पायजी। तिस कारणतैं जो जिय दुखसे डरत हैं, सुक्ख तनी वांछा मनमाही धरत हैं ॥७१॥ तिनकों यही उपाय पाप तजके सदा, सम्यक्दर्शन आदि धर्म धारो मुदा। ऐसे जो सर्वज्ञ चंद्र तैं वच करैं, धर्मामृत सम जानदेव निज उर धरे ॥ ७२ ॥ धर्म विषैं रुच धार तबै श्रीधर सही, जिनकों नमन सु ठान नरक जा निरख ही। तहां सत मित अमात्यकों जिय जो थो सही, तासेती यूं कहो महाबल मैं थई ॥ ७३ ॥ पुण्य पापकों फल अब क्यों नहिं पे खरे, तैं मिथ्यात्व प्रशाद यहै दुख देखरे। इस दुखसागर मांह कोई न सहायरे, दुक्ख हरन सुख करन सुवृष बतलायरे ॥ ७४ ॥ धर्म मूल सम्यग्दर्शन मन आनिये, मन वचननकर शुद्ध मिथ्या तज धानिये। काललब्धिवस इम बोधन सुन हर्षियो, कर साचो सरधान मिथ्या विष वम दियो ॥ ७५ ॥ दर्शन लाभ थकी मन बहु आनंदियो, श्रीधर सुरकों नमकर थुत करतो भयो। प्रभु तुम स्वामी पहले भवमें थे सही, वृष उपदेशन थकी यहां भी गुर लही ॥ ७६ ॥ इम अस्तुति कर नमस्कार करतो भयो, सम्यक ग्रहण कर राय देव निज थल गयो। अब जो नारक चयकर जहां उपजाय है, सोही वर्नन सुनों सु मन हुलसाय है ॥ ७७ ॥

त्रोटक छंद—शुभ पुष्कर दीप विषै सुनिये वर पूरब मेरु तहां गुनिये। तह पूर्व विदेह विराजत है, मंगलावती देश सुछाजत है ॥ ७८ ॥ मणि संचैपुर तहं सोम धरे, नृप नाम महीधर राज करे। तिस सुन्दर नाम सुनारी सही, तिस गर्भ विषैं थित आन लही ॥ ७९ ॥ मतमत मंत्री जो पूर्व कहो, तिन छांड़ नर्क यह थान लहो। तिस नाम धरो जयसेन सही, दर्शन फलकर यह थान लही ॥ ८० ॥ सब ज्ञान विज्ञान कला जु गही, शुभरूप गुणादिककी जु मही। जब ज्वान भयो शुभशक्तियुता, तब ब्याह करनमैं लीन हुता ॥ ८१ ॥ जब श्रीधर नाम सुदेव सही, तब आय उसै इम बोध तही। तुम भूल गये दुख नर्क समै। जो कर्न लगे हि विवाह अबै ॥ ८२ ॥ उपदेश सुनो नृपने जब ही, दुखसे भयभीत भयो तब ही। नरकादिक कारण व्याह यही, तिय वैतरणीय सम जान सही ॥ ८३ ॥ यह जान विवाह विरक्त भयो, मुन यमधर नाम सु पास गयो। सुशास्त्र सुनो हितकार सही, शिवकारण संजम बेग गही ॥ ८४ ॥

पद्धड़ी छन्द—तप घोर कियो शोखी कषाय, जिन शुद्ध कियो मन वचन काय। सन्यास सहित मृतको लहाय, वर ब्रह्म स्वर्ग पंचम सु पाय ॥ ८५ ॥ वृष फल तहां इंद्र भये महान, सब देवन कर पूजित सु जान। वर धर्म कर्ममें रत सु थाय, शुभ अवधि ज्ञानसे सब लखाय ॥ ८६ ॥ श्रीधरको निजगुरु जान सोय, तिसकी अस्तुति कीनी बहोय। अब

जंबूद्वीप विषै सु जान, पूरव विदेह शुभ सिद्ध दान ॥ ८७ ॥
तहां नाम महावत्सा सु देश, नगरी जु सुशीमा जान वेष।
तहां नाम सुदृष्टजु राय थाय, तरुणी नंदा नामा लखाय ॥८८॥
सो श्रीधर निर्जर यहां आय, इन पुत्र सुविध नामा सु थाय।
वरकांत कला धारे अनूप, लावण्य सोभयुत दिव्यरूप ॥ ८९ ॥

चौपाई–निज स्वरूपसे जीतो काम, नानाविध शुभ लक्षण धाम। सर्व बंधुजन प्रीत कराय, बालचन्द्र वत वर्द्धत काय ॥९०॥

पद्धड़ी छन्द–जब अष्टम वर्ष भयो कुमार, पाठक सु जैनके पास सार। विद्या सागरको पार पाय, जे जीव तनो लक्षण बताय ॥ ९१ ॥

चौपाई–पूरब भव संस्कार पमाया, धर्म विषै रति धरै अघाया। दान सुव्रत पूजा शुभ करें, जासे भवभव पातिक हरैं ॥ ९२ ॥ क्रमसो यौवन लह सुखदाय, गुणगण कर सोभित अधिकाय। पितुकी राजलक्ष्मी सार, सब ही कीनी अंगीकार ॥ ९३ ॥ अभयघोष मातुल चक्रेश, मनोरमा ता सुता विशेष। गीत नृत्य वादित्र बजाय, पाणीग्रहण ता संग कराय ॥ ९४ ॥ बुद्धवान तिस संग नित मुदा, भोगे भोग निरंतर सदा। धर्म विषै अति दृढ़ चित धरे, श्रावक व्रत शुभ पालन करे ॥ ९५ ॥

अडिल्ल–श्रीमतिचर जो देव स्वयंप्रभ थायजी, दिवसे चय सुत इनके उपजो आयजी। केशव नाम महान पराक्रमधर कहो, पिता समान सुगुणगणको धारक भयो ॥ ९६ ॥

गीता छंद–श्रीमतीनामा प्रिया जो वर वज्रजंघ तनी कही,

सो आन केशव सुत भयो संसार रूप लखो यही। पूरब सुभव संस्कार बस नृप स्नेह बहु बढतो भयो, शार्दूल चर आदक सु प्राणी देश इसही जन्मयो ॥ ९७ ॥ जो भोगभूम गये हुते वहांसे सुरालय थायजी, तहांसे सु चय नृप सुत हुवे तिन कथन सुन सुखदायजी। प्रियदत्ता मातासु भिभीषण पितु कहो। बरदत्त नाम सुजान व्याघ्र चरने लहो ॥ ९८ ॥ नंदषेण राजा सु अनंतमती तिया, सूकर चर जो मणि कुंडल देवहि भया। सो चय इनके पुत्र भयो सुखदायजी, संवरसेन सु नाम पुन्यमय थायजी ॥ ९९ ॥ है महीपर रतिषेण चंद्रमति तिय सही. मर्कट चर चित्रांगद सुत हुवो वही। नाम प्रभंजन-राय चित्र मालन तिया, तिनके नकुल सु आय प्रशांत मदन भया ॥ १०० ॥ सब सुंदर आकार समान सु पुनधनी सम है राज विभूत धर्म दृढ़ता घनी। सुविधरायसे प्रीत सभी करते भये, पूरवभवके स्नेहतने बस सब थये ॥ १०१ ॥ अतिशय करके धर्मविषैं चित लायजी, चिरलौं नानाविधके सुख भोगा-यजी। ऐके दिन चक्रीके संग सब रायजी, नाम विमलवाहन जिन वंदन थायजी ॥ १०२ ॥

पद्धड़ी छंद—तिनकी पूजन चक्री सु कीन, तपको परभाव लखो नवीन। मनमें इसविध चिंतवन ठान, तपसे पावैं संपत महान ॥ १०३ ॥ तौ अब विलंब हम किम कराय, जो चक्रवर्त लक्ष्मी तजाय। इसके बदले हो मोक्षराज, तौं हमको तजते कहा लाज ॥१०४॥ इत्यादिक सुभ मन कर विचार, तज काम

भोग वैराग्य धार। रत्नादिक निध तृणवत सु त्याग, निज आतम मांही चित्त पाग॥ १०५॥ मन वच काया जिन नगन ठान, जिनदीक्षा ली शिवसुक्खदान। अरु चक्रवर्तके साथ सार, सुतपंच सहस जिन तप सुधार॥ १०६॥

चौपाई—दस सहस तियधर संवेग, राज अठारह सहस सुवेग। इन सब ली जिन दीक्षा सार, स्वर्ग मोक्षके सुख करतार॥ १०७॥ अब ये अभयघोष मुनराय, ध्यान अग्नितैं कर्म जलाय। नव सुलब्ध लह सुखकी रास, केवलज्ञान कियो परकाश॥ १०८॥ बहु सुर आय सु पूजन कियो, अपने सुर पदको फल लियो। योग निरोध किये मुनराय, मोक्षथानमैं निवसे जाय॥ १०९॥ वरदत्तादिक भूपत सार, जो सिंहादिक जीव निहार। तिन चारन मिल दीक्षा लई, घरकी ममता सब तज दई॥ ११०॥ ग्राम देश बन करत विहार, निःप्रमाद इंद्रीजित सार। उत्तम क्षमा आदि दस धर्म, शुभ ध्यानन कर हरते कर्म॥ १११॥ घोर तपस्या तपते भये, मोक्षमार्ग परिवर्तन ठये। सुविधराय जो पुण्यनिधान, सो वैराग्य भये सु महान॥ ११२॥

पद्धड़ी छंद—संसार देह भवसे विरत्त, तौहू सुत नेह धरे सु चित्त। तातैं घरकौ न तज कराय, तब राजभार केशव थपाय॥ ११३॥ उतकृष्ट सु श्रावक पद सुधार, एकादसमी प्रतिमा संभार। केशव निज योग्य सुव्रत गहाय, केवलको नमि निजगृह सु आय॥ ११४॥ ग्यारह प्रतिमा श्रावक सु थान,

तिनको संक्षेप करूं बखान । जो सप्त व्यसनको करे त्याग, वर अष्ट मूलगुणमें सु पाग ॥ ११५ ॥ दर्शनविशुद्धको धार सोय, सो दर्शनप्रतिमा धार होय । पच्चीस दोषकर रहित थाय, वर अष्ट अंगकर सहित भाय ॥ ११६ ॥ जो पंच अणुव्रत धरे धीर, त्रैगुण व्रतको पाले गंभीर । शिक्षाव्रत चार धरे महान, इम बारा व्रत धारे सुजान ॥ ११७ ॥

गीता छंद—मन वचन काय त्रि सुद्ध कर त्रस जीवकी रक्षा करे, सब व्रतनको है मूल येही प्रथम अनुव्रत चित धरे । जो स्थूल झूंठको त्यागकर सतवचन हितमित उच्चरे, सोई सुबुद्ध ज्ञानी सु श्रावक द्वितीय अणुव्रत आदरे ॥ ११८ ॥ भूली जु विसरी वस्तुको जो ग्रहण चित नाही करे, अहित्रत गिने पर वस्तुकों सो त्रितीय व्रत चितमें धरे । पर त्रिय वडीको मात सम वय सदृशको भगनी चया, लघुको सुता सम जो गिने बुद्ध सोई चौथा व्रत कहा ॥ ११९ ॥ क्षेत्रादि दसविध संगको परमाण चित मांही करो, यह लोभ पाप पिता समझ तृष्णा कुनागन परहरो । इम पंच पापन त्याग कारण पंच व्रत उर धारये, दिग्देशकी मर्याद कर कु अनर्थदंड निवारये ॥१२०॥ सब जीव मात्र विषै सु समता भाव संजम उर धरे, शुभ देव शास्त्र गुरुनकी त्रैकाल नित वंदन करे । सोई सामायक जान ये शिक्षा सुव्रत पहलो यही, उपवास चारों सदा कीजे एकमहीनोमें सही ॥१२१॥ मुनिवत सकल आरंभ तजके जाय जिनमंदिर रहे, ये जान शिक्षा व्रत सु दूजो नाम इस प्रोषध कहे । जहां चव प्रकार

आहार त्यागे पंच इन्द्री विषय तजै, अरु त्याग शिक्षाव्रत सु दूजो ॥ नाम इस प्रोषध कहै ॥ १२२ ॥

उक्तं च श्लोक—कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते, उपवासो सः विज्ञेया, शेषा लंघनकं विदुः ॥ १२३ ॥ भोग और उपभोगकी मर्याद जो धारे सदा। अ'र पांच इंद्री बस करे नहीं कंदमूल गहे कदा, सब हरित काय तनी सु संख्या करे आयु पर्यंत ही। सत्रह सु नेम 'हि नित्य धारे, तास सुन बिरतंत ही ॥ १२४ ॥

उक्तं च १७ नेमके श्लोक—भोजने १, षटरसे २ पाने ३ कुंकुमादि ४ विलेपने, पुष्प ५ तांबूल ६ गीतेषु ७, नृत्यादौ ८ ब्रह्मचर्यके ९ स्नान १० भूषण ११ वस्त्रादौ १२, वाहने १३ सयना १४ सने १५। सचित्त १६ वास्तु १७ संख्यादौ, प्रमाणं भज प्रत्यहं ॥ १२४ ॥ नित पात्रकी जो बाट देखे आय गृहके द्वारजी, जादिन सुपात्र हि नाह आवे दुख अति चित धारजी। अथवा सु बेला टालके नित आय भोजन कौ करे, चित माह दान सु भाव राखे अन्त शिक्षाव्रत धरे ॥ १२५ ॥ बारह सुव्रत इम पालकर अन्त सल्लेखन ग्रहे, यह दूसरी प्रतमातनी विध सुबुधजन चितधार है। विधयुक्त बर सु करे समायक तीनकाल विषें सही, सो तीसरी प्रतमा सु जानो पुन्य उपजनकी मही ॥ १२६ ॥

अथ सामायक काल लिख्यते ॥ उक्तं च ॥ नीतिसार ग्रंथे इद्रंनंदि आचार्य कृत ॥ श्लोक ॥ घडी चतुष्टये रात्रे कुर्यात् पूर्वाह्ण-वंदना मध्याह्नस्यापि नियते मो नाडीद्वैमुदाहुता (११६) अपराह्णेतु

नाडीनां चतुष्टाटय्यासमाहितं नक्षत्रदर्शनान्मुंचे सामायक परिग्रहं (११७)
जो नियमसे षट दस पहर पर्वीनमें प्रोशध करे, अतिचार पांचौ सदा त्यागे तुर्य प्रतमा सो धरे। जो बीज पत्रादिक सचित ही त्याग प्रासुक जल गहे, सो सचित त्याग सु नाम प्रतमा पंचमी जानौ यहै ॥ १२७ ॥

पद्धड़ी छन्द—जो रात्र विषै भोजन तजंत, ब्रह्मचर्य दिवस मांही धरंत। जो खाद्य स्वाद्य अरु लेय पेय, निस विषे सर्व भोजन तजेय ॥ १२८ ॥ सो षष्ठम प्रतिमा धार जान, षट मास बरसमैं व्रत महान। जो ब्रह्मचर्य निस दिन धराय, सो सप्तम प्रतमा धार भाय ॥ १२९ ॥ गृहके मध्य अघकारज कुथाय, वाणीज्यादिक बहु विध सु भाय। तिन सर्व तजे अघतें डराय, आरंभ त्याग अष्टम कहाय ॥ १३० ॥

चौपाई—वस्त्र बिना सब परिग्रह त्याग, गृह आदिकसे तज अनुराग। ह्वै निर्लोभ चित्त वृषमैं पाग, नवमी प्रतमासो बडभाग ॥ १३१ ॥ कार्य विवाहादिक नहि करै, पापारंभ सबै परहरै। काहू अघ उपदेश न देय, दसमी प्रतमा सो गिन लेय ॥१३२॥ घर तज मठ मंडपमैं रहै, खंड वस्त्र कोपीन जु गहे। निज निमित्त जो कियो अहार, ताकौं नाह गहे बुध धार ॥१३५॥ भिक्षा करके भोजन लेय, ये छुल्लककी रीत गनेय। ऐलक एक कोपीन जु धरं, पीछी कमंडल लोच सु करे ॥ १३६ ॥ विधसूं बैठे लेय अहार, सो ग्यारहमी प्रतमा धार। जो यह ग्यारह प्रतमा धरे स्वर्ग मोक्षको सोई वरे ॥ १३७ ॥

अथ ग्यारह प्रतमाके नाम—उक्तं च गाथा—दंसण १, वय २, सामाय ३, पोसह ४, सचित्त ५, राय भुत्तीयो ६, बमारंभ ७, परिगाह ८, अनुमति ९, त्यागिउ १०, उद्दिट्ठी ११ ॥ १३८ ॥

उत्तम श्रावकके वृत जान, सुविध राय पाले सुखदान। द्वादश तप तपते भये, शिवकारण निज बल प्रगटये ॥१३९॥ अंतकालमैं अनसन धार, सर्व परिग्रह तज दुखकार। परम दिगंबर पदको धार, चारों आराधन संभार ॥ १४० ॥ तन समाध युत तजते भये, धर्मथकी उत्तम गत गये। अच्युत स्वर्ग माह हरि थाय, वृषफल सुरगण पूजे पाय ॥ १४१ ॥ केशव तब ही विरकत भयो, सब परिग्रहकौं पानी दयो। दीक्षा अंगीकार सु करी, घोर तपस्या कर अघ हरी ॥१४२॥ अन्त विषै सन्यास गहाय, तन तज षोडश स्वर्ग हि जाय। तहां प्रत्येंद्र पद पाय महान, बाईस सागर आयु प्रमाण ॥ १४३ ॥ वरदत्तादि चार मुन चंद, नाना विध तप कर गुण वृंद। ते भी षोडश स्वर्ग जु गये, सामानिक सुर होते भये ॥ १४४ ॥ तहां उपपाद सिला सुभ जान, मणि पल्यंक सु संपुट थान। तहां जाय सब जन्म लहाय, एक महूरत योवन पाय ॥ १४५ ॥ वस्त्राभूषण संयुत सबै, मालादिक कर सोभित फबै। संपूरण योवन जुत सार, हर्षित इंद्र उठौ तत्कार ॥ १४६ ॥ जिम निद्रा तज जागत कोय, इम दश दिस अवलोकत सोय। लक्ष्मीदेवी गणको देख, अचरज युत चितवे विशेष ॥ १४७॥

चाल अहो जगतगुरकी—अहो कौन हम थाय कौन

यह सुन्दर देशा, किस पुनते यहां आय जनम लहो सुसुरेशा। किम यह सुंदर नार कहां सुभ महल सु थाई, सप्त प्रकारी सेन सुभग सिंहासन ठाई ॥ १४८ ॥ यह सुभ सभा सुथान देव चाकर व्रत ठाडे, संपत विविध द्रव्यादि निरूप विमान मझारे। यह मुझ देख आनंद भये सबई सही वारी, सेनाके सब लोग देख मुझ हर्ष सु धारी ॥ १४९ ॥

चौपाई—जौं लग यह चिंतवन कराय, निश्चय मनमैं नाही थाय। अवधिज्ञान चख लेसु तुरंत, मंत्री कहो सकल विरतंत ॥ १५० ॥ यह सेन्या जो गजकी सार, गणना याकी वीस हजार। और जो षटकक्षा है सोय, द्विगुण द्विगुण गज तामैं जोय ॥ १५१ ॥ हम सब तुमकौं करत प्रणाम, तुम आदेश चहत सुख धाम। देव प्रशाद करौ सुखकार, मेरे बचन सुनौ हित धार ॥ १५२ ॥ धन्य भये हम नाथ जु आज, तुम उपजनतै हे महाराज। तुमरे जन्म थकी प्रभु सार, हम पवित्रता लई उदार ॥ १५३ ॥ अच्युत नाम कल्प यह सार, ऊरध चूड़ामणि उन हार, जगत ऋद्ध भोजनको धाम। मन संकलिपत है यह काम ॥ १५४ ॥ बचनातीत सु सुख अभिराम, योवन सदा रहे इस ठाम। नाना संपत ऋद्ध निदान, सब कारण अनुकूल बखान ॥ १५५ ॥ पुण्य उपाय इंद्र तुम भये, अच्युत स्वर्ग सु स्वामी थये। यहांकी शोभाको विरतंत, सर्व सुनो मैं कहूं तुरंत ॥ १५६ ॥ योजन असंख्यात संख्यात, रत्न विमान स्वेतकी पांत, एक सतक उनसाठ प्रमाण। अच्युतेंद्रके सर्व-

विमान ॥ १५७ ॥ तामध्य एक सतक तेईस, परकीरणक जानो हे ईश । इंद्रक श्रेणी बद्ध सु कहे, संख्या तिन छत्तिस सरदहै ॥ १५८ ॥ त्रायस्त्रिंशत देवमहान, पुत्र मित्र समतें तिस जान । ये सामानिक जात सु देव, संख्या दस सहश्र गिन लेव ॥ १५९ ॥ आज्ञा विन तुम सम सुख भोग, सब तुमरो चाहै संजोग । तुमरे वपुकी रक्षा करे, सो चालीस सहस यह खरे ॥१६०॥ आत्मरक्ष इनको है नाम, रक्षा करै सु आठों जाम । तुमरी सभा तीन जो जान, देव पारषद तहां तिष्टान ॥१६१॥ एक सतक पच्चीस प्रमाण, पहली सभा माह सुर जान । द्वितीय सभा द्वैसत पंचास, पंचसतक तीजीमै भास ॥ १६२ ॥ लोकपाल चव सुखकी रास, कोटपाल सदृश सोभास । बत्तिस बत्तिस तिनके नार, रूपसो तिनको अपरंपार ॥ १६३ ॥ अर अचुतेंद्रके आठ महान, पटराणी वर रूप निधान । द्वैसै पंचास राणी गिनो, तिनपर एक पटराणी भनो ॥ १६४ ॥ अन्य वल्लभा त्रैसठ सार, दोसहस्र इकहतर धार । इन समस्त देवनके संग, भोगे भोग सदा निर्भग ॥ १६५ ॥ एक लक्ष चौवीस हजार, रूप करे इक इक सुरनार । पटराणी बहु भाषी सोय, त्रैत्रै सभा तिन्होंको जोय ॥ १६६ ॥ परषद जात तहां अपछरा, निवसे रूप सो सोभा भरा । पच्चिस पहली सभा मझार, दूजीमैं पंचास निर्धार ॥ १६७ ॥ एक सतक तीजीमैं सार, पौनेदोसै सब निरधार । इक इक इंद्राणीकी लार, इतनी देवी सभा मझार ॥ १६८ ॥ ये तुमरी सेना जो सात, ताका कथन सुनो इस

भांत। हस्ती घोटक रथ सुभ जान, प्यादे वृषभ पंचमे मान ॥ १६९ ॥ गंधर्व नृत्यकारणी कही, सेन्या सप्त पुन्यतैं लही। एक इकमैं सप्त सुकक्ष, तिनकी संख्या लखो प्रत्यक्ष ॥ १७० ॥ इक कक्षामैं वीस हजार, सो तो द्विगुण द्विगुण चित धार। इत्यादि वर्णन युत सार, देव महर्द्धिक तुम परवार ॥ १७१ ॥ जगत सुसुख भोगो सुखदाय, नाथ सु अद्भुत पुन्य पसाय। इसप्रकार वच सुनें महान, ततक्षण उपज्यौ अवधि सुज्ञान ॥ १७२ ॥ अच्युतेन्द्र पूरब भव सबै, धर्मादिक फल चितौ तबै। अहो पूर्व भव मोह कु अरी, काम इन्द्रिया तस्कर बुरी ॥ १७३ ॥ रिपु कषाय क्रोधादिक सोय, असि वैराग्यसे हनियो जोय। क्रिया संजुक्त सुव्रत धर सार, चिरलौं पाले नियम सुधार ॥ १७४ ॥ द्वादश विध तप कीने घोर, बारह व्रत संजम धरजोर। द्रव्यादिक तज सुभ वृष धरौ, तातैं इंद्र आय अवतरो ॥ १७५ ॥ ऐसी प्रवर सु पदवी माह, धर्महिने थापो सुखदाय। क्रिया सुव्रत शीलादिक सोय, जातै पुन्य उपार्जन होय ॥ १७६ ॥ व्रतको उदै न यहांपर कहो, अव्रतीनाम देवगण लहो। यहां उपजै को समकित सार, यही ग्रहण करनौ सुखकार ॥ १७७ ॥ श्री जिनकी पूजा जे करै, तेई पुन्य भंडार सु भरे। इम विचार जिन मंदिर गयो, श्री जिनपूजा कर हर्षयो ॥ १७८ ॥ जल आदिक वसु द्रव्य चढाय, बहु विध पूजन कर हुलसाय। स्तुति बहु परकार सु ठान। फुनि सुरेश आयो निज स्थान ॥ १७९ ॥ पुन्यजनित निजल

लक्ष्मी सार, कर सुरेश सब अंगीकार। तीर्थंकरके पंचकल्याण, मध्यलोकमें होय महान ॥ १८० ॥ अरु सामान केवली तने, ज्ञान मोक्ष कल्याणक बने। तब यहां आय सु पूजा करै, सामानिक प्रत्येंद्र जुत खरे ॥ १८१ ॥ तीनलोक जिन मंदर सार, सबकी पूजा करे चित धार। अष्टाह्नकके पर्व मझार, नन्दीश्वर जावें सुखसार ॥ १८२ ॥ मेरु कुलाचल आदिक जेह, तिन सबकी पूजा सु करेह। सभा माह जो निर्जर थाय, तिनकौं समकित ग्रहण कराय ॥ १८३ ॥ जिन भाषित तत्वार्थ महान, तिनकौ नित प्रत करे बखान। इत्यादिक जो सुभ आचार, पूजा उत्सव आदिक सार ॥ १८४ ॥ श्री अरहंतकौ वृष चित धरे, आगम श्रवणादिक नित करे। भोग भोगवे धर्म पसाय, देवीगणसेती अधिकाय ॥ १८५ ॥ बाइस सागर आयु सु जास, बाइस पक्ष गये उस्वास। वर्ष सुद्वाविंशत हज्जार, बीते लेवे मनशाहार ॥ १८६ ॥ अवध पंचमे नर्क पर्यंत, तावत मान विक्रयावंत। विस्व देव ता नमें अशेश, रहे मगन सुखमें सु सुरेश ॥ १८७ ॥ तीन हस्तकी सुंदर काय, क्रांत कला धारे अधिकाय। इच्छापूर्वक नृत्य लखाय, कबहुक गान सुने हरषाय ॥ १८८ ॥ करै ते नित क्रीडा सुरनाथ, सामानिक प्रतेंद्रके साथ। महा सु सुखमें मगन रहाय, सर्व दुक्ख जिन दूर भगाय ॥ १८९ ॥

गीता छंद–इस भांत पाय सुरेंद्र लक्ष्मी अतुल धर्म थकी भणी, भोगे सुरगके सुख महा जगइंद्रकौ चूडामणी। यह जान

बुद्धजन सुक्ख अर्थी धर्ममें उद्यम करौ, कर विध संयुत आचर्ण उत्तम असुभ जाते परहरो ॥ १९० ॥ ये धर्म स्वर्ग नरेंद्र लक्ष्मी सुक्ख सब सु देत है, वृषहीसे तीर्थसु नाथ पदवी होय शिव-सुख खेत हैं। बिन धर्म कोई हितु नांही धर्म मूल क्षमा कहो, तातैं सुविध सेवो धरम बर ज्ञान घाती सुख लहो ॥ १९१ ॥

इति श्री भट्टारक सकलकीर्ति विरचिते श्री वृषभनाथचरित्रे श्रीधरदेव सुविध राजाच्युतेंद्रभव वर्णनो नाम षष्ठमः सर्गः ॥ ६ ॥

अथ सप्तम सर्ग।

चौपाई-परमेष्ठी पदमैं आरूढ, कर्म चक्र हंता अति गूढ़। धर्म चक्रवर्ती जगसेत, वंदूं तिन गुण प्रापत हेत ॥ १ ॥ अब षट मास आयु लख शेश, मृत्यु चिह्न देखे जु सुरेश। तेज अंगको गयो पलाय, उर माला दी गई मुरझाय ॥२॥ क्षणभंगुर सब जगकों जान, सब जग स्वारथ साथी मान। करत भयो जिन पूजा सार, जिनवर ध्यान चित्तमैं धार ॥ ३ ॥ निश्चय कर शुभ वृषमें राच परमेष्ठी पद ध्यावे पांच। चित समाधियुत त्यागे प्रान, जहां उपजे सो सुनो बखान ॥ ४ ॥ जंबूद्वीप सु पूर्व विदेह, पुष्कलावती देश गिनेह। पुंडरीकणीपुर सुभ नाम, मानो दूजो स्वर्ग ललाम ॥ ५ ॥ वज्रसेन तीर्थंकर सार, राज्य करैं सब जन सुखकार। तिनके गृह श्रीकांता नार, सती रूप लावन्य अपार ॥ ६ ॥ अच्युतेंद्र चयके इत आय, इनके सुत उपजो सुखदाय। शुभ लक्षण कर सोभित सही, बज्रनाभ तिन

संज्ञा लही ॥ ७ ॥ वरदत्तादिकके चर सार, जो सामानिक सुर सुखकार। स्वर्ग थकी चयके इत आय, वज्रनाभके भ्राता थाय ॥ ८ ॥ विजय नाम पहलेको जान, दूजो वैजयंत पहचान। तीजो नाम जयंत सु कहो, अपराजित चौथो सरदहो ॥ ९ ॥ सब सज्जनजनको मन हरे, चार वर्गकी उपमा धरे। पूरब कथित जीव जो चार, मतिवर मंत्री आदिक सार ॥ १० ॥ ग्रीवक अधो थकी सो चये, इनके आय सु भ्राता भये। मतिवर जीव सुबाहु थाय, आनंद महाबाहु उपजाय ॥ ११ ॥ महा पीढ धनमित्र सु थयो, सुभ लक्षण तिनके उपजयो। तिसी नगरमैं सेठ महान, नाम कुबेरदत्त धनवान ॥ १२ ॥ नाम अनंतमती तिस नार, सती रूप रतिकी उनहार। तिन दंपतके पुन्य पसाय, चर प्रतेंद्रको चय इत आय ॥ १३ ॥ इनके सुत उपजो सुखदाय, छबि सुंदर धारे अधिकाय। तास नाम धनदेव सु थाय, सुभ लक्षण पूरित सुखदाय ॥ १४ ॥ वज्रनाभि आदिक सब भ्रात, विद्या पढत भये अवदात। पूरबले शुभ पुन्य पसाय, विद्या शस्त्र शास्त्र सब पाय ॥ १५ ॥ शुभ लक्षण कर पूरित अंग, प्रीत परस्पर बड़ी अभंग। तेज कांत सु कला समुदाय, सब जीवनकों है सुखदाय ॥ १६ ॥ क्रमसे यौवन पाय कुमार, वस्त्राभूषण लंकृत सार। उपमा अहमिंद्रनकी धरे, रूप थकी सबको मन हरे ॥ १७ ॥ वज्रसेन तीर्थंकर सोय, काललब्धिवस विरकत होय। भव तन भोग सबै तज देहु, सुखकारी शुभ दीक्षा लेहु ॥ १८ ॥ इम चिंतत लौकां-

तिक आय, दिढ वैराग्य कियो सुखदाय। वज्रनाभि सुतकौं दे राज, जिन उमगे शिव साधन काज ॥ १९ ॥ चतुरन काय इंद्र तब आय, तीर्थनाथकौ स्नान कराय। रत्न तनी शिव-कारज सार, प्रभुको कर तामैं असवार ॥ २० ॥ आम्र सु बन माही तब गये, सिल उपर श्रीजिन तिष्टये। सर्व परिग्रह तज अत्रधाम, पुन सिद्धनको कर परणाम ॥ २१ ॥ एक सहश्र राय ले लार, दीक्षा कीनी अंगीकार। अब सो मौन सहित तीर्थेश, विचरे निर्जन बन पुर देश ॥ २२ ॥ घोर तपस्या करते भये, ध्यान थकी भव भव अघ दहे। अब सो वज्रनाभि ह्वै राय, धर्म तनी नित सेव कराय ॥ २३ ॥ व्रत अरु शील दान शुभ जान, करे सुनित जिन पूज महान। नाना विध सुख पुण्य पसाय, भोगे सुखमैं मगन रहाय ॥२४॥ भ्रात अरु नार थकी बहु नेह, पाले प्रजासु निसन्देह। एक दिवस विष्टरपै राय, बैठे नृपगण सेवित पाय ॥ २५ ॥ दोय पुरुष आये तिसबार, नमके मुखसे वचन उचार। हे राजन! तुमरे जो तात, घात करमको कीनौं घात ॥२६॥ तीन जगतमैं दीप समान, उपजायो सो केवलज्ञान। स्वामी आयुधशाला बीच, चक्ररत्न संजुक्त मरीच ॥ २७ ॥ उपजो तुमरे पुन्य पसाय, इम बच कह फुन मौन गहाय। नृप दोनोंके बच सुन लीन, फुन उरमैं इम चितवन कीन ॥ २८ ॥ चक्ररत्न धर्महितैं भयो, तातैं धम प्रथम बरनयो। ये विचार दृढ़ कर हर्षाय, जिन बंदनको चालो राय ॥२९॥ तीन जगतके नाथ महान,

तिनकी स्तुति पूजन बहु ठान। नरकोठेमें बैठी आन, दो बिध धर्म सुनौ धीमान् ॥ ३० ॥ स्वर्गमुक्तको प्रापत होय, फुन निज ग्रहकौं आयो सोय। चक्र रत्नकी पूजा कीन, नवनिध अंगीकार सुकीन ॥ ३१ ॥ शेश रत्नग्रह केवल बंड, चालो साधनको षटखंड। श्रेष्टीनंदन जो धनदेव, गृहपत रत्न भयोसो एव ॥ ३२॥ भ्राता सेन्या ले षट अंग, षटखंड साधत भयो अभंग। देव विद्याधर अरु भूपाल, सब हीसे नमवायो भाल ॥ ३३॥ कन्यादिक जो रत्न सुमार, तिनकौं कीनों अंगिकार। इंद्रसुवत क्रीडा नित करे, फुनचक्री निजपुर संचरे ॥ ३४ ॥ अवि सो चक्री पुन्य पसाय। नानाविधके सुक्ख कराय, सावधान वृषमे सुरहाय। चिरलौं राज्य कियौ सुखदाय ॥३५॥ एक दिवस निज पितुके पास, धर्म श्रवण कीनौ सुखरास। चितमैं ऐसो करो विचार, दर्शनज्ञान चरित हितकार ॥ ३६ ॥ जो धर्मातम सेवकराय, सोई अव्यय पदको पाय। जो सुख शिवमें अद्भुत थाय, ता आगे नृप सुख कछु नाय ॥ ३७ ॥ नारी आदिक रत्न प्रसार, इनके त्याग थकी निरधार। जो सुखशिव संपतको लहूं, त्यागनमैं तो बया श्रम गहूं ॥३८॥ इस विध मनमैं करसु विचार, चित संवेग विषैं दृढधार। वज्रदंत सुतको दे राज, आप चले शिव साधन काज ॥ ३९ ॥ जीरण तृण जो संपत जान, रत्नादिक त्यागे धीमान्। बंधू जनसे नाता तोर, शिव वनितासो प्रीती जोर ॥४०॥ पिता तीर्थंकरके ढिग जाय, सर्व परिग्रह त्याग कराय। पंच मुष्टि लूंचे सिर केश, दीक्षा धरी दिगम्बर भेश ॥ ४१ ॥

अष्ट भ्रातको ले निज लार, अरु धनदेव ग्रहपति* सार। मुकट बंध षोडश हज्जार, दीक्षा सबने ली हितकार॥ ४२॥ एक सहस सुतहु तप धार, राणी अर्द्धलक्ष हितकार। इन सबने मिलके तप धरौ, नानाविध जो गुणगण भरौ॥ ४३॥ अबते सब मुनिवर शुभ धीर, वज्रनाभि आदिक बरबीर। पृथ्वीतलमें करत बिहार, सब जिन आगम पढ़ैं हितकार॥४४॥ सिंहादिक भयसौं नहि काज, रात्रदिवस जागृत मुनिराज। पर्वत गुफा सु बनमैं बसें, जीरण मठमैं इंद्रय कसे॥ ४५॥ कृतकारित अनुमोद लगाय प्राणीघात करै नहि भाय। झूठ अरु चोरी मैथुन पाप, परिग्रह सब छांडौ मुनि आप॥ ४६॥ पांच समत अरु गुप्ती तीन, पालैं यत्न थकी सुप्रवीन। ध्यान विषैं निज चितको धरैं, तप करके काया कृश करैं॥ ४७॥ निस्पृही वपुतें अधिकाय, चित धारौ निज आतम माह। निःप्रमाद ह्वैके शिव धनी, नानाविध तपकर शुध मनी॥ ४८॥ गुरु आज्ञा लेकर हितकार, जिनकल्पी ह्वै इकल बिहार। वज्रनाभि मुन परम दयाल, संजम नित पालै गुणमाल॥ ४९॥ अट्ठाईस मूलगुण मुने चौरासीलख उत्तर गुणे। तप अरु ध्यान सिद्धके काज, योग त्रिकाल धरैं मुनिराज॥ ५०॥ वर्षाऋतु वर्षे अधिकाय, मेघ चले अरु झंझा वायु। तब वे श्री मुनवर सुखदाय, तरुके नीचे योग लगाय॥ ५१॥ चौहट और नदीके तीर, योग लगावे श्री मुनि धीर। शीतकालमें पडत तुषार, वृक्ष दहे तिस काल मझार॥ ५२॥ तप्त पहाड ग्रीष्मऋतु माह, ठाडे मुनिकर

योग लगाय। पंथी पंथविषै नहि चलै, सूर्य सामने श्रीमुनि अडे ॥ ५३ ॥ इत्यादिक चिरलौं मुनराय, कायक्लेश कियो बहु भाय। अतीचार बिन दीक्षा सार, चिरलों पाली हितकरतार ॥५४॥ एक दिवस योगी निर्धार, षोडस कारण भावन सार। तीर्थंकर पदकी कर्तार, भावत भये मुनी अविकार ॥५५॥ दर्शन विशुद्ध महा हितकार, शंकादिक मल वर्जित सार। निशंकादि गुण भंडार, मुक्त नगर दीपक निर्धार ॥ ५६ ॥ दर्शन ज्ञान चरित तप जान, अरु इनके धारक बुधवान। मन बच काय शुद्ध निज ठान, विनय करै सोई हितदान ॥ ५७ ॥ सम्पन्नता विनय गुण होय, यामैं संसय नांही कोय! सर्व शीलव्रत पाले जोय, अतीचार बिन मन शुद्ध होय ॥ ५८ ॥ शीलव्रतेसु भावना सार, भवनाशन हित करन अपार। ग्यारह अंगतनी हित दान, उरमैं भावन धरे महान ॥ ५९ ॥ ज्ञानोपयोग अभीक्षण कही, वज्रनाभ मुन भावे सही। जगमें देह भोग दुखखान, धर संवेग करे कल्याण ॥ ६० ॥ प्रगट सुमन निज वीरज करै, उग्र सुतप द्वादश विध धरे। शक्त तपस्या त्याग सो जान, भावे मुन भावन सु महान ॥ ६१ ॥ कोई साधु बहु कर्म पमाय, तज समाधिको चित अकुलाय। धर्मोपदेश देय दृढ़ करे, सोई साधु समाधि धरे ॥६२॥ आचार्यादि मनोज्ञ पर्यन्त, दस प्रकार जानो मुन संत। तिनकी वैयावृत्य करंत, तेई शक्ति अनंत धरंत ॥६३॥ स्वर्ग मोक्ष कारक जिनराज, तिनकी भक्ति करे भव पाज। मन वच काय शुद्धकर सार,

सर्व सिद्ध कीनो कर्तार ॥६४॥ छत्तिस गुण युत जग हितकार, पंचाचार परायण सार। ऐसे आचारज गुणवंत, तिनकी भक्ति करै मुनि संत ॥ ६५ ॥ बहु श्रुतवंत मुनी जो होय, तिनकी भक्ति करै मद खोय, नित्य करै प्रवचनकी भक्ति, हितकारक जो जिनवर उक्ति ॥ ६६ ॥ पूर्वापर विरोध नहीं जास, ज्ञान तनौ सो करे प्रकाश। समता आदिक जो शुभ सार, षट आवश्य क्रिया निर्धार ॥ ६७ ॥ काल कालमें पूरण धरे, हान वृद्ध कबहू नही करे। सुनय ज्ञान सूरज निरधार, किरण थकी दुर्मति निर्वार ॥ ६८ ॥ जिनमतकी परभावन करे, सोई प्रभाव नाम शुभ धरे। मुनि गुण दर्शन धारक जान, ज्ञान गुणातम बुद्ध निधान ॥ ६९ ॥ बर प्रवचनसे वात्सल करे, प्रवचन वातसल्य सो धरे। साधर्मी सो है सुधभाय, गौ वच्छावत प्रीत कराय ॥ ७० ॥ तीर्थंकर पदकी कर्तार, षोडशकारण भावन सार। मन वच काय सुद्ध कर सार, चिरलौं भाई मुनि अविकार ॥ ७१ ॥ षोडश भावन भाय मुनिंद्र, भाव विशुद्ध करे गुणवृंद। त्रै जगमध्य क्षोभ कर्तार, प्रकट तीर्थंकर बांधी सार ॥ ७२ ॥ सो सिद्धांत पाठ नित करै, शुद्ध भावना उरमें धरैं। तिस कर उपजी रिद्ध अनेक, सुनौ सुधी चित धार विवेक ॥ ७३ ॥

पद्धरी छंद–कोष्ट बुद्ध अरु बीज महान, बुद्ध पदानुसारणी जान। संभिन श्रोत्र बुद्ध रिद्ध सार, भेद बुद्ध ऋद्धके सुखकार ॥ ७४ ॥ श्री मुन तप ऋद्ध धरे उदार, वपु मल मूत्र रहित शुभ सार। दीप्त ऋद्धसे ती निरधार, क्रांत सूर्यसम धरे अपार

॥ ७५ ॥ अणमा महमा जे ऋद्ध कही, विक्रय भेद धरे मुन सही। आम खिल्ल जल ऋद्ध धराय, सर्वौषध धारे मुनराय ॥७६॥ जगत रोग नाशन समरत्थ, निर्ममत्व वरते सु अकत्थ। क्षीरः श्रावी अमृत श्राव, मधुश्रावि घृतश्रावि बताय ॥ ७७ ॥ रस ऋद्धतने भेद यह चार, रस त्याग तप फल मुन धार। बल ऋद्ध तने भेद यह तीन, मन वच काय तने बल लीन ॥७८॥ तपकर ऐसी शक्ती होय, विषम कार्यको समरथ जोय। अक्षीण महानसी ऋद्ध महान, अक्षीण महालय द्वितिय सुजान ॥७९॥ क्षेत्र रिद्धके ये द्वै भेद, धारे सो मुन पाप उछेद। इत्यादिक ऋद्ध धरै अनेक, अंतर बाहर शुद्ध विवेक ॥ ८० ॥ कठिन कठिन तप अति ही करे, सब जीवोपकार चित धरे। तपको दीखत फल इम जोय, परभवमैं कैसोयक होय ॥८१॥ अपनी अल्प आयु लख मुनी, तजो अहार चार बिध गुनी। निज शरीर ममता परहरी, मन वच काय तिहू सुध करी ॥ ८२ ॥ प्रायोपगमन नाम सन्यास, धारौ त्यागी सब जग आस। श्रीप्रभ नाम सु पर्वत जहां, मर्ण समाध सु माड़ो तहां ॥८३॥ बहु उपवास करे मुन धीर, तातै सूखो सर्व शरीर। मुख अर उदर शुष्क ह्वै रहै। हाड चाम बाकी रह गये ॥ ८४ ॥ बनमैं बैठ उपद्रव सहे, तनकी ममता नाही गहे। घोर परीषह शत्रु महान, ध्यान खड्ग ले करते हान ॥८५॥ क्षुधा तृषा हिम उष्ण महान, दंसमसक अरु नग्नत मान। बनिता अरत परीषह जान, चर्या आसन सैन प्रमाण ॥ ८६ ॥ बध आक्रोश याचना

ज्ञान, रोग अलाभ परीषह मान। मल तृण स्पर्श परीषह कार, पुरस्कार संस्कार निहार ॥ ८७ ॥

काव्य छंद–प्रज्ञा अर अज्ञान अदर्शन दुर्जय जानो, जीते इनको सार सोई मुनराज महानो। सहन परीषह थकी विपुल विध निर्जर होवे, पुन दशलक्षण धर्म महामुन चितमैं जोवे ॥८८॥

जोगीरासा–उत्तम क्षमा सुमार्दव आर्जव सत्य सौच शुभ जानो, संजम द्वैविध तपसु त्याग फुन आकिंचन्य महानो। ब्रह्मचर्य दृढ धर्म दसौं विध पाले श्री मुनराजे, जिस दिन धर्म विषैं तत्पर मुन मुक्त नगरके काजे ॥८९॥ अब सो राग रहित बैरागी द्वादश भावन भावे। तीन जगतमैं थिर कछु नाहीं सर्व अनित्य सुध्यावे, जब मृगशिशुको मृगवत गहवे तब तहां कौन बचावे। तैसे प्राणी यममुख जातैं काहूसे ना हिरहावे ॥ ९० ॥ दलबल देवी जंत्रमंत्र सब क्षेत्रपाल भी हारे, काल बली सबहीको खावे काहूकौं नहीं छारे। ये संसार महादुख पूरित सुख नहि लेश लहावे. आय अकेलो उपजै प्राणी इकलो मर्णहि पावे ॥ ९१ ॥ मात पिता सुत वनितादिक सब, अन्य अन्य है सारे। विपत पड़े कोई काम न आवे, शीघ्र ही होत सुन्यारे। देह अशुच नवद्वार बहित नित या संग कैसो नेहा, सागरके जलसों सुच कीजे, तौ भी शुच नहि देहा ॥ ९२ ॥ आश्रव पंच महादुक्ख कारन तिनके भेद सुनीजे, मिथ्या अव्रत योग प्रमादहि अरु कषाय गिन लीजे। तिस आश्रवकौं रोक यतन कर षट विध संवर कीजे, गुप्त समिति वृष अनुप्रेक्षा

भज परीषह जीत सुलीजे ॥ ९३ ॥ चारित पंच प्रकार सु सज सत्तावन विध इम जानो, सविपाक हि अविपाक सुद्वैविध निर्जर भेद प्रमाणो । अधोमध्य उरध त्रैविध ये पुरुषाकार त्रिलोका, मानुषगति मिलनी सु कठिन है साधर्मिनको थोका ॥ ९४ ॥ धर्म पावनौ अति हि कठिन है, जो सुर शिव सुखदाई । ये समाज फिर मिलन कठिन है तातें वृष उर लाई ॥ इम द्वादश भावन चिंतवन कर, तन ममता सब त्यागी । आयु अन्त लख धर्मध्यान चव धरत भये बड़भागी ॥ ९५ ॥ उपशम श्रेणी मांड यतन कर एकादश गुणथानी । शुक्लध्यानको पहलो पायौ तामधि निज बुध ठानी ॥ मरण समाध थकी वपु तजकर सर्वारथ सिद्ध पायो, द्वादश योजन सिद्ध शिला तल तहां सो सुख उपजायो ॥ ९६ ॥ लख योजन विस्तीर्ण सुंदर गोलाकार सुहावे, त्रेसठ पटलन उपर जानौ चूड़ामणिवत थावे ॥ तहां उपजे प्राणीनके चारों पुरुषारथ सिद्ध होई, तातें सार्थिक नाम तासकौं सर्वारथ सिद्ध जोई । ९७ ॥ विजयादिक वसु श्रेणि इमन थे अरु ग्रह पत धन देवा, ये नव तप कर उस ही थलमैं अहमिंदर उपजेवा । तहां उपपाद शिला मधि दस मुन जाय भये सुर राई, अन्तर महुरतमैं वरयौवनयुत सब ऋद्ध लहाई ॥९८॥ सुन्दर वस्त्र सु माला पहने आभूषण सहजाई, सुन्दर अंग सकल लक्षणयुत दश दिश द्योत कराई ॥ अवधिज्ञान कर सब इम जानौ इम पूरब तप कीनौ, ताफल कर इस थलमैं उपजे इम लख वृष चित

दीनौं। कर स्नान जिनमंदिर जाकर वसुविध पूज सुकीनी, अष्टोतर शुभ नाम लेयकर चरननमैं दिठ दीनी ॥ ९९ ॥

चौपाई–चित्तमाही भक्ति अतिधार, स्तुत पूजा कीनी हितकार। जो संकल्प मात्र उपजये, वसुविध जल आदिक बरनये ॥ १०० ॥ तहांसे निज स्थानक आय, पुन्यजनत लक्ष्मी भोगाय। जिन सिद्धनकी प्रतमा सार, जाने अवध थकी निरधार ॥ १०१ ॥ निज स्थानकसे अर्चा करे, पुन्य भंडार नित्य यों भरे। पांच कल्याणक कालन माह पूजा भक्त करे उत्साह ॥१०२॥ और केवली जो सुखदाय, दोकल्याणक नित पूजाय। गणधर आचारज उवझाय, सर्व साधुके वंदे पाय ॥१०३॥ निज विमान थित पूजन करें, और क्षेत्र नाही संचरे। पण परमेष्टीके पद भजे, ध्यान सु पूजन कर नित यजे ॥१०४॥ तत्व पदार्थ सब चितवे, निःशंकादिक वसु गुणठवे। सम्यक दर्शनज्ञान सुधार, मुक्ति अर्थ भावे अधिकार ॥१०५॥ धर्म सुफल परतछ पाइयो, धर्म विषै तब बुद्ध लाइयो। बिना बुलाये प्रीत पमाय, अहमिंद्र सब नित प्रत आय ॥१०६॥ धर्म गोष्टतै मिल सब करै, द्रव्य तत्वचर्या विस्तरै। पुरुष सलाका त्रेसठखरे, तिनकी कथा सुनितप्रति करै ॥१०७॥ इत्यादिक नाना परकार, शुभ आशय युतसुभ आचारं। करे उपार्जन पुन्य सुसार, जो तीर्थंकर पद दातार ॥ १०८ ॥ पुन्य विपाक थकी सुभ भोग, भोगे प्रवीचार विनयोग। भोग निरूपम जगके सार, भोगे निज इच्छा अनुसार ॥ १०९ ॥ क्रीड़ा करनेके जो स्थान, नित प्रत

गमन करै सुमहान। निज विमान अरु सर उद्यान, पर्वत महल विषैं क्रीडान ॥ ११० ॥ बर स्वभाव सुंदर आकार, धारैते अह मिंदर सार। निज स्थानक सेती सुखदाय, दूजो कोई स्थानक नाह ॥१११॥ तातै निज ही स्थानक माह, रहवे नाही गमन कराय। देवीगण संयुत सुर राय, जो उत्कृष्ट सुख भोगाय ॥ ११२ तासु असंख्य गुणो परमाण, भोगे सुख अहमिन्द्र महान। सर्वोत्कृष्ट सुसुख संयुक्त, संसार कुदुख सेती विमुक्त ॥ ११३ ॥ सर्व अर्थ जहां सिद्ध ह्वै गये, पीडा काम तनी नहीं रहे। जैसे योगी शांत स्वरूप, भोगे सुख आत्मीक अनूप ॥ ११४ ॥ जो सुख अहमिंदर शुभ गहे, सो सुख और इंद्र नहि लहे। यह जान भवि वृष चित धरे, जातें स्वर्ग मोक्षको वरे ॥ ११५ ॥ ईर्षा मद उन्मादन धरे, निज प्रशंस पर निंदन करे। काम विषादतनों नहि लेश, विक्रप नाही करे हमेश ॥११६॥ जहां इष्टको नाह वियोग, नाह अनिष्ट तनो संयोग। जितने कारण दुख दातार, स्वप्नेमें हु नाहि निहार ॥ ११७ ॥ एक हस्त ऊँची शुभ काय, सुवर्ण वर्ण सौम्य सुखदाय। धर्मध्यान धारे हितकार, लेश्या शुक्ल धरे शुभ सार ॥ ११८ ॥ तेतिस सागरकी लह आय, स्त्री राग रहित सुख पाय। धरे प्रथम संस्थान अभंग, वर भूषण भूषित सर्वांग ॥ ११९ ॥ लोक-नाडिमैं मूरतवान, द्रव्य चराचर सारे जान। तिनको अवधि ज्ञानपर भाव, जाने राग रहित शुभ भाव ॥ १२० ॥

दोहा—शक्ति विक्रयाकरनकी लोकनाडि तक जान, पैनहि

गमन करै कदा, बिन कारण सु महान ॥ १२१ ॥

चौपाई—वर्ष जाय तेतीस हजार, करे मानसिक तब अहार । अमृतमय वरदायक पुष्ट, होय ततक्षण सब संतुष्ट ॥ १२२ ॥ तेतीस पक्ष गये सुख राम, लेय सुगंधमई उस्वास । इत्यादिक भोगें शुभ सर्म, ऋद्ध समान धरे शुभ पर्म ॥ १२३ ॥ सब समान पदमैं आरूढ़, सम रूपादि घरे सु अगूढ़ । ज्ञान विवेक धरे सु समान, गुण पूरण शरीर सुख खान ॥ १२४ ॥ भोगोपभोग करे सु समान, सारी संपत सम पहचान । वृष समान सबने आचरा, तातैं सम सुख सबने भरा ॥ १२५ ॥ इस प्रकार अहमिंद्र महान, भोगे भोग रहित अभिमान । सुख सागरमैं मगन रहंत, जात काल जाने नहीं संत ॥ १२६ ॥

गीता छन्द—इम पुन्य फल अहमिंद्र लक्ष्मी सकल सुखकी खानजी सर्वार्थसिधके सुख लहे तिस उपमा नहि आनजी । दुख स्वप्नमेंहू जहां नाही मगन सुखमें ही रहे, इम धर्म फलको जान करके धरमको मारग गहै ॥ १२७ ॥ यह धर्म सुगुण अनंतदाता, दोष धोता जानिये । इस धर्मसे नित सुक्ख होवे दुक्ख कबहू न मानिये सकल जगत कीरत बिस्तरे सुर असुर नर सेवे सदा । इम जान बुधजन धर्ममें नित प्रीत राखो तज मुदा ॥ १२८ ॥

इति श्री भट्टारक सकलकीर्ति विरचिते श्री वृषभनाथचरित्रे वज्रनाभि चक्रवर्त्ति सर्वार्थसिद्धगमन वर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अथ अष्टम सर्ग।

चौपाई–सर्वारथ सिद्धके कर्तार, वृषभ जिनेश्वर वृष दातार। धर्म तीर्थ कर्ता जिनराज, गुणसागर वंदूं हित काज ॥ १ ॥ ये ही जम्बूद्वीप महान, भरतक्षेत्र ता मद्य परमाण। आरज खण्ड लसे शुभ सार, भोगभूमिकी अन्त मझार ॥ २ ॥ राजानाभि दक्ष श्रीमान्, पदवी कुलकर धरे महान। तीन ज्ञानधारी सुख दान, गुणगण आगर बुद्ध निदान ॥ ३ ॥ तिनके महासती शुभ वाम, मरुदेवी नामा गुण धाम। धारे रूपकला विज्ञान, जासम पृथ्वीमें नहीं आन ॥४॥ एरावत गज सम गामनी, नखयुत चन्द्र किरण सम भणी। मणिनूपुर करते झंकार, चर्णांबुज सेवत सुरनार ॥ ५ ॥ जंघा कदली गर्भ समान, अतही मृदु शुभ आकृतवान। कटि थान सुन्दर सुख-दाय, कांची दाम लसै जिस माइ ॥६॥ कृपोदरी सबको मनहरे, नाभि कूपवत शोभा धरे। उर बिच हार लसे युत खान, तुंग कठिन कुच सोभावान ॥७॥ वक्षस्थल सुंदर अधिकाय, पुन्याणु निर्मायो आय। पुष्पमालती सम मृदु अंग, संख समान सु ग्रीवा चंग ॥ ८ ॥ कोयल सम भाषे मृदु बैन, पूर्णचन्द्र सम मुख सुख दैन। कर्णाभर्ण कर्णमें लसे, नाशा लख शुक बनमें बसे ॥९॥ चंद्र अष्टमीके आकार, दिपे भालयुत कला सुसार। मन प्रफुल्लित कमल समान, लज्जित मृग बन माहि बसान ॥१०॥ स्याम सचिक्कण भ्रमर समान, केश विराजे सोभावान। सुंदर लक्षण तनमें धरे, तसु महमा बरनन किम करे ॥ ११ ॥ सब

भूषण मंडित बरसती, रूप निरख लागे रत रती। रूप कला लावण्य विवेक, ज्ञानादिक गुण धरे अनेक ॥ १२ ॥ नाभिरायकी प्रिया सुसार, सोम अति सुंदर आकार। दंपत षटऋतु भोग सु करे, इंद्र शचीकी उपमा धरे ॥ १३ ॥ रत्नखान सम सोभै सोय, फुन सौभाग्य भरो बपु जोय। ज्ञान विज्ञान धरे बर सती, गुण पूरण मानों भारती ॥ १४ ॥ भोगभूमि सम सुख विस्तरे, कल्पबेल सम तनकों धरे। सकल पुन्य संपतकी जान, आकर समझानों धीमान ॥ १५ ॥ भरताको अति ही सुखदाय, प्राणोंसे प्यारी अधिकाय। इंद्र इंद्राणी सम अति नेह, होत भयो जिनके चित गेह ॥ १६ ॥ नाभिराय मरुदेवी संग, कामभोग भोगे सु अभंग। प्रीत सहित आनंदमें रहे, धर्म रने शुभ फलकों गहे ॥ १७ ॥ अब सो अहमिंद्र गुण-खान, वज्रनाभिको चर सु महान। घंटा नादादिकतें जान, शेष आयु षट मास प्रमाण ॥ १८ ॥ इंद्र धनदको आज्ञा करी, तुम पुर जाय रचो इम घरी, सो आयो इस भूम मझार, रचत भयौ पुर अति सुखकार ॥१९॥ तब आरज शुभ खंड मझार, रची अयोध्या नगरी सार। इंद्र तनी आज्ञा लह देव, रची सु अपने पुर सम एव ॥ २० ॥ पौली कोटर रत्नमय सार, मंदिर पंक्तिबंध निहार। दीर्घ खातिका सुंदर जहां, अति रमणीक रची सुर तहां ॥ २१ ॥ ऐसी नगरी शोभावान, तामध राजमहल सुखदान। इंद्रभवन सम सोभ धरंत, ध्वजा समूह जहां लहकंत ॥ २२ ॥ कोटादिक मणि सुवरण मई, गोपुर

सोभा धारे नई। नाना शोभा संयुत सार, जिन उत्पत थान सखकार ॥ २३ ॥ नर नारी अति सोभावान, बसे देव देवी सम जान। जहां जिनवरकी उत्पति होय, तिस महमा बरनन बुध कोय ॥ २४ ॥ लख दिन शुभ महूर्त वरवार, प्रथम इन्द्र सुरगण लेलार। बहु विभूतले आयो आप, दंपति राजमहलमें थाप ॥ २५ ॥ वर सिंहासन पै बैठाय, जल अभिषेक कियो सुरराय। कल्प वृक्षसे उतपत भये, भूषण वस्त्रादिक जो नये ॥ २६ ॥ तिनकर पूजा कीनी सार, इंद्र महा उत्सव विस्तार। रत्नवृष्ट आदिक सुखदाय, पंचाश्चर्य किये सुरराय ॥ २७ ॥ श्री आदिकदेवी पटसार, तिनकूं सेवा सर्व संभार। गयो इंद्र निज थानक तवै, जिन माहिमा उर सुमरत सबै ॥२८॥ अमरपुरी नित आवे तहां, तसु महिमा बुध बरनन कहां। धनद करे नित रत्न सुवृष्ट, तीनों काल सबनको इष्ट ॥२९॥ गन्धादक वर्षा नित होय, कल्पवृक्षके पुष्प बहोय। ऐरावतकी सूड समान, मणि धारा वर्षे नित आन ॥ ३० ॥ जैजैकार बहुत सुर करें, दुंदभि नाद थकी दिश भरें। षट महिना पर्यंत निहार, पंचाश्चर्य किये सुर सार ॥ ३१ ॥ एक दिवस महलनके माह, पलंग विषै सोवैं जिन मांय। पुन्य उदै करि माता सोय, पश्चिम रैन विषै अवलोय ॥ ३२ ॥ सुपने सोलह अति सुखकार, तीर्थंकर सुत सूचनहार। तिनको वर्नन भवि जिय सुनो पूरब ग्रंथनमें जिम भनो ॥ ३३ ॥

छन्द कुसुमलता—ऐरावत हस्तीसम सुंदर देखो जिनमाता गज-

राज, मदजल झरना झरत कपोलहि वस्त्राभरण सहित सब साज। द्वितीय स्वप्नमें वृषभ लखो शुभ पांडु महाबल आकर जान, तृतिय केसरी सिंघ निहारो तुरिय चंद्रमाल सुखदान ॥३४॥ सिंघासनपै लक्ष्मी बैठी तिनको गज द्वै न्हवन कराय, फूलोंकी माला दो सुंदर तापै अलि गुंजारत भाय। उदय होत दिननाथ निहारौ उदयाचलपे तम हर्तार, स्वर्णमई द्वै कुंभ जु देखे कमलथकी मुद्रित सुखकार ॥ ३५ ॥ नवम स्वप्न द्वै मीन निहारहि दसम सरोवर निरखो भाय, ग्यारम सागर क्षुभित निहारो बारम सिंहासन दरसाय। सुर विमान फुन तेरम देखो नानाविध रचना आधार, ग्रह फणिंद्र पृथ्वीतैं निकसत देखो जिनजननी सुखकार ॥३६॥ रत्नराशि अति सुंदर देखी दसौं दिसा उद्योत करंत, अग्नि निर्धूम लखी सोलहवी दीप्त प्रचंड अधिक धारंत। अंत विषै निज मुखमें धसतो वृषभ पीत कंधा हैं जास, उच्च शरीर परम सुखदायक सुंदर निरखो जननी तास ॥ ३७ ॥

चौपाई—तोलौं उदयाचलके माथ भ्रमण करत आयौ दिननाथ। बंदीजनको मंगलगान, सुन वादित्र ध्वन अधिकान ॥ ३८ ॥ जाग्रित ह्वै जानो परभात शय्या छोड उठी जिन मात। क्रिया प्रभात तनी सब करी. निज वपु मंडन कर तिस धरी ॥ ३९ ॥ सुपननको फल पूछनकार, चली जहां राजे भर्तार। सिंहासनपै बैठो राय, देखी सती आवती भाय ॥४०॥ राणी आय प्रणाम सु कियो, राजा अर्द्ध सिंहासन दियो। तब राणी बोली सुख देन, भो राजा सूनिये मम बैन ॥४१॥

स्वामी पिछली रयन मझार, सुख निद्रा लेती सुखकार। पुन्य उदै सेतीसु तुरंत, सुपने सोलह लखे महंत ॥ ४१ ॥ गजसे लेय अग्नि पर्यंत, सुभ सुपने देखे हर्षंत। इनको फल जो होवे यदा, किरपाकर भाषो सर्वदा ॥ ४३ ॥ यह सुनके नृप आनंद पाय, कहत भये भो देवि सुनाय। सुपननको फल उत्तम सार, भाषू सो सुन उर रुच धार ॥ ४४ ॥ गज देखनसे पुत्र सु होय, तीन भुवनमें उत्तम सोय। वृषभ थकी तीर्थंकर जान, द्विविध धर्मरथ वाहक मान ॥ ४५ ॥ वीर्य अनंत सिंहसो धरे, कर्म गजनको अंत सु करे। माला सेती वृष दातार, अंग सुगन्ध होय विस्तार ॥ ४६ ॥ लक्ष्मी स्नान करत जो जोय, ता फल सुरगिर न्हवन सु होय। पूर्ण चंद्रमा लखो महान, ता फल जान वृथा मत दान ॥ ४७ ॥ सूरज लखनथकी तुम जान, मोह अंध हर्ता सुत मान। कुंभ लखनसे सुन गुण भरी, सब विद्या जिन घटमें धरी ॥ ४८ ॥ मत्स युगमको फल यह जान, महा सुक्खको होवे खान। सरवरसे सब लक्षणवान, एकसमस्त अष्ट परमाण ॥ ४९ ॥ सागर लखनेकौं फल येह, केवलज्ञान रत्नको गेह। सिंहासनको फल यह जान, तीन जगतगुरु होय प्रधान ॥ ५० ॥ सुर विमान देखो सुत धरो, सर्वारथ सिधसे अवतरो। लखे फणींद्र भवन छबिवान, ता फल अवधिज्ञान युत जान ॥ ५१ ॥ रत्नराशि तुम देखी जोय, ता फल नंतगुणाकर सोय। अग्नि निर्धूम थकी सुंदरे, कर्मधनकौं भस्म सु करे ॥ ५२ ॥ वृषभ प्रवेश लखौं मुख मांह, ता फल

प्रभु तो उदर बसाय। वृषभनाथ त्रिजगत गुरु सही, तुमरे गर्भ बसे गुण मही॥ ५३ ॥

अडिल्ल–पतिमुखतैं इम सुपनको फल सुन सही, पुत्र गोदमें होय इम सुखको लही। इंद्रसो धर्मतनी आज्ञा करके तबै, पद्मादिक द्रह बासनि षट देव्या सबै ॥ ५४ ॥ सो सेवा नित करे हर्ष उर धारके, निज निज गुणको सबहि करत विस्तारके। श्री सोभा श्रीलज्जा विस्तारत भई, ध्रित धीरज परकाश कीर्त जस प्रगटही ॥ ५५ ॥ बुद्ध बोध परकाश सुलक्ष्मी विभवही, इम षट् देवी निज निज गुण परकाशही। गर्भ सुसोधना करत बहुत विधसे वहै, जिन माताको सहज थकी शुच देह है ॥५६॥

पायता छंद–अब अहमिंदर सो जानो, जो बज्रनाभि चर मानो। सो सर्वारथ सिद्ध थानो, जहांते चय यहां उपजानो॥ मरुदेवी गर्भ मझारी, आसाढ सु दुतया कारी। नक्षत्र उत्तरा-षाढा, ता दिन सब आनंद बाढा॥ ५८ ॥ घंटादिक चिह्न लखाई, सुरलोक तबै हर्षाई। जिन गर्भकल्याणक जानो, इद्रा-दिक गमन सु ठानो ॥ ५९ ॥ चव विधके देव सु तेहा, निज निज वाहन चढ तेहा। नृप नाभिराय गृह आये, वृष राग धार उर धाये ॥ ६० ॥ तहां गर्भस्थित भगवाना, तिनको सब नमन सुठाना। इन्द्रादिक सबही देवा, जिनमाताकी कर सेवा ॥ ६१ ॥ फुन गीत नृत्य अति कीने, बाजे बाजे रस भीने। वस्त्राभरणादिक लाये, उत्सव कर पूज रचाये ॥ ६२ ॥ इम गर्भकल्याणक कीनो, हर स्वर्ग गयो सुख भीनो। छप्पन-

कुमारका देवी, माताकी सेव करेवी ॥ ६३ ॥ केई शुभ स्नान करावे, केई तांबूल खिलावै। केई वस्त्रादिक पहनावै, केई माला गूंथ सु लावै ॥ ६४ ॥ पादादिक धोवे केई केई शय्यादि रचेई, सिंहासन केई बिछावै। तिसपर माता बिठलावै ॥ ६५ ॥ केई पुष्प रेणु सु धारैं, चंदन छिडके घर बारे। केई रतनन चौक सु पूरे, केई पूजा करत हजूरे ॥ ६६ ॥ केई कल्प प्रसून सु ल्यावें, माला गुहके पहरावैं। रतननको दीप जगावै, माताको चित हर्षावै ॥ ६७ ॥

छन्द सुन्दरी—जल सु केल बन क्रीडा करैं, गीत नृत्यादिक कर मन हरैं। इनही आदि बिनोद बढ़ावती, हाव भाव कटाक्ष दिखावती ॥ ६८ ॥ इम सुरी नित सेव करे जहां, जगत लक्ष्मीकी उपमा तहां। नवम मास विषै सुर सुन्दरी, करे प्रश्न महा रसकी भरी ॥ ६९ ॥

दोहा—पंचेन्द्री जिन जीतयो, नित्य अनित्य महान। शर्ण सर्व जीवन तनी, सो कित मात सयान ॥ ७० ॥ जो प्रत्यक्ष फुनि गूढ है, जो सु कर्म कर्तार। कर्म हरन जो है सही, सो कित मात अगार ॥७१॥ इम सु प्रश्न सुर सुरी किये, सुन माता हर्षाय। इनको उतर जानिये, मम सुत गर्भ बसाय ॥७२॥ कौन शब्द निहचै कथन, कौ है लघु तिर्यंच। शिव साधकको जन्म है, को दाहक कहुं संच ॥ ७३ ॥

अस्योत सैरचानर चौपाई—कठिन प्रश्न इत्यादिक घने, देवी जिन जननी प्रतमने। जिनवर गर्भ महात्म पसाय, माता उत्तर

दे विहमाय ॥७४॥ तीन ज्ञान भास्कर जिन मार, धारे तिनको उदर मझार। तातैं ज्ञान बढ़ौ असराल, ततक्षण उत्तर देय रिसाल ॥७५॥ महा पुरुष मणि गर्भ मझार, तेज प्रताप धरे अधिकार। खान समान सु शोभा लही, अथवा रत्न गर्भ वर मही ॥७६॥

पद्धडी छन्द—माताके त्रिवली भंग नाह, सुखसों जिन तिष्ठे गर्भमाह। जो जो शुभ गर्भ बढ़े सु सार, त्यों त्यों जिन माता प्रभा धार ॥ ७७ ॥ तिष्ठे श्री जिनवर उदर माह, तौपण भी पीड़ा कछुक नाह। प्रतिबिंब आरसीमें समाय, तैसे श्री जिनवर गर्भ मांह ॥७८॥ इंद्र गुप्त शक्र अरु सची सार, बहु अप्सरा गणको लेय लार। जिनमात तनी बहु करे सेव, तिनके वर्णन कहांलग कहेव ॥ ७९ ॥

चौपाई—बहु कहनेतैं अब क्या काज, जगमें उत्तम सर्व समाज। जाके तीर्थंकर सुत होय, ताको वर्णन भाषे कोय ॥८०॥ इत्यादिक नित उत्सव रहे, दिक्कुमारका सेवा वहे। सुखसों बीत गए नव मास, पुन्य योगतैं करत विलास ॥ ८१ ॥ नितप्रत धनद करे मणि वृष्टि, नृप आंगनमें सबको इष्ट। पंचाश्चर्य होय इम सार, पन्द्रह मास तलक सुखकार ॥ ८२ ॥ देखौ धर्म तनो फल भाय, तीर्थंकर सुत उपजत आय। मंगल आनंद ह वे घने, ताको बुधजन कबलों भने ॥ ८३ ॥ जिन जननी अतिही सुखकार, सेवत किंकरवत सुरनार। धर्म थकी क्या क्या नहि होय, सुखदाता या सम नहि कोय ॥ ८४ ॥ पुन्य उदैतैं करै विलास, सुखसों बीत गये नव मास। चैत्र मास माही सुखकार,

कृश्न पक्ष नवमी दिन सार ॥ ८५ ॥ नक्षत्र उत्तराषाढ़ महान, ब्रह्म योगता दिन परमाण। माता सुखसौं जनौ प्रसूत, पुर सुदेवयुत कांत विभूत ॥ ८६ ॥

अडिल्ल-तीन जगतमें महा धरे दिव्यांगसों, गुण समुद्र त्रयज्ञान धरे सुअभंगसौं। प्राची दिशये भानोदय जिम होत है, तिम जननी जिन सूर्यको उद्योत है। ८७। तबही तिनके जन्म महातमसे मही, दशो दिशाने सुदर निर्मलता लही। अंबर भी तब अतिशयकर निर्मल भया, सज्जन निज चित माह बड़ा आनंद लया ॥ ८८ ॥ बजे अनाहत घट कल्पवासिन तने, कल्पवृक्षसे स्वयं पुष्प वर्षे घने। इन्द्रनके सिंहासन लागे कांपने, जिनवर आगे प्रभुता कहौं काकी बने ॥ ८९ ॥

गीता छंद-सब मुकुट इन्द्रनके नये मनो कर प्रमाण करे सही, सु जिनेश जन्म महात्मतैं इत्यादिक अचरज बहु लही। हरनाद ज्योतिष संघ भवनसु व्यंतरन भेरी बजी, आसन प्रकंपादिक सबनके कल्पवासीवत् सजी ॥ ९० ॥ इत्यादि अचरज देख सुर जिन जन्म उर निश्चय करौ तब ही सुचतुरनिकाय जनमकल्याणमाही चित धरौ। लह इंद्र आज्ञा शीघ्र सेना चली सात प्रकारजी, जैसे समुद्रसु लहर सोभै तेम सोभा धारजी ॥ ९१ ॥ गज अश्व रथ गंधर्व प्यादे वृषभ अरु नृतकारणी। इम चली सेना सात विधकी सबनके मन भावनी। सुभ लाख योजनको सु हस्ती इक सतक मुख सोभने, मुख मुख प्रते वसुदंत दंतन मध्य इक इक सर बने ॥ ९२ ॥ सर

सर विषे पणवीस सतक सु कंवल भी सुखकार है, कंवलनी इक इक विषै पणवीस कंवल सु सार है। . कवलन सुकवलन प्रति लसे वसु सतक पत्र सुहावने, पत्रनसु पत्रन प्रति नचे सुरनार सोभा अति बने ॥ ९३ ॥

चौपाई–ऐरावत हस्ती पे सार, इन्द्र सचीयुत भयो सवार। फुन प्रतिंद्र भी ह्वै असवार, देव समानिकादि ले लार ॥ ९४ ॥ वैमानिक शुभ दस परकार, चाले जिनवर भक्ति सुधार। केई सुरी गीत गावन्त, केई नाचत अरु कूदंत ॥ ९५ ॥ चतुरनकाय चले सुरसार, निज निज वाहन ह्वै असवार। हास्य सहित आगे विहसंत, धावे जिनवर भक्ति धरंत ॥ ९६ ॥ नमगणमें विमान सब ठौर, छाये तहां दीसे नहि और। दुंदभिवाद थकी सुखकार, पूरी दशौं दिशा निरधार ॥ ९७ ॥ श्री जिन जन्मकल्याणक माह, जग आश्चर्य संपदा थाह। क्रमसौं चलत चलत सुरसुरी, आये जहां अयोध्यापुरी ॥ ९८ ॥ तीन प्रदक्षण पुरीकी देय, जय जयकार शब्द उचरेय। उरमें आनंद लहो समाज, जन्म सफल मानौ निज आज ॥ ९९ ॥

सवैया ३१–पुर नभ कोट रोक गज अंगनादि चौक सर्व ठौर देव थोक ठाडे भक्तिवंत सौं। परसूत ग्रहमाहि शचीधरके उछाह गई तहां देखे जिन तेज सु धरंत सौं ॥ जिनाधीशको निरख लहो पर्मानंद सूची उरमें न माई लख रूप भगवंत सौं। गुप्त जिन जननीकी थुति कीनी बहू भांत तीन परदक्षिण दे देखे शिवकंत सौं ॥ १०० ॥

चौपाई–माया मई सिसु राखो तेई, सुख निद्रा माताको देई। जिनवरको ले अंक मझार, पायो सुख आनंद अपार ॥ १०१ ॥ तहांते चली अनंद उपाय, दिगकुमारका आगे धाय। मंगल द्रव्य अष्ट करधार, जै जैकार शब्द उचार ॥ १०२॥

दोहा–सची आय पति अंकमैं, दीने श्री जिनचंद। निरखत बहु आनंद लही, पायो परमानंद ॥ १०३ ॥ निरखत निरखत तृप्ति नहि, होत भयोसु सुरेश। तब सहस्र दृग निज किये, फुन देखे सुजिनेश ॥ १०४ ॥

गीता छन्द-फुन शक्र बहु विध करन लागो स्तुति मनोज्ञ सुहावनी, तुम देव जगके नाथ हो गुन बाल शसिसम पावनी। त्रय जगतके तुम नेत्र हो, आनंद हमको दीजिये। युग आदि जिन तुम श्रेष्ट कर्ता दासको सुख दीजिये ॥ १०५ ॥

पायता छन्द–तुम ही अनंतगुणधारी, तीर्थेश्वर जग हित-कारी। तुम केवलज्ञान धरोगे, लोकत्रय प्रगट करोगे ॥१०६॥ तुम मोह निवारन हारे, शिव मग दरशावन प्यारे। तुम ही आत्मज्ञ जिनेश्वर, मनमथमातंग मृगेश्वर ॥ १०७ ॥ तुम धर्म तीर्थके कर्ता, मुक्तश्रीके बर भर्ता। तुमरे गुण ग्राम मझारी, अति रंजित है शिवनारी ॥१०८॥ गुण सागर जेष्ट जिनेश्वर, तुमको वंदूं परमेश्वर। इम भांत थुति बहु गाई, गजपे निज नार बिठाई ॥ १०९ ॥ ऊंचौ निज हाथ उठायो, जिन ले सुरगिरको धायो। चाले नभमें सुर सारे, जय नंदादिक उचारे ॥ ११० ॥ गंधर्व गीत बहु गावे, अपछरगण नृत्य रचावे।

दुंदभिके शब्द घनेरे, तासे दस दिशा गुंजेरे ॥ १११ ॥

गीता छंद—सौधर्म इंद्र उछंग घर जिनराजको गोदी लियो, ईसान इंद्र प्रमोद धरके छत्र श्री जिनपे कियो। ढारत भयो सु सनत्कुमार महेंद्र श्री जिनपैं चंवर, निज चित्तमें आनंद घर जैकार करते इंद्र अर ॥११२॥ तिस काल केई सुर मिथ्याती लख विभूत जिनेशकी, सुरगण सकल पायन पडत अति भक्ति देख सुरेशकी। भयभीत ह्वै मिथ्यात विषको वमो शुद्ध दर्शन गहे जाते मनुषभव सुख अनुपम पाय फुन शिवको लहे॥११३॥ इत्यादि आनंदयुत चलो जिनराजके संग सुरपती, अर देव दुंदभि बजे बाजे, तासकी ध्वन ह्वै अती। जिनराज वपुकी किरण सोहै इंद्र चाप मनो यही, योजन सहस निन्याणवै इस भांत गगन उलंघ ही ॥ ११४ ॥ तिस मेरु गिरमैं भद्रमाला-दिक सु वन सुभ चार हैं, मणि हेममय षोडश अनूपम जहां सु जिन आगार है। जहां देव देवी मुन सु चारण आय यात्रा करत है, एक लाख योजनको उतंग सु धर्ममूरत बन सु है ॥ ११५ ॥ बन तूर्य पांडकके विषैं ईशान दिशमैं मोहनी, पांडुकसिला तहां अर्धचन्द्राकार मणि छवि सोहनी। योजन पचास विशाल है आयाम सो योजन तनो वसु योजनाकी ऊंच तापे सिंहपीठ सुहावनो ॥ ११६ ॥ पास्वतां सोहै सिंह विष्टर सेवनको सु जिनेशके ता पास विष्टर दोय है सौधर्म ईशानेशके। छत्र चामर कलशझारी ध्वजादर्पण सुभ खरे, साथियो अरु बीजनां इस वसुद्रव्य मंगल तहां धरे ॥ ११७ ॥

दोहा—इत्यादिक सोभा सहित, मेरु सु गिरके शीस । मध्य सिंहासनके विषैं, स्थापे श्री जिन ईश ॥ ११८ ॥ अपनी अपनी दिश विषैं, ठाडे दस दिगपाल । धर्मार्थी सुरगण सकल, भए अधिक खुशहाल ॥ ११९ ॥ पांडुक बन अंबर विषैं, सेना सुरगण छाय । जै जै अति सुखतैं करैं, आनंद अंग न माय ॥१२७ मंडप बड़ो बनाईयो, शुभ सुंदर अधिकाय । त्रैजगके प्राणी सकल, तामैं जाय समाय ॥१२०॥ जगन्नाथके स्नपनको, प्रथम इन्द्र उमगाय । बीच सिंहासनके विषैं, स्थापे श्री जिन-राय ॥१२१॥ बाजे बाजन तब लगे, देव दुन्दभी सार । सुर-गण नाचे मोद धर, जै जैकार उचार ॥ १२२ ॥ किन्नर अरु गंधर्व मिल, गावे गीत अनेक । जनम कल्याणकके परम उरमें धार विवेक ॥ १२३ ॥ धूप दशायन लेयके, धूप दान मंझार । शांत पुष्टके अर्थ सो, खेवे सुरगण सार ॥ १२४ ॥

छन्द ३० मात्रा—प्रथम इन्द्र जिन मज्जनको पढ़ मंत्र कलश निज हाथ लिये, ईशान इन्द्रवर कलशनको तब चंदन कर चर्चित सु किये । शेष शक्र जयकार उचारे अति आनंद प्रमोद भरे । निज निजयोग यथोचित सेवा करत भये तब सुर सगरे ॥ १२५ ॥ इन्द्राणी अपछरगण सब ही जिन मज्जनको मोद धरे, मंगल द्रव्य लिये निज करमें । सुरगण हर्षित चित्त खरे । प्रथम इन्द्र निज चितमें चिंतो जिन शरीर सुन्दर अधिकाय, तातैं इनको स्नपन करूं अब क्षीर समुद्र तनो जल लाय । मेरु शिखरतैं क्षीरोदधि तक पंक्ती बंध खड़े सुर आय

॥ १२६ ॥ बदन उदर अवगाह कलशके इक चव वसु योजनको भाय, मोती दामादिक कर भूषित ताकी सोभा कही न जाय। हाथोंहाथ लेय कलशे मा हर्षित चित्त सु अंग न माय ॥ १२७॥ तब ही एक महप सुभ हरने, हस्त किये निज चित हर्षाय, तामैं कलश लिये मानो ये भाजनांग सुरतरु सोभाय। इन्द्र तबै ऐरावत उतारा, जिन मस्तकपै दीनी धार, तब ही सुरगण चित प्रमोदित, बहुत मचाई जैजैकार ॥ १२८ ॥

दोहा–जा भागसे गिर तबै, पंड पंड ह्वै जाय, सो धारा जिन सीसपे। फूलकली सम थाय ॥ १२९ ॥ तीन लोकके नाथको भारे वीर्य अनंत। जा वीरजको बर्णते, आवे नाहीं अन्त ॥ १३० ॥ जिन तनसे जलकी छटा, लगके ऊँची सोय। मानो पाप रहित भई, तातैं ऊर्ध होय। १३१ ॥ जिन शरीरको स्पर्शके, धार चली अगराल, मग्न भये तिस धारमैं चनके वृक्ष विशाल ॥ १३२। नाना रत्न जहां लगे, ऐसी अवनि मझार क्षीरदधि मानो यहां, आयो है सुखकार ॥ १३३ ॥

चौपाई–तिरछी छटा सु जावे कोय, तब ऐसी आशंका होय। मानो दिशा रूप जो नार, ताके कान फूल यह सार ॥ १३४ ॥ इत्यादिक उत्सव अधिकाय, भये सु दुंदुभि नाद बजाय। नाचैं तहां सु सुरसुन्दरी, हावभाव विभ्रम रसभरी ॥ १३५ ॥ जन्माभिषेक तने सुभ गीत, गावे सुर गन्धर्व संगीत। मणिमई धूपदान मंझार, धूपदमायन खेवे सार ॥१३६

इन्द्र इन्द्राणिके शुभ लार, पुन्य उपार्जन कियो अपार। श्री जिनवरकी भक्त सु करी, तातैं पुन्य उपायो हरी ॥ १३७ ॥

गीता छन्द—फुन गंधयुत जल लेयके हरि अति पवित्र उदार, जिन गं युत तन महज तोरण भक्तिवश दी धार। सो धार जग आनंददायक शिव सरम तुमको करो, सो धार पावन करे अरु भवताप दुख मेरे हरो ॥ १३८ ॥

चौपाई—सर्व अर्थकी सिध कर्तार, मुझको मंगल दो अविकार। विघ्न राशिको खड्ग समान हमको करो मोक्ष शुभ थान ॥ १३९ ॥ जिनवपु स्पर्शन कर सो धार, भई पवित्र अधिक सुखकार। सो धारा मम मन शुभ करो। राग द्वेष आदिक मल हरो ॥ १४० ॥

दोहा—इस प्रकार आनंद धर, कियो महा अभिषेक। फुन श्री जिन व । भेद सो, पूजे धार विवेक ॥ १४१ ॥

चौपाई—जल चन्दन अति गंध समेत, अक्षत मुक्ताफल जो स्वेत। पुष्प कल्पवृक्षनके सार क्षुधा पिंडवत चरु बलकार ॥ १४२ ॥ रत्नदीप शुभ धूप सु खेय, नानाविधके फल शुभ लेय। पूजे शक्र सु आनंद भरे, नभमैं पुष्पवृक्ष सुर करे। १४३॥ गन्धोदककी वर्षा होय मन्द सुगन्ध वायु अवलोय। जाकी स्नान पीठिका जान, मेरु सुदर्शन शोभावान ॥ १४४ ॥ मघवा स्नान करावन हार, स्नान कुण्ड क्षिरोदधि सार। नृत्य करैं देवी गण घने, इन्द्र सबै किंकर जिम तने ॥ १४५ ॥ ताको कवि बुध कैसे कहे, बाढ़े कथा अन्त नहिं लहे। पूरण कर अभिषेक

जिनन्द, उरमें अधिक लहो आनंद ॥ १४६ ॥ वसन लियो उत्तम सुखकार, जिन तन मार्जन कीनो सार। स्वर्गलोकमें उपजे जेह, ऐसे वस्त्राभूषण लेय ॥ १४७॥ जिन तनमें पहराये सार, शची अधिक आनंद सुधार। जगत तिलक शोभे जिन-राय, तिनके तिलक दिये विहसाय ॥१४८॥ जगके चूडामणि जिन ईश, चूडामणि बांधो तिन शीश। त्रैजग नेत्र सुहै जिन-राय, कज्जल आंज शचि उमगाय ॥१४९। सहजहि वेधे सुंदर कान, तामें कुण्डल जिन शशि भान। कंठ विषै मांहि मणिहार, भुजमें भुजबन्ध शोभे सार ॥ १५० ॥ कटि आभूषण कटिके माह, पहरे श्री जिनवर सुखदाय। इस प्रकार मंडन कर सची, हर्ष सहित जिन गुणमें रची ॥ १५१ ॥ जिन शरीर सुंदर अधिकाय, वस्त्राभूषण शोभा पाय। तब इम शोभा पाई सार, मानों लक्ष्मी पुंज उदार ॥ १५२ ॥ बारम्बार निरखे तब हरी, नैन तृप्तता नाही धरी। तब फुन सहस नेत्र कर सार, रूप लखो जिनको सुखकार ॥ १५३ ॥

गीता छन्द-इत्यादि गुण सागर अगुणहर कर्म रिपु हंतार है। त्रैजगत पूज्य जिनेश प्रथम सुधर्म वर कर्तार है ॥ मेरुपे हर युत महोत्सव स्नपन वंदन आदरो। शिवमार्ग उपदेशक सो हो हमको अबै मंगल करो ॥ १५४ ॥

इति श्री भट्टारक सकलकीर्ति विरचिते श्री वृषभनाथचरित्रे गर्भजन्मकल्याणकवर्णनो नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अथ नवम सर्गः।

चौपाई—जाको मेरु शिखरपे स्नान, इन्द्रादिक सुर कियौ महान। पूजित सब कल्याणक माह, वंदूं ऋषभ सु धर उत्साह ॥ १ ॥ भक्ति भार नमत सुरराय, जिन स्तुति आरंभी सुखदाय। तुमही श्रष्टीके कर्तार, तुम सब जियके रक्षनहार ॥२॥ आदि महामौनी सुखकार, श्रेष्ट मार्ग वक्ता हितकार। आदि विश्व भूरत हो नाथ, तुमको राजा नावें माथ ॥ ३ ॥ तीन ज्ञान धारी सुखदान, सब विद्या आकर सु महान। नीति मार्ग सब जन सुखकार, आदि प्रकाशौ करुणाधार ॥ ४ ॥ आदि मोह रिपुके हंतार, आदि तपस्वी जगहितकार। आदि पात्र हो श्री जिनराज कर्म हते लह केवलराज ॥ ५ ॥ आदि पंचकल्याणक भोग, तीर्थ प्रवर्तक धारी जोग। भवभय भीत होय तप धरो, जगत शरण अब मंगल करो ॥ ६ ॥ भविजन तारक जग हितकार, भवि अंबुधसे तारणहार। बिन कारण जगबंधु महंत, सुख वीरज अनंत धारंत ॥ ७ ॥ आदि मुक्त नारीके कंत, लोक अग्र मांही निवसंत। अमूर्तीक वसु गुणयुत सार, वंदूं चरण करो भवपार ॥८॥ तुमरो सहज शुद्ध वपु सार, निस्वेदादिक गुण भंडार। हमने स्नपन कियो जो आज, निज आतमकी शुद्धी काज ॥ ९ ॥ तीन जगतके मंडनहार, दिव्यरूप अद्भुत सुखकार। हमने मंडन कीनो आज, तुमरे पदकी सिद्धी काज ॥ १० ॥ गुण अनंत तुममें हैं देव, तिनको लह तनको ऊछेव। चव ज्ञानी गणधर हू थके, हम तुछ बुद्ध कहां कह सके ॥११॥

ये निश्चय कीनी उर मांह जिन गुण वर्णन हम बुध नाह। पै तुम भक्त प्रेरणा करे, ता वश होय स्तुति उच्चरे॥ १२॥

नाराच छंद–नमो करो सु मुक्तिनाथ स्वर्ग मोक्षदाय हो, नमोकरो सु तीर्थनाथ गुण अनंत राय हो। नमोकरो सु जेष्ट जिन कल्याण पंच भोग हो, नमोकरो सु धर्म इष्ट ईश धार जो गहो॥ १३॥ परमात्म नो हिमैं नमूं गुरु सुद्ध सार हो, प्रथम जिनेंद्र दिव्य मूर्ति अतिशय धार हो। इम प्रकार भक्ति भार युक्त बहु स्तुती करी, शक्रने सु बार बार चित्त अनंदता धरी॥१४॥

चौपाई–इत्यादिक मैं स्तुति करी, भक्ति भारयुत शोभा भरी। ताको फल ये होऊ जिनंद, गुणसागरदायक आनंद॥ १५॥ जगतननी लक्ष्मीसे काज, मोको नाहीं है महाराज। यह तो सहज होत निर्धार, तुमरे भक्तनकौं सुखकार॥ १६॥ सम्यक्दर्शन ज्ञानचरित! ये मोकों दीजये पवित्र। भवसागरमैं नाहीं रहूं, सास्वत मुक्ति रमाकूं गहूं॥१७॥

दोहा–इत्यादिक प्राथना करी, शक्र सहित जिनराज। ऐरावत चढ़ चालियो, पूरववत छबि साज॥ १८॥ गीत नृत्य बाजे बजे, करे अधिक उत्साह। ले विभूत सुर सब चले, शेष कार्य के तांह॥ १९॥

चौपाई–देखी आय अजुध्यापुरी, ध्वजमाला युत सोभा भरी। ज्यौं निजपुरमें जाय सुरेश, त्यौं ही यामैं कियो प्रवेश॥ २०॥ दसौं दिशामैं सुरगण भरे, जैजैकार शब्द उच्चरे। नृपागारमे तब सुरराय, कियो प्रवेश सु चित हर्षाय॥२१॥

देवरचित तहां सोभाथांन, गृह आंगण सुन्दर शुभ थान । सिंहासनपै श्री जिनराय, थापे प्रथम इंद्र हर्षाय ॥ २२ ॥ निज सुत देखो नाभि सु राय, वस्त्राभूषण सोभित काय । तेज राशि मानो यह सार, इम अचरज युत करे विचार ॥ २३ ॥ इन्द्राणी माता ढिग जाय, माया निद्रा दूर कराय दयो प्रबोध माता शुभ सार, निरखे वंधुजन सुखकार । २४ ॥ पूर्ण मनोरथ जिनके भये, ऐसे मात पिता सुख लिये । शक्र शची धरके आनंद, निरखे स्तुति कीनी सुखकंद ॥ २५ ॥ सुरगण साथ लेय विहमंत, वस्त्राभूषण भेट करंत । करे प्रशंसा बारंबार, सौधर्मेंद्र हर्ष उर धार ॥ २६ ॥

सवैया ३१—तुम दोनों जगपूज्य महाभाग्य महोदय महा-पुन्यवान स्तुति योग्य वंदनीक हो । तुम सम जगमाह और कोई दीखे नाह । चैत्यगिर सम हितकार पूजनीक हो । तुम कल्याण भागी गुरुराज शिरोमणि जग गुरु पुत्र जायो तातैं माननीक हो ॥ इम भांत स्तुति कर तिनको सु सुत दीनों । मेरुके स्नपनको विधान सबसों कहो ॥ २७ ॥

दोहा—तबैं इन्द्र उपदेशतैं, पुत्र महोत्सव सार । नगर लोक करते भए, धर चित्त हर्ष अपार ॥ २८ ॥

चौपाई—ध्वज तोरण अरु वंदनमाल, ठाम ठाम बनें सु विशाल । नानाविध सु महोत्सव करे, इन्द्रपुरी सम शोभा धरे ॥ २९ ॥ विथी चोहट अरु बाजार, रत्नचूर्ण कर मंडित सार । बाजे मृदंगादिक अधिकाय, तातैं दस दिश बधिर कराय ॥ ३० ॥

ध्वजा समूह बहुत फहरे, सूर्य तेज आछादित करे। नाभिराय अति आनंद भरे, हर्ष प्रमोद चित्तमें धरे ॥ ३१ ॥ राज-महल अरु गृह सु मझार, गान नृत्य होवे सुखकार। पुरजन सब अचरजमें भरे, निज अनुराग प्रगट सब करे ॥ ३२ ॥ तबै शक्र आरंभो सार, आनंद नाटक अचरजकार। जिनकी आराधन गुण धाम, साधे धर्म अर्थ अरु काम ॥ ३३ ॥ नृत्यारंभ इंद्र तब करो, आनंदयुक्त अति भक्तिसु भरो। नाभि-राय मरुदेवी लार, अरु निज सुत युत देखे सार। तिम विधा-नके जाननहार, देव गंधर्व योग्य तिस सार। गावैं गीत सहित किन्नरी, हाव भाव विभ्रम रस भरी ॥ ३५ ॥ पटह मृदंग तूर कंसाल, बाजे बाजे अधिक रिसाल। जन्मकल्याणककौं शुभ सार नाटक हरि कीनौं तिहवार ॥ ३६ ॥ विक्रय ऋद्धथकी अनुसरे, नाना भांति रूप हर धरे। श्री जिनेन्द्रके दस भव सार, पृथक पृथक दिखलाये धार ॥ ३७ ॥

गीता छंद- पुन नृत्य तांडवको आरंभो हर्ष चितमें धर हरी, वर वस्त्र मालादिक पहन तरु कल्पसम उपमा धरी। शुभ रंगभूमीके विषैं हर अधिक आनंदमें भरो, निज हस्त एक सहस्र कीनें युक्त भूषण सुंदरो ॥ ३८ ॥

चौपाई—एक रूप छिनमें है जाय, छिनमें रूप अनेक धराय। छिनमें दीरघ रूप धरात, छिनमें अति सूक्ष्म है जात ॥ ३९ ॥ छिनमें पास छिनक आकाश, दूरि समीपादिक सु विलास। छिनमें दोय हस्त निज करैं, छिनमें सहस हस्त अनुसरे ॥ ४० ॥ इस प्रकार सामर्थ अपार, कीनी निज परगट

सुखकार। इन्द्रजाल कीनौ सुरराय, ताकी सोभा कही न जाय ॥ ४१ ॥ शक्र करांगुल पे सुर सुरी नाचे हावभाव रस भरी। मानौ शक्र कल्पतरु सार, कल्पबेल अपछरा निहार ॥ ४२ ॥ कबहुक अपछर नाचे पास, कबहुक जाय लगे आकाश। कबहुक अदृश्य ही ह्वै जाय, सो ही फुनिवर नृत्य कराय ॥४३॥ इत्यादिक शुभ नृत्य समाज, देविनयुत कीनौं सुरराज। विक्रय ऋद्ध तने परभाय, कीनौ नृत्य सबन सुखदाय ॥ ४४ । नृत्य विधानसु पूरण कियौ, जिनभक्ति उरमैं धारियौ। मुक्त अथ कीनौ सुरराज, देखे नाभिराय महाराज ॥ ४५ ॥ इंद्र धरो तब जिनको नाम, वृषभनाथ सब गुण गण धाम तीन लोक हितकारी जान, वृष उपदेशक दया निधान ॥ ४६ ॥ माताने भी स्वप्न मझार, सुंदर वृषभ लखो थो सार। तातैं इनको सार्थिक नाम, वृषभनाथ है गुणगण धाम ॥ ४७ ॥ यह व्यवहार नाम शुभ करो, जिन अंगुष्ठमैं अमृत धरो। पुष्ट होय तासे गुणराम, धात्रीसम देवी धर पास ॥ ४८ ॥ तिन समान वय रूप धराय, विक्रय ऋधतैं सुर सुखदाय। जिनकी सेवा कारण सार, राखे इंद्र भक्ति उर धार ॥ ४९ ॥ प्रवर पुन्य उपजाय महान, इंद्र गये तब अपने स्थान। अबसे दिव्यरूप जिनराय, तिनकी सेवा देव कराय ॥ ५० ॥ मज्जन करे भक्ति उर धार, जिन शरीर श्रृंगारे सार। वस्त्राभूषण माला लाय, स्वर्ग तनी पहरावे धाय ॥ ५१ ॥ कबहु जिन संग क्रीड़ा करे, हर्ष विनोद चित्तमैं धरे। इस प्रकार त्रैजगके नाथ, लघु वय गुण दीरघ विख्यात ॥५२॥ द्वितया शशिसम

उपमा धरे, जिनकी सेवा सुरगण करे। क्रमसो श्री जिन मुखमें आय, वसी सरस्वती जग सुखदाय ॥ ५३ ॥ इंद्र नीलमणि भये सुखकार, भूमि विषैं चाले जिन सार। डिग-मिगात पद श्री जिन धरे, मानौ धर्ममूर्त संचरे ॥ ५४ ॥ शुक गज हंस अश्व बन जाय, सुर नाना विध रूप धराय। जैसी वय श्रीजिनकी होय, तैसो रूप धरे सुर सोय ॥ ५५ ॥

बाल अवस्था तज बुधवान, हुवे कुमार सकल सुखदान। मति श्रुत अवधि सु तीनौ ज्ञान, लीये उपजे थे भगवान ॥ ५६ ॥ सकल कला जो जगमें कही, सबही सार प्रभूने गही। उत्तम क्षायक समकित धार, बारा व्रत धारे सुखकार ॥ ५७ ॥ सकल जगतकी विद्या जोय, तिनकौ जानत जगगुरु सोय। अष्ट वर्षके जबही होय, श्रावकके व्रत धारे सोय ॥ ५८ ॥ निज यश निर्मलचंद्र समान, ताकौं सुनत भये निज कान। सुर गंधर्व किन्नरी जोय, प्रभु गुण गात सु हर्षित होय ॥ ५९ ॥

कबहुक बीन बजावे सुरा, कभियक काव्य गोष्ट प्रभू करा। कभी मयूर रूप सुर धरे, नाना विध नाटक अनुसरे ॥ ६० ॥ कबहु सुककौ रूप धरंत, काव्य छंद श्लोक पढंत। कबहुक वन क्रीड़ा अनुसरे, कबहुक जल क्रीड़ाको करे ॥ ६१ ॥ इस प्रकार क्रीड़ा सुखकार, करे जिनेश्वर सुरगण लार। क्रमसो योवनवान जिनेश, भये सबन सुखदाय हमेश ॥ ६२ ॥ तप्त स्वर्णसम वर्ण महान, पंच सतक धनु तन परमाण। लक्ष चौरासी पूरब आय, सुंदर लक्षण लक्षित काय ॥ ६३ ॥

सत्तर लाख करोड़ बखान, छप्पन सहस करोड़ प्रमाण। एते वर्ष मिलाये सही, होवे पूरव संख्या वही ॥ ६४ ॥ श्रमजल रहित शरीर सु जान, मलमूत्रादि रहित मुख दान। क्षीरवरण श्रोणित पहचान, आदि संस्थान धरे गुण खान ॥ ६५ ॥ प्रथम सार संहनन सु धरे, रूप थकी सबको मन हरे। बिना लगाये सुगंध अपार, आवैं जिन तनतैं सुखकार ॥ ६६ ॥ एक सहस सुलक्षण जान, जिन तनमैं माहै सुखदान। बीरज अतुल धरे जिनराय, हितमित वचन सबन सुखदाय ॥ ६७ ॥ ये दस अतिशय लिये महान, उपजत हैगे श्री भगवान। अब जो लक्षण जिन तन माय, तिनके नाम कहे सुखदाय ॥ ६८ ॥

गीता छन्द—दश्रीवृक्ष १, अंकुश २, कमल ३ तोरण ४, शंख ५, स्वमतिक जान ६, घट ७, छत्र ८, चामर ९, केतु १०, विष्टर ११, मत्स १२, उदधिमहान १३, नर १४, नार १५, चकवा १६, काछव १७, सर १८, सिंह १९, भवन २०, विमान २१ ॥ पुर २२, इन्द्र २३, गंगा २४, मेरु २५, गोपुर २६, सूर्य २७, शशि २८, धनु २९, बान ३० ॥६९॥ तरुताल ३१, अश्व ३२, मृदंग ३३, वीणा ३४, वेणू ३५, कुंडलमान ३६ ॥ शुक ३७, नाग ३८। माला ३९, क्षेत्र-फल ४०, युतरत्नद्वीप ४१, उद्यान ४२। निध ४३, वज्र ४४, उपवन ४५, धरा ४६, लक्ष्मी ४७, सरस्वती ४८ सुख-दान ॥ वृषभ ४९, कामधेनु ५०, चूडामणि ५१, स्वर्ण ५२, तोरन जान ५३ ॥ ७० ॥

सवैया ३१—जम्बूवृक्ष कलश्वेल सिद्धारथ वृक्ष ग्रह महल गरुड वसु प्रतिहार्य जानिये । मंगल दरव वसु लक्षण इत्यादि शुभ एक शत आठ (१०८) नौसै व्यंजन (९००) प्रमाणिये ॥ भूषण सहित तन सुंदर सुशोभावान जोतिष सुगण तथा चन्द्रमा समानिये । अर्द्धचंद्राकार भाल मुकट दिये विशाल मुख चंद्रवत नैन वरिज बखानिये ॥ ७१ ॥

चौपाई—गीत वाजित्रादिक श्रुत सार, तिनके श्री प्रभु जाननहार । मणि कुंडल कानन मंझार, सोभे चंद्र सूर्यवत सार ॥ ७२ ॥ तुंग नाशिका शोभावान, हित मित बचन सबन सुखदान । वक्षस्थल सुंदर अधिकाय, तामैं रत्नहार शोभाय ॥ ७३ ॥ श्री त्रियाको स्थानक जान, दीरघ वक्षस्थल युत-वान । लंबी भुजा वांछित फलदाय, कल्पलता सम अति सोभाय ॥ ७४ ॥ नख सुंदर दस अंगुल तने, अर्द्धचन्द्र सम चमके घने । मानौ दशलाक्षण जो धर्म. ताही को परकाशे पर्म ॥ ७५ ॥ नाभी सरवत युत आवर्त, बुध हंसी जहां करत प्रवर्त । कटिमैं कटिमेखला अनूप, रत्नजडित सोभे शुभ रूप ॥ ७६ ॥ जंघा कोमल वज्र सुमई, योग धारनेको निर्मई । जिनके चरणकमल शुभ सार, कवि बुध कहत न पावे पार ॥ ७७ ॥ जिनकौ सेवैं नित प्रत देव, चितमैं धार अधिक अहमेव । इत्यादिक तन सोभ महान, कविके बचन अगोचर जान ॥ ७८ ॥ नख सिख लौ जो शोभा सार, ताको को कवि पावे पार । अस्थि रु वेष्टन कीले जान, वज्रमई सब ही परमाण

॥ ७९ ॥ इत्यादिक गुण पूरण सार, सुंदर रूप समुद्र निहार। देखो योवनवान कुमार, नाभिराय तब कियो विचार ॥ ८० ॥ ये तीर्थंकर गुणकी खान, तीन ज्ञान धारी सु महान। मंदराग वसि ग्रहमें रहे। काललब्ध लह तपकों गहै ॥ ८१ ॥ जबलग काललब्धि नहि आय, तबलग पुत्र अर्थ सुखदाय। रूपवती कन्याके लार, व्याह करूं सब जन सुखकार ॥८२॥ यह निज चित्त निश्चय ठैराय, जगन्नाथ ढिग पहुंचे जाय। मेरे वचन सुनों तुम सार, न्यायरूप जो सुख कर्तार ॥ ८३ ॥ हमको गुरु कहत हैं लोग, तुमरे जनम तने संजोग। गुरु तो तुम ही हो हितकार, स्वयं कार्यके जाननहार ॥ ८४ ॥ प्रजा तने उपकार निमित्त, पाणीग्रहण करो सु पवित्त। प्रजा तुमरे ही अनुसार, सतमारग धारे सुखकार ॥ ८५ ॥ मेरे आग्रहतैं सुकुमार, मम वच कीजे अंगीकार। इसप्रकार तिन वचन अमंद, सुनके मुस्काय जिन चंद ॥ ८६ ॥ राजी ऋषभ जिनेस्वर जान, नाभिराय तब उद्यम ठान। गोष्ठ इन्द्रसे कारके सार, द्वै कन्या जाची सुखकार ॥८७॥ कच्छ सुकच्छ नृपकी गुणयुता, नंद सुनंदा नामा सुता। नगर उछालों कर उत्साह, कामन गावैं गीत अथाय ॥ ८८ ॥

पद्धड़ी छन्द—शुभ लग्न महूरत देख सार, दस दोष रहित साहो विचार। गुरजनकी साक्षी देय दीन, वर पाणी ग्रहण कीनो प्रवीन ॥ ८९ ॥ सज्जन हर्षे बहु चित्त माह, दीनों सो ओवे पार नाह। अब मंद राग वसि श्री जिनेश, संतान

काज भोगे सु वेश ॥ ९० ॥ देवो पुनीत भोगे सु भोग, नित नये सु पूरव पुण्य योग। भोगे षट ऋतुमें सुख रिसाल, जाने न सुक्खमें जात काल ॥ ९१ ॥

चौपाई–सुख सौं सूती नंदा नार, देखे स्वप्न रैन मंझार। सूरज मेरु निगलती मही, उदधि हंस शशि सरवर सही ॥९२॥

दोहा–बाजे सुन परभातके, बंदी बिरद बखान। पुन्यवान जागत भई, मंडन निज तन ठान ॥ ९३ ॥ हर्षित चित भर्तार ढिग, बैठी सुन्दर काय। स्वप्नमाल जैसी लिखी, तैसी भाखी जाय ॥ ९४ ॥

चौपाई–तिय मुख स्वप्न सुने हर्षाय, ताके फल भाखे जिनराय। मेरु सुदर्शन ते सुखकार, चक्रवर्त सुत होवे सार ॥ ९५ ॥ भूम निगलती तैं सुख दान, षट् खण्ड पालक होय महान। चन्द्र थकी शुभ क्रांत सु धार, सरसे पूरित लक्षन सार ॥ ९६ ॥ सागरतैं चरमांगी जान, तिरे संसार समुद्र महान। सूरजतैं परतापी होय, हंससे उज्वल कीरत जोय ॥९७॥ सत पुत्रनमें जेष्ट महान, होवेगो संशय नहि आन। षट्खण्डके सुर भूपति जान, तिसको ते सब करैं प्रणाम ॥ ९८ ॥ भर्ताके इम वचन सुनंत, चित्त प्रमोद अधिक धारंत। मानो पुत्र गोदमें आय, बैठे तैसो आनंद पाय ॥ ९९ ॥ सिंह सु होय सुबाहू भयौ, सोई अहमिंद्र पद लयौ। सो सरवारथ सिद्धतैं चयो, नंदा गर्भ आन सो ठयो ॥ १०० ॥ क्रमसो गर्भ बढो सुभ सार, गर्भ चिह्न प्रगटे सुखकार। ज्यौं ज्यौं

गर्भ बढे सुखदान, त्यौं त्यौं सज्जन आनंद मान ॥ १०१ ॥ सुखसौं बीत गये नव मास, जेठो सुत जायो गुण रास। बर लक्षण लक्षित सुकुमार, बाल सूर्यसम उपमा धार ॥ १०२ ॥ मरुदेवी अरु नाभिसुराय, सुत संतान देख हर्षाय। पटह संख भेरी मिरदंग, बाजे बाजे अधिक सु चंग ॥ १०३ ॥ पुष्पवृष्ट आदिक सुर करैं, नृत्य गान बहुविध विस्तरैं। अवधपुरी स अलंकृत करी, तोरण सहित ध्वजासौं भरी ॥१०४॥ इसप्रकार चित्त आनंद धार, कीनों जन्ममहोत्सव सार। भरतक्षेत्रको हेगो भूप, भरत नाम यूं धरो अनूप ॥ १०५ ॥ द्वितया शशि सम बालक सोय, बाढे सब मन आनंद होय। दिव्य रूप धारे सुखकार, छवि सुंदर मनु देवकुमार ॥ १०६ ॥ तबसो योवन वयमें सार, पितुसम रूप क्रांत गुणधार। शंख चक्र मछ गदा अनूप, इन लक्षण फल षटखंड भूप ॥१०७॥ छत्र दंड असिरत्न सु जेह, तिनके लक्षण धारत देह। भरतक्षेत्रके राजा जिते, या फल पद सेवेंगे तिते ॥ १०८ ॥ भरतक्षेत्रमैं नर सुर जोय, तिन बलतैं सु अधिक बल होय। शौच क्षमा बुध सत उत्साह, विनय असम धारे अधिकाय ॥ १०९ ॥ मीठे बच वपु क्रांत सुवान, तन स्वर्णसम वर्ण महान। पांच सतक धनु ऊंची काय, पिता तुल्य बर जानौ आय ॥ ११० ॥ देव राजवत शोभा धरे, सब जनके सो मनको हरे। क्रम सौं नंदाके अब जान, चय सरवारथ सिधतें आन ॥ १११ ॥ भये पुत्र सब गुणगण खान, तिनको अब सुनिये व्याख्यान। मंत्रीचर जो पूरब कहो, पीठ

सुफुन अहमिंद्र थयो ॥ ११२ ॥ भयो सु वृषभसेन बुधवान, भरत तनौ भ्राता गुणखान। प्रोहितचर महापीठ सुजान, फुन अहमिंद्र है गुणखान ॥ ११३ ॥ अनंतविजय सुत सोई भयौ, व्याघ्रतनो चर विजय सु थयौं। अहमिंद्र पद लह फुन चयौ, सो अनंतवीरज उपजयो ॥ ११४ ॥

गीता छंद—वराह चर वैजयंत ह्वैके फुन अहमिंद्र पद लयो, चयके तहां सुत अनूपम नाम अच्युत उपजयो। मर्कट तनौ चर है जयंत सु फुन अमिंद्र सो भयो, चयके तहां तेजङ्क नामा सुत बली अति सो थयो ॥ ११५ ॥

चौपाई—नकुल जीव अपराजित भयो, फुन अहमिंद्र पद शुभ लयौ। तहांतैं चय इनके सुतसार, नाम सुवीर भयो सुख-कार ॥ ११६ ॥ इत्यादिक सुत उपजे सार, सुंदर एक सतक सुखकार। पुन्य उदैसे नंदा नार, सुख भोगे नाना परकार ॥ ११७ ॥ सब लक्षण पूरित जसु गात, धाय पंडिता चर बिख्यात। ब्राह्मी पुत्री उपजी आय, पुन्यवती जानौ सुखदाय ॥ ११८ ॥ सेनापतिको चर जो कहो, महाबाहु सोई फुन भयो। फुन सर्वारथ सिधमें जाय, तहांते चयके फुन इत आय ॥ ११९ ॥ वृषभदेवकी दूजी नार, नाम सुनंदा जगमें सार। तिनके बाहुबली सुत भयो, कामकुमार प्रथमसौं थयो ॥१२०॥ वज्रजंघके भवमैं जान, नाम अनुद्धरी भगनी मान। पुंडरीकके संग सुख भोग, नर सुरके फुन शुभके योग ॥ १२१ ॥ सो तिनके तनुजा भई आय, नाम सुंदरी सब सुखदाय। धारे बु

सु गुणसु अनेक, रूप कला लावण्य विवेक ॥ १२२ ॥ यूं इक सतक सु एक कुमार, चरमांगी गुण पूरण सार। पुन्य बराबर सबने कियौ, तातैं सबने सम सुख लियौ ॥ १२३ ॥ क्रमसौ योवनवान कुमार, होत भये सब जन सुखकार। तिन सब सुत-करि श्री जिनचंद्र सोभित भये पाय आनंद ॥१२४॥ जोतिष-गणयुत ज्यौं गिरराय, सोभे त्यौं सोभे जिनराय। पुत्रनको नाना परकार, पहरावै मोतिनके हार ॥ १२५ ॥ शीर्षक अरु उपसीर्षक नाम, अब घाटक तीजो गुण धाम। परकांडक अरु तरल प्रबंध, पंच भांति यो हार अमंद ॥ १२६ ॥

तोटक छन्द–अब सीर्षक हार सु भेद सुनौ, बिचमें इक मोती दीर्घ गिनो। जिसमें त्रय मोती बीच गहे, उसको उपशीर्षक नाम कहे ॥ १२७॥ जिस बीच पांच मोती गुँथिये, तीस नाम प्रकांडक शुभ कहिये। जिस बीच बडो क्रम हीन धरो, अब घंटक नाम सु हार खरो ॥ १२८ ॥ अब तरल प्रबंध जुहार कहो, तिसमें मौतिक इक सार लहो। इम हार सु ग्यारह भेद कहे, सबकी लडियां मध भेद रहे ॥ १२९ ॥ इक सहस आठ लड़ जास तनी, तसु नाम इन्द्र छन्दा सुभनी। सो इन्द्र चक्रवर्ती पहरे, अरु तीर्थंकर गल बीच धरे ॥ १३० ॥ लड़ पांच शतक अरु चार गिनी, सो हार पहर त्रय खण्ड धनी। तसु नाम बिजै छंदा कहिये, सो अन पुरषनके ना लहिये ॥ १३१ ॥ अब देव छन्दको अर्थ सुनो, सत अष्टोतर लडिया जु गुनो। इकलड इक्यासी मोतीकी, नाहि उपमा उसकी जोतीकी ॥ १३२ ॥

पायता छन्द—जो साठ लडीको जानो सो अर्द्धहार पहचानो। बत्तीस लड़ी जिस माहि, गुच्छ नाम हार सो थाहि ॥ १३३ ॥ लड़ है सत्ताईस जाकी, शुभ हार नक्षत्र मालाकी। चौबीस लड़ी जिस गहिये, अर्द्ध गुच्छ हार सो कहिये ॥ १३४ ॥ जो माणवहार बखानो, तिस बीस लड़ी परवानो। जो माणव अर्द्ध कहीजे, लड़िया दस तास गहीजे ॥ १३५ ॥

गीता छन्द—इम हार ग्यारह भेद जानो एक शीर्षकके विषै, उपशीर्षकादिक भेद चारों तासमें यों ही लखे। इम पांच हारन मध्य पचपन भेद जानो एव ही, ते सब कुमारनको बनाये पहरते सोभा मही ॥ १३६ ॥ इक दिनजु ब्राह्मी सुंदरी दोऊ कुमारी आय ही, वस्त्राभरण अनमोल पहरे प्रभु चरण सिरनाय ही। तिनको निरख प्रभु मोद धर निज गोदमें बिठला यही, इम कहत वच सुन पुत्रियों विद्या पढ़ो तुम भाय ही ॥ १३७ ॥

चौपाई—हे पुत्री तुम औसर येह, विद्या पढ़नेको गुण गेह। विद्यासम कोई भूषण नाय, जन्म सफल इसते हो जाय ॥ १३८ ॥ पुरुष तथा प्रमदा जो कोय, विद्या गुणकर भूषित होय। सब जग ताकी पूजा करे, जगत द्रव्य कर सो नर भरे ॥ १३९ ॥ विद्यात्रय जगदीपक कही, मोक्षमार्ग परकाशक सही। विद्या सब कल्याण करेय, विद्या सकल अर्थको देय ॥ १४० ॥ तीन लोकको भूषण येह, हे पाहेय

परीक्षा गेह। देवशास्त्र गुरुकी पहचान, विद्या बिना न कभू लहान ॥ १४१ ॥ ज्ञानहीन है नर जो कोय, धर्म अधर्म न समझे सोय। करे परीक्षा नाही सार, शुभ अरु अशुभतनो निर्धार ॥ १४२ ॥ ज्ञानांजन जिनदृग आंजियौ, तिनकौ सम्यग्दर्शन भयौ। ज्ञानहीन जे अन्ध समान, कृत्याकृत्य विचार न जान ॥ १४३ ॥ ऐसो जान पुत्री गुण गेह, विद्यासे भूषित कर देह। तीन लोक विच सोभा सार, विद्या बिन नाहीं मन धार ॥ १४४ ॥ तुम पढनेको ओसर यही, वृद्धकाल विद्या है नही। नमः सिद्धेभ्य कह परवीन, अकारादि अक्षर गुण लीन ॥ १४५ ॥ ब्राह्मीको सब ही सिखलाय, दक्षिण करसे लिखन बताय। सुंदरि दूजी पुत्री जान, ताकौ गणित सिखाय प्रमाण ॥ १४६ ॥ वाम हस्तते ताह पढ़ाय, एक आदि दस तक लिखवाय। दोनों बुद्धिवती थी सोय, पढकर वेग पंडिता होय ॥ १४७ ॥

पद्धड़ी छंद—सत पुत्रनिको तब ही पढाय, नानाप्रकार शास्त्रहि बताय। जो धर्म अर्थकी सिद्ध कराय, सो सब विद्यामें निपुण थाय ॥ १४८ ॥ शुभ भरत पुत्र जो दीर्घ जान, तिनको लक्ष्मी प्रापत ठान। जो वृषभसेन दूजो कुमार, संगीतशास्त्र सो पढत सार ॥ १४९ ॥ जो पुत्र अनंतविजय महान, सो चित्रकलामें निपुण जान। अश्वादिकपे चढनो बताय, अरु धनुर्वेदके ग्रंथ पढाय ॥ १५० ॥ तिया पुरुषके लक्षण सही, मंदिर रचनाकी विध कही। रत्न परीक्षा बहु अध्याय, बाहुबलिको ये

भणवाय ॥ १५१ ॥ इम अनेक विद्या सुखकार, निज परहित कारक सुख सार। सब पुत्रनको दई सिखाय, जगकर्ता सबको गुरु थाय ॥ १५२ ॥

गीता छन्द—अब कल्पवृक्ष गये सु भुवसे शक्ति उनकी घट गई, तब सर्वजन व्याकुल भये किम करे ये चिंता भई। जीवनकी आसाधार मनमें नाभिनृप आपैं गये, सब ही नमन कर जीवकादी प्रार्थना करते भये ॥ १५३ ॥ तिनको मलिन मुख देखकर नृप नाभि प्रभुपै ले गये, सब जाय करिके नमन कीना वीनती करते भये पितु मात सम द्रुम राज थे सो सर्व ही जाते रहे, जिम पुन्यके क्षय होत संते द्रव्य चोरादिक गहे ॥ १५४ ॥ अब शीत तापादिक परीषह क्षुधा प्यासादिक घनी, लगने लगी तनको बहुत जब आय कर तुम सो भनी। हे देव तुम किरपा करो जो सब उपद्रव जाय ही, तुमरी सरण हम आगये तुम ही उपाय बताय ही ॥ १५५ ॥ इम वचन सुनकर कृपा सागर तीन ज्ञान धरे सही। मनमें विचारो एम तब अब भोगभूम सबै गई, अब कर्मभूमि प्रवर्ति होनी चाहिये इस भू विषैं। जो मुक्ति जीव अनंत जावे, चतुरगति कारण लखे ॥ १५६ ॥ जो पूर्व अपर विदेह माही रीत वर्ते है सदा, सो सर्व होनी चाहिये षट्कर्म भी कहते यदा। इम चिन्तवन करते प्रभु इतने अमर हरि आइया, शुभ दिन सु लग्नादिक निरख श्री जिनभवन बनवाइया ॥ १५७ ॥ फुनि कोशलादिक देश सुन्दर सर्वनाना विध सही, शुभ ग्राम पत्तन खेट कर्वट

अरु मंट वसु जानही। अरु द्रोणमुख संवाहनादिक यथायोग्य बनाईयो, जगनाथको परिणाम करके शक्र निज थानक गयो ॥ १५८ ॥ असि मषि कृषि विद्या वाणिज्य सिल्पकर्म प्रमाणिये, षटकर्म सृष्टाने बताये कृपाकर सुखखान ये। नाना सुविध आजीवकारक प्रजाको बहु सुख दियो, असिकर्म प्रथमहि क्षत्रियोंको देय बहु आनंद लियो ॥ १५९ ॥

पायता छंद-मषि कर्म दुतिय जो थाई, सो लेखक शास्त्र लिखाई। कृषि कर्म त्रितिय जो जानो, सु किसानलोग करवानो ॥ १६० ॥ विद्या जो चौथो कहिये, सो शास्त्र पठनतें लहिये। जो वणज करे हितकारी, उद्यम अनेक विध धारी ॥ १६१ ॥ सो पंचम कर्म बताये, वाणिज्य नाम सो गाये। बहु सिल्पकर्म करवाई, सो षष्टम भेद बताई ॥ १६२ ॥ इम प्रभु षटकर्म बताये, सब जीवनके सुखदाये। सुन तीन वर्णको भेदा, प्रभुने जो थापे एवा। जो प्रजापालने दक्षा, प्रथवीकी करहै रक्षा ॥ १६३

पद्धड़ी छन्द-जो न्यायपंथके जानकार, अरु शास्त्रथकी मयको निवार। तिनको क्षत्री थापे जिनंद, जो सब परजाके दुख निकंद ॥ १६४ ॥ जो सकल वस्त्र संग्रह कराय, अरु दानादिकमें रत सु थाय, ते श्रेष्ट महाजन वैश्य जान, वाणिज्य वर्ण दूजो पिछान ॥ १६५ ॥ अब शूद्रतणो सुन सर्व भेव, जो खेती पशु पालन करेव। तिनमें दो भद्र सुजान लेह, इक कारु अकारु दो गिनेह ॥ १६६ ॥ तिनमें रजकादिक कारु जान, ते मद्य मांस वर्जित वखान। अब भेद अकारु तने दोय अस्पर्श

स्पर्श ही जान लोय ॥ १६७ ॥ जो पुर बाहर रहते चंडाल, अस्पर्श जात कंजर कुचाल । अब स्पर्श शुद्रको भेद एम, तेली खाती आदिक जु जेम ॥१६८॥ आषाढ कृष्ण प्रतिपद मझार, थापे इम तीनों वर्ण सार । षट्कर्म प्रभुने सब बताय, अपने अपने सब ही कराय ॥ १६९ ॥

चौपाई—बीस लाख पूरब इम गये, काल कुमारहि सुख भोगये । तब सौधर्म इंद्र आइयो, बहु देवनको संग लाइयो ॥ १७० ॥ प्रभुको राजतनों अभिषेक, करनो इम चित धार विशेष । पुरी अयोध्या सोभित करी, ध्वज तोरण कर भूषित खरी ॥ १७१ ॥ क्षीर समुद्र तनों जल लाय, ताकर प्रभुकौं न्हवन कराय । दुंदुभि वाजनकौ जो शोर, बधरी करत दसो दिस जोर ॥ १७२ ॥ देव अपछरा नृत्यसु करे, श्री जिनभक्ति माह चित धरे । गावे गीत किन्नरी सार, फुनि गंधर्व पढ़े मुद धार ॥ १७३ ॥

तोटक छन्द—इत्यादिक मंगल मोद लही, प्रभुको जु सिंघासन थाप सही । अभिषेक करे कर भक्ति महा, शुभ कुंभ सुवर्ण अनेक गहा ॥ १७४ ॥ पुरके जन मिल स्वजनादि जबै, जयनंद कोलाहल गान तबै । नृप नाभि आदि राजन जब ही, मिल भक्त करी प्रभुकी तब ही ॥ १७५ ॥ पुरके सब लोग गजु कुंभ लिये, तिनके मुख अंबुज ढाक दिये । फुन व्यंतर मागध आदि कही, अभिषेक करे हितसो सबही ॥ १७६ ॥ फुनि आरत प्रभुकी करत सही, भूषणमाला पहरावत ही । फुन

नाभिराय निज हाथ गही, पट बांध्यो प्रभु सिर रत्नमई ॥१७७॥ शुभ मुकट धरो प्रभु मस्तक पै, चूड़ामणि जिनके सीस दिये। तिहुं लोकनाथ वर आज भये, इम आनंद जुत सब कहत जये ॥ १७८ ॥ शुभ नाटक इंद्र तहां रचियो, मुद ठान फेर नभ स्वर्ग गयो। जो परजाकी रक्षा करते, सो वर्ण महाक्षत्री धरते ॥ १७९ ॥

गीता छन्द–तिन माह चार महान थापे सोम प्रभु हरि जानिये। राजा अकंपन और कास्यप मंडलीक महानये ॥ तिन माह इक इकको नमं चव सहस नृप सुखकार है। अभि-षेक तिनहुंको भयो सो प्रभु हुकम सिरधार है ॥ १८० ॥ तिन माह सोमप्रभु सुराजा देश कुर जांगल विषैं, तसु पट्टपै कुरु नाम भूपत वंस कुरु ताकौ अषै। हर नाम भूपति जो कहा तसुवंश हरिशुभ जानिये, राजा अकंपन नाथ वंसी पुत्र श्रीधर मानिये ॥ १८१ ॥ कास्यप सुनामा राय जानौ पुत्र मघवा जासही, ताकौहि उग्र वंश थापो और नृपति समान ही। अधिराज पदमें थापियो जो कछ महाकछ नाम है, सतपुत्र सबहीको दियो शुभ वस्त्रवाहन ग्राम है ॥ १८२ ॥

चौपाई–ईक्षु दंड रस प्रभु जु बताय, तातैं वंश इक्षाकु कहाय। आर्यनको जीवनजु उपाय, बतलायो तातैं मनु थाय ॥ १८३ ॥ कुल थापें तातैं कुलकरा, अष्टाअष्ट रचनतै स्वरा। इत्यादिक नामनितै जान, थुति करती सुप्रजा सुषमान ॥१८४॥ इम सुवंश प्रभु थापत भये, राजनके राजा पद लए। हा मा धिक

ये दंड चलाय, जैसो दोष करे सो पाय ॥१८५॥ पुन्य विपाकसु जिन भोगाय, नरसुर सब ही सेव कराय। तीन जगत पत सेवे चर्न, पुत्र पौत्र संजुत दुष हर्न ॥ १८६ ॥ त्रैसठ लाख पूर्व इम गये, राजसु सुख सब ही भोगये । इम पुन्य उदय थकी जगराज, भोगत भये सकल सुख साज ॥१८७।

सवैया—धर्म सदा सुर शिवपद देयसु धर्म सबै सुखकी निधिजानौ, यह धर्म अनंतगुणाकर है सब पाप निवारक धर्म बखानो। मुक्ति वधू प्रिय धर्म यही सुख कारक मात पिता सम मानौ, जिन भाषित धर्मसु एम कहो तिसको दिन रैन नमोस्तु जु छानो ॥ १८८ ॥

इति श्री भट्टारक सकलकीर्ति विरचिते श्री वृषभनाथराज्यवर्णनो नाम नवम: सर्ग: ॥ ९ ॥

अथ दशम सर्ग ।

मालती छन्द—गणधर मुनि सेव्यं इंद्र चंद्रादि वंद्यं, निखिल गुण समूहं तीर्थकर्ता वृषेशं। निज कुल हित समुद्रं तासको चन्द्र बिंबं, हन मम भवतापं आदिनाथं नमामि ॥ १ ॥

मोती दाम छंद—सुनो सब भव्य अबै मन आन, भये प्रभु जेम विराग महान। सुधर्म सुरेश कियो सुविचार, प्रभु रचियौ भव भोग मंझार ॥ २ ॥ उपाय अबै करिये इस थान, जु होय विरक्त लहे शुभ ज्ञान। विचार यही सुभ नाटक ठान, बुलाय नीलांजना अप्सर जान ॥ ३ ॥ रही जिस आयु

घडो द्रय चार, करो तिन नृत्य लखे प्रभु सार। सुरन सिंहासनपे जिन एम, लसे उदयाचल सूर्य सु जेम ॥ ४ ॥ तबै सत पुत्र उमंग धराय, ठये सब राज सभा मधि आय। बजे सु मृदंग द्रुम द्रुम जोर, चले पग मार झनंझन रोर ॥ ५ ॥ घनाघन घंट बजे धुन मिष्ट, तहां मुह चंग सुरन्वित पुष्ट। घड़ी छिन पास घड़ी आकाश, लघु छिन दीरघ आदि विलास ॥ ६ ॥ ततक्षण ताहि विलय प्रभु देख, भये भवतैं भयभीत विशेष। तबै रस भंग तनो भय धार, सुरेश बनाय दई इक नार ॥ ७ ॥ पडो नहि भंग जुताल मझार, सभा सब जान वही यह नार। तथापि प्रभु सब भेद लखाय, सु भावत बारह भावन भाय ॥८॥

गीता छन्द–जिम नृत्यकी जमपुर गई तिम सर्ववस्तु विलाय है, जिम हस्त नीर खिरे तथा सब आयु भी गल जाय है। योवन जराकर ग्रसित जानौ वृक्ष छायासम भनो, वेश्या समानी राजलक्ष्मी तिया भव वल्ली गिनो ॥ ९ ॥

जोगीरासा चाल–जो कुछ सुंदर वस्तु जु दीखत तीन भवनके माही, काल अगनकर भस्म होयगी नित्य सु कोई नाही। इन्द्र बडो बुधवान जतन यह कीनो मम हितकारी, कूट जु नाटक मुझ दिखलायो तातै मम बुध धारी ॥ १० ॥ जब तक आयु सु क्षीण न होवे जरा न आवे भारी, ज्ञानमंद नहि होय सु जब तक शीघ्र होउ तपधारी। जगत समस्तहि अथिर जानके रत्नत्रय साधीजे, नित्य मोक्ष सुख आकर लखकर ताइ जतन नित कीजे ॥ ११ ॥ इति अनित्य भावना।

नहि कोई है रक्षक तेरो रोग मृत्यु जब आवै, बन बिच व्याघ्र गहे मृग शिशुको तिसको कौन छुड़ावे। मंत्र तंत्र सब विद्या औषध ये सब विरथा होई, जो कुछ कर्म उदयमैं आवै भुगते ये जिय सोई॥ १२॥ सकल अमर जुत इंद्र जु मिलकर चक्री खेचर सारे, मरते जियको एक क्षणकभी नाहि बचावनहारे। रोग क्लेशमधि पण परमेष्ठी तिनको ध्यान करीजे, जिन उपदेशो धर्म तपादिक तेही शरण गहीजे ॥१३॥ मुझको सरणो जिनदीक्षा शुभ वा निर्वाण बखानो, नित्य सास्वतौ सुखको थानक दुखको नाम न जानो। इस संसार विषैं सुख किंचित मूरखजनको भासे, बुद्धवानको केवल दुखदा दुखको अंश न जासे॥ १४॥ अशरण भावना।

इस जगमें जो सुख मानत है तेही सब दुख पावे, द्रव्य क्षेत्र अरु काल गिनो पण परिवर्तन भव भावे। धी धन ऐसो जान मोह हत जो संसार बढावे, पांचौं इंद्री तस्कर जानो इन बसकर शिव जावे॥ १५॥ संसार भावना।

एकलो पैदा जिय होवे, एकलौ मरत सबै जोवे। एक ही सुखी दुखी होई, निरोगी रोगी हो सोई॥ १६॥ दरिद्री धनी वही थाई, नरक दुख इकलो भुगताई। कुटंबी साथी नहि कोई, किये भुगते जैसे सोई॥ १७॥ एक ही पुन्यादिक करहै, स्वर्ग सुख भोगे आयु भर है। एक जिय रत्नत्रय धरिके, कर्म रिपुको ततक्षिण हरके॥ १८॥ लहे मुक्ती सुखको सोई, समैको बारध है जोई। भावना एकत्व हि जानो, सर्व तज आतम चित सानो॥ १९॥ एकत्व भावना।

जो आतम इस देहतैं जी, भिन्न जु यह साक्षात। तो मरणेको दुख कहाजी, कायसु पर विख्यात सयाने। अब सब ममत्व निवार ॥ २० ॥ माता पिता सब अन्य हैजी, अन सब बांधव जान। भार्या पुत्रादिक सबैनी अन्य सकल पहचान सयाने। अब सब ममत्व निवार ॥ २१ ॥ निज आतम है अपनोजी, तीन जगत बिच जोय। जहां शरीर अपनो नही-जी तहां अपना है कोई सयाने। अब सब ममत्व निवार ॥ २२॥ ऐसो जानकर सब तजोजी कायादिकको नेह, प्रथक प्रथक सबको लखोजी, आतममें चित देय सयाने। अब सब ममत्व निवार ॥ २३ ॥ अन्यत्व भावना।

चाल अहो जगतगुरुकी—सर्व अशुचिकी खान सप्तधातुमय जानो, त्रय जग दुःख निधान तिसमैं क्यों रति ठानो। क्षुधा पिपासा जान रोग अरु कोप गनीजे, येही अग्नि महान तापकर जलत मनीजे ॥ २४ ॥ पांचों इंद्री चोर वसे जहां सर्व अनंगा, शत्रु कषाय रहाय कुटी इम काय कुटंगा। यह वपु जिन पोखाय रोग दुर्गति तिन पाई, जिन तपकर सोखाय सोई सुर शिव सुख थाई ॥ २५ ॥ अशुचि भावना।

छिद्र सहित जो नाव ताहीमें जल आवे, त्यौं त्रययोग चलाव तातैं आश्रव थावे। मिथ्या अव्रत जान अरु कषाय दुखदाई, अरु प्रमाद दुख खान ये पण लख तज भाई ॥ २६॥ आश्रव भावना।

कर्माश्रव रुक जाय सो संवर सुखकारी गुप्त समित अरु

धर्मजीत परीषह भारी। बारह भावन भाव बे वच भेद कहीजे, फुन सत्तावन भेद शास्त्रनतैं लख लीजे ॥ २७ ॥ पांचौ इन्द्री रोक अरु शुभ ध्यान करीजे, स्वर्ग मुक्ति सुखकार सो संवर लख लीजे। इति संवर भावना।

लखो निर्जरा भेद इक सविपाक बखानो, दूजी है अविपाक सुन तिन भेद बखानो ॥ २८ ॥ कर्म जु निज रस देय खिरे सविपाक वही है, सब जीवनके होय सरे कछु काज नहीं है। तप कर कर्म खिपाय सोई अविपाक कहावे, सो मुनवरके होय जासकर शिवथल पावे ॥ ३० ॥ मुक्ति जननि इस जान संवर पूर्वक धारो, नानाविध तप ठान जो सुख है अनिवारो।
इति निर्जरा भावना।

लोक अकृत्रिम जान अधोमध ऊरध भेदा, षट द्रव्यन भरपूर नही तसु होय उछेदा ॥ ३० ॥ नीचे सातौ नर्क तहां बहु विध दुख पावे, पाप उदय तहां जाय सुखको लेश न थावे। मध्यलोक सुख दुख पुन्य पाप फल जानौ, कर्म भोग भू माह मनुष तिर्यंच उपानौं ॥ ३१ ॥ ऊरधलोक मझार स्वर्ग ग्रैवक उपजायो, परकी देख विभूति मनमैं बहु दुख पायो। तिसके ऊपर जान सिद्धसिला सुखदाई, ढाई द्वीप प्रमाण तहां सब सिद्ध बसाई ॥ ३२ ॥ इम सब लोक निहार दुखको सागर जोई, जिन तपकर शिव साध सुख अनंत लह सोई। इति लोक भावना।
भव वारधके बीच भ्रमण कियो अधिकाई, चौपथ रत्न लहाय तिम नरदेही पाई ॥ ३३ ॥ तिसमैं आरजखंड जनम सुकुल

जो पावै, इन्द्रिय पूरण होय आयुवर दीरघ थावैं। ये सब मिलनौ कठिन काकताली सम जानौ, सुननौ जिन सिद्धांत फेर निज सुमति बखानो॥ ३४॥ सम्यकृदर्शन ज्ञान चरण तप चारों येहा, पाये ऐसे जान दरिद्रीकौ निध जेहा। फिर समाधि सुमर्ण अंतहि दुर्लभ पावे, मोहकर्म कर नाश अचल शिव थान लहावे॥३५॥ इतने योग सु पाय फेर परमाद जु करहै, निफल जन्म अरु ज्ञान नहीं संजम जो धरि है। जिस समुद्र गिर जाय रत्न अमोलक कोई, फिर पांछे पछताय रतन प्रापत नहि होई॥ ३६॥ तिम भवसागर माह बोध रतन जिन खोयो, सो भ्रमयो बहु भांति दुखकौं बीज सु बोयो। ऐसे जान बुधवान तज प्रमाद दुखदाई, तप संजममें यत्न करो जासो शिव थाई॥ ३७॥ इति बोधदुर्लभ भावना।

पायता छंद–संसार समुद्रसे तारे, सौ धर्म ग्रहो सुखकारे। इंद्रादिक पदवी होवे, फुन मोक्षतनो सुख जोवे॥ ३८॥ सो उत्तम धर्म गहीजे, ताकौ अब भेद कहीजे। उत्तम जो क्षमा बखानो, मार्दव आर्जव मन आनो॥ ३९॥ फुन सत्य शौच सुखदाई, संयम तप त्याग कहाई। आकिंचन ब्रह्मचर्य जानौं, ऐसे दस भेद लखानौ॥४०॥ इस धर्मतने परभावे, ग्रहदासी-सम लक्ष्मी पावें। फुनि इंद्र चक्रवर्त थाई, तीर्थंकर पद सु लहाई॥ ४१॥ शुभ पुत्र कलत्र जु पावे, भोगोपभोग सु लहावे। जो वस्तु मनोहर देखो, सोई वृष फल तुम पेखो॥ ४२॥ इति धर्म भावना।

इम वृष फल जान सुबुद्धी, उत्तम क्षमादिक कर ऋद्धी। इम भावन बारह भाई, जिनवरके राग उपाई ॥ ४३ ॥ देखो सो विषय फंसानौं बहु काल वृथाहि गमानो। विन तप मूढनवत खोयो, नहि धर्म तरफ मैं जोयो ॥ ४४ ॥ अब ज्ञान पाय क्या कीना, जो मोह शत्रु न हरीना। इम चितवन कर जगनातो, छोड़ो सबसे ही साथो ॥ ४५ ॥

गीता छंद–सौधर्म हरि इम लख अवधि तैं आज प्रभु विरकत भये, तब धनदको आज्ञा करी तुम रचौ गज मन हरखये। इतनेहि लौकांतिक सुरों सब आय प्रभु सिर नाईया, तिन माह भेद जु आठ जानो है वैराग तिने प्रिया ॥ ४६ ॥ सारस्वतादित वह्नि तीजो अरुण नाम सु जानिये, फुनि गर्द तोय तुषित जु षष्टम अव्याबाध बखानिये। सुर अष्टमो जु अरिष्ट जानौ एक भव धर शिव लहे, दीक्षा कल्याणक माह आवे द्वादशांग सु ज्ञान है ॥४७॥ शुभ ध्यान सित लेश्या सबनिके जन्म ब्रह्मचारी सही, ते कल्पवृक्षनके कुसुम कर पूजियो सिर धर मही। वैराग्यवृद्धि सु करणहारी थुति सकल करते भये, प्रभु आपको वैराग लखकर मोह सेना कंपये ॥ ४८ ॥ कोडा जु कोडी अष्टदस सागरथकी वृष लय गये। सो आप ज्ञान उद्योत सेती होयगो अब फिर नये। तुमरो कहा जो मार्ग सुंदर सोई पोत सुहावनो, उसमें सु चढ़करि बहुत भवजिय भवस-मुद्र तर जावनो ॥४९॥ यह मोह अंध सुकूप जानो तासमैं बहु जिय परे, सो सर्व पार लहाय है उपदेश रज्जू कर खरे। अब

जगतको शोधन सुलायक स्वयं बुद्ध तुम हो सही, त्रय ज्ञान जुत तुम जन्म लीनौ इम नियोग यहै कही ॥ ५० ॥

अडिल्ल–इम सुर रिषि थुत ठान सु निज थानक गये, फुन सुर चतुरनिकाय सर्व आवत भये। क्षीरसमुद्र जल लाय सु स्नान कराइयो, माला वस्त्राभरण सबै पहराइयौ ॥ ५१ ॥ तब ही श्री जिनराय भरतको नृप कियो, बाहुबल जुवराज पदीमें थापियो। बाकी और कुमार नगर सबको दिये, सब कुटम्बसे निस्पृह जिन होते भये ॥५२॥ जसु सुदर्शना नाम पालकी है भली, इन्द्र बनाई जास बहुत मन धर रली। मानों दीक्षा तनी प्रतिज्ञा पर चढ़े, इन्द्र हाथको पकड चढ़े प्रभु मन बढ़े ॥ ५३ ॥

नाराच छन्द–सुभूम गोचरी जु राय सप्त पैंड ले चले, खगाधिपा जु सप्त पैंड कंध धारियो भले। पीछे सुरा सुरेस प्रीत धारयौ भले गये, सुरेन्द्र पालकी उठात क्या प्रभुत्व वर्णिये ॥ ५४ ॥ सु पुष्पवृष्टि शीत वायु बर्षते गन्धोदकं, सु मंगलीक गान गात देव लहि प्रमोदकं। महान भेरि बज रही सु मोह गीतकी सही. अनेक देव अग्रनीक हैं सुनंद वृद्ध ही ॥ ५५ ॥ उभय दिशा सुराधिपा चमर करे सु एव ही, सु देव नृत्यकी नचे सबै प्रमोदको गही। सुपद्म हाथमें लिये रमा सुरी चले जहां. दिशाकुमार मंगलाष्ट द्रव्य लेयके तहां ॥ ५६ ॥ इसो उछाह ठानके सु दुन्दभी बजायके, सु श्वेत छत्र सीस धार पालकी बिठायके। प्रभु पुरी सु छोडके गये उद्यानमें सही, प्रजा तने जु सर्व लोक देव मिल कहैं यही ॥ ५७ ॥

छप्पै छन्द–सिद्ध होय तुम काज जगतस्वामी तुम नामी, शिवमारग परकाश करोगे अन्तरजामी। हो तुमरो कल्याण जगतको हित तुम करहो, बाह्याभ्यंतर शत्रु जीत शिव थानक वर हो, जयनंदो विरदो सु तुम तीनलोक तारन तरन। तप कर सु नाश वसुकर्मको करहु वेग असरन सरन॥ ५८॥ प्रभुको लख बन जात तबै सब नारी धाई, मरुदेव्या जो माय तहां बहु रुदन कराई। अग्नि जली जिम बेल होय तिम होय गई है, सब आभूषण छोड शोक दवमाह दही है॥ कंपमान जिम तन सही पडी सु भूम मझार है, मूर्छागत लहती भई विह्वल दुख अपार है॥ ५९॥ मुझ दुरभागनि छोड गये वनमांह प्रभुजी, मुझ जीवन किम होय कहो तुम एम प्रभूजी। शोक युक्त इम वाक्य कहै नृप नारी सारी, कूटें उदर महान करै आरत अधिकारी। यशस्विनीको आदि दे और सुनंदा जानिये, शोक सकल करती भई, तब मंत्री समझानिये॥ ६०॥

गीता छंद–निजनिंद तब ग्रहको गई सब राणियां बुधवान हैं, पुरलोग मंत्री आदि प्रभु पीछे चले गुणखान हैं। सुर पालकी इम ले चले अति दूर नाह नजीक ही, नर सुर सकल दर्शन करत अर वंदते प्रभुको सही॥६१॥ पुर निकट बनमें जायकर बड़तरु तले उतरे सही, तहां पूर्व देवन करी रचना, सुनी धर उर हर्ष ही। एक चंद्रकांत मई सिलापट चंदनादि सुहावनौं, तहां रत्नचूर्ण कियो सची निज कर थकी मन भावनो॥ ६२॥ तिसकौं रचौ सथिया सुभग मंडप रचौ बहु विध तनौं, फुनि

द्रव्य मंगल केतुमाला कर अलंकृत सोहनो। धूपहि सुगंध थकी दसौंदिस भई आमोदित जहां, सब क्षोभ शांत भयो जबै समता सहित बैठे तहां ॥ ६३ ॥ सुख दुःख अरु रिपु मित्र सम गिन पूर्व मुख निवसे सही, चेतन अचेतन बाह्य दस विध परिग्रह तज वेगही। अंतर परिग्रह चतुर्दश मिथ्यात आदिक तज दिये, माला वसन भूषण सकल तज मन बच तन सुध किये ॥ ६४ ॥ सिद्धन तनी कर वंदना पणमुष्टि लुंचे केश ही, पद्मासनी तिष्ठत भये बलवीर्जकी परमित नहीं। पांचों महाव्रत पण सुमति धर पंच इंद्री वस करी, फुनि षट अवस्यक धार करके भूम सोवन चित धरी ६५ ॥ सब वस्त्र त्यागे केश लुंचे स्नान नहि करहै कदा, इकबार दिनमें ले अहार खड़े हुवे प्रभुजी कदा। दांतौन आदिक करै नाही इम अठाइस जानिये, ये मूलगुण धारत भये प्रभु और गुण अधिकानिये ॥ ६६ ॥ शुभ चैत्र कृष्णा नवमि जानौं समय संध्या सोहनो, नक्षत्र उत्राषाढ सुंदर धरो तप मन मोहनो। प्रभु केश लख सुपवित्र हरिने रत्न पटलीमें धरे, सित वस्त्र ढक अति ठान उच्छव क्षीरसागरमें धरे ॥६७॥

पायता छन्द—महतनको आश्रय करई, सो ऊँची पदवी धरई। जिम जिन पूजनतैं जीवा, ऊचौं पद लहे सदीवा ॥६८॥ तिम केश अपावन थाई, प्रभु तन वस महिमा पाई। इम जान सकल भव प्राणी, सतसंग करो सुखदानी ॥ ६९ ॥ फुनि भूपत चार हजारा, कर भक्ति प्रभूकी लारा। केवल द्रव्य लिंगी थाये, वस्त्रादिक सर्व तजाये ॥७०॥ जिनके कच्छादिक

नामा, सब स्वामि धर्मके धामा। तिन दीक्षा रीत न जानी, प्रभु रञ्जनको चित ठानी॥ ७१ ॥

पद्धड़ी छन्द—जब देव सबै मिलकर महान, इस विधसे थुत तुमरी बखान। अन्तर बाहर मल रहत जान, तुम ही जिनवर सब गुण निधान॥७२॥ जो चार ज्ञान संयुत गणेश, सो तुमरे सब गुण ना भणेश। अब हम सरिखे गुण किम उचार, तुम भक्ति सुप्रेरत बारबार॥ ७३ ॥ तातैं कछु कहूं अबै बनाय, तुम ही जिनवर कर हो सहाय। तुम आदि तीर्थकर्ता महान, फुनि आदि धर्म उपदेश दान॥ ७४ ॥ तुम चंचल लक्ष्मी नृप तजाय, तप लक्ष्मीकौं ग्रहके सुभाय। तब वीतरागना कहां रहाय, हमरे जानें लोभी अघाय॥ ७५ ॥ कांताको तन अपवित्र जोय, तज राज तबै वैराग्य होय। मुक्ति स्त्रीसे कीनौ सुराग, तुमको कैसे कहिये विराग॥ ७६ ॥ पाषाण जातके रत्नजेह, तिनसे तुमने तजियो सनेह। सम्यग्दर्शन आदिक महान, ते रत्न ग्रहे किम लोभ ठान॥ ७७ ॥ हेयोपादेय सबै लखाय, जो त्यागन जोग तिसे तजाय। जो ग्रहण योग्य ताको ग्रहाय, समदर्शी पण क्योंकर कहाय॥ ७८ ॥ जो पराधीन तुछ सुख छोड़, स्वाधीन सुखकी तरफ दौड़। तुमको विरक्त क्योंकर कहाय, तुमतौ तृष्णा परणी अघाय॥ ७९ ॥ तुम बाह्य असन सब ही तजाय, स्वातम ध्यानामृतको पिबाय, तुम्हरे प्रोषध व्रत कहां रहाय, यह बात तुमे चहिये सुनाय॥ ८० ॥ तुम अल्प बंधुकौ तजन कीन, सारे जगको बांधव जु चीन। फुन तीन जगत ईश्वर जु थाय, फिर बंधु त्याग क्यों कर कराय॥८१॥

जो कर्मरूप वैरी अघाय, फुनि काम देव इंद्री कषाय। इनको हत करके विजय लीन, किम दयावंत भाखे प्रवीन ॥ ८२ ॥ निधि कल्पवृक्ष चिंतामणादि, ये पर उपकार करे अनादि। तुम निज परके उपकार धार, तुमरी सादृश नहि कौ निहार ॥८३॥

शिखरणी छन्द–नमस्तुभ्यंस्वामी सकल जगके हो गुणनिधी तपश्री धारंता मुकत तियके वांछकि तुमी, स्वकाया रागादि तजन करके स्वं द्रुग चहो। नमस्ते निर्ग्रंथा तप धन जु तात्वं जगपती ॥ ८४ ॥

चौपाई–नमो महात्मा तुमको सार, तुम नवीन दीक्षा ली धार। मोक्ष दीपके सारथवाह, तीनलोकके बन्धव थाय ॥८५॥ परणामादिक थुत बहु करी, सुर गतिकौ फल ले तिह धरी। नाग लोकको जाते भये, हरि तुम गुण चिंतत हर्षये ॥८६॥ भरतराय प्रभु पूजन ठान, भक्ति राग वस नमन करान। जिन बंधुनने दीक्षा लही, तिनकौ तज घर चाले सही ॥८७॥ बाहुबलि आदिक जो भ्रात, और बंधु जुत निजपुर आत। ऐसे त्रिजगतगुरु गुणगणखान, कर्म अरि विध्वंशक जान ॥८८॥

सवैया–जेष्ट गुणाकर जेष्ट जिनेश्वर जेष्ट महंत सु नाम कहाये, तो सम जेष्ट नही कोई और जु मारग मोक्ष तनौ बतलाये। वांछित दायक जेष्ट तुमी तुमरो जस उज्वल देवनि गाये, मैं मन धारत जेष्ट तुमे दिनरात हमें अब जेष्ट कराये ॥८९॥

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीवृषभनाथचरित्रे

आदिनाथदीक्षाकल्याणकनाम दशमः सर्गः।

अथ ग्यारह सर्ग।

दोहा—आदि तीर्थ कर्तार है, आपहि दीक्षा लेय। मोक्षमार्गके अग्रणी, बंदौ निज गुण देय ॥ १ ॥

पद्धड़ी छन्द—अब देव धरो षट् मास जोग, अनसन तप धारौ अति मनोग। जो सिला पद अति कठिन जान, तिस ऊपर ठाडे धरे ध्यान ॥ २ ॥ चत्र अंगुल पद अन्तर सु धार, थिर वज्र जेम तन देह डार। मन वचन काय निज शुद्ध ठान, भगवतने इम धारौ सु ध्यान ॥ ३ ॥ निज आतममे रत एम थाय, अरु दोनों भुज दीनी लुबाव। निष्कंप सुमेर समान जान, प्रभु कायोत्सर्ग धरो महान ॥ ४ ॥ बाह्याभ्यंतर शुधिके प्रभाव, मन पर्यय ज्ञान तुरत लहाव। तिस ग्यान थकी सूक्ष्म जु वस्त्त, ते जानत भये प्रभु समस्त ॥ ५ ॥ बाईस परिषह उदय आय, तिन सबको जीतत धीर्य लाय। इम प्रभु तो नाशा दृष्टि ठान, अब और मुनौंको सुन बखान ॥ ६ ॥ सब क्षुधा तृषा पीड़ित जु होय, सबके अंग सूक गये बहोय। द्वय मास कष्टसे इम बिताय, आपस माही तब इम कहाय ॥ ७ ॥ प्रभुकौ धीरज देखो महान, थिरता उपमा कर रहत जान। जंघा बल साहस अपर जोय, गिरराज समानो अचल होय ॥८॥ ये तीन जगतको राज छोर, इस बनमैं किम कर है बहोर। कितनेक दिवस यहां थिर रहाय, ये बात न निश्चै होत माय॥९॥ अब क्षुधा तृषा आदिक महान, हमको जो होवे दुख दान।

तिन सहते हम समरथ जु नाह, तातैं कंदमूल सबै जु खाह ॥ १० ॥ जब तक जग गुरु हैं ध्यान लीन, प्राणन रक्षा कर है प्रवीन । इनकी बराबरी करे जोय, तो प्राण हमारे जाय सोय ॥ ११ ॥ इनको तजकर निज घरसु जाय, तौ भरत हमें निग्रह कराय । जबतक प्रभु पूरण योग माय, तबतक इन निकट रहो सदाय ॥ १२ ॥ सुख होवे चाहे दुख होय, प्रभुकौं त्यागेंगे नाह सोय । कितने दिन अरु बीते सु माय, क्षुधा त्रषा अगन-कर विकल थाय ॥ १३ ॥ केई गुरसे पूछन कराय, केई नमस्कार करके सुजाय । बन बीच जाय इच्छाप्रमाण, सो खात भये फल अत अज्ञान ॥१४॥ तिन नग्ननकौ बनफल जु खात, तब बन सुर लखकर इम कहात । रे जड़ तुम सब सुन चित लगाय, ये भेष जगतकर पूज्य थाय ॥ १५ ॥ तीर्थंकर चक्री आदि जोय, वे ग्रहण करैं इह लिंग सोय । कायर जन नहि धारण कराय, तुम ऐसे कुकरम करो नाह ॥ १६ ॥ जो जीवनकी हिंसा करेय, सौ नर्क सातमो शीघ्र लेय । जो है ग्रहस्थ अघ कर्म ठान, सो मुनपद धारण तैह तान ॥ १७ ॥ जो मुनि ह्वैकर अघ करत कोय, सो वज्रलेपवत् जान लोय । तातै जिनमुद्रा तज करंत, तुम और भेख अब ही गहंत ॥१८॥ नातर सबकौ मारूं सु एम, इम बच सुनकर भय धार तेम । नानाविध भेषनकौं ग्रहाय, करनो नाकरनो नहि लखाय ॥१९॥

पायता छंद—केई बक्कल धार अज्ञानी, केई कोपीन धरानी । केई जटाधरी अति भारी, केई तीक्षण शस्त्र सु धारी ॥ २० ॥

केई परिव्राजक थाये, पाखंडि कुमारग धाये। ते फूल फलनको खावे, वृषभेश चरणको ध्यावें ॥ २१ ॥ जिनराज पौत्र जो थाई, मारीच सु नाम कहाई। सन्यासी मत तिन धारो, मिथ्यात्व कियो विस्तारो ॥ २२ ॥ तिन योगशास्त्र सु बनायो, कांपिल्य नाम तसु गायो। तिसकर बहु जीव ठगाये, द्रगज्ञान परान्मुख थाये ॥ २३ ॥ इम हुवे सुभ्रष्टाचारी, अब सुन प्रभुकी विध सारी। निष्कंप मेरुवत जाने, अक्षोभ समुद्र समाने ॥ २४ ॥ निःसंग वायुवत स्वामी, निर्मल जलवत अभिरामी। पृथ्वीसम क्षमा धरंते। अति दीप्तवान भगवंते ॥ २५ ॥ मस्तकपर केश जु सोहै, मनु ध्यान अग्निकर जो है। अघ भस्म भयो दुखदाई, ताकी मानु धूम उड़ाई ॥ २६ ॥ तिन योग महात्म बसाये, फल फूल सबै उपजाये। सब ऋतुके वृक्ष फलाई, मुन नमन करे सिर नाई ॥ २७ ॥ हरि व्याघ्र मृगादिक प्राणी, फणपत अरु नकुल बखानी। सब साम्यभाव उपजाये, निज जात विरोध नसाये ॥ २८ ॥ अहि व्याघ्र सिंह मृग जे हैं, नमकर सुभक्ति करे हैं। बन हस्ती कमल चढ़ावे, फुनि जिनवरको सिर नावें ॥ २९ ॥ नमि विनमि सुरराज कुमारा, कछ महा-कछ सुत सारा। ते आय नये सिरसेती, प्रभु चरणांबुज हित हेती ॥ ३० ॥ द्वय हाथ जोड़ सुखदाई, जिनवरसे अर्ज कराई। तुम सबको राज्य सु दीना, फुन हमको किम बिनरीना ॥ ३१ ॥ अब कृपा करो तुम स्वामी, कोई देश देहु जगनामी। दोनों पसवाड़े ठाड़े, अति सेव करें मन बाढे ॥ ३२ ॥ प्रभु ध्यान

महात्म बताई, धर्णेंद्रासन कंपाई । तिन अवधज्ञान कर जाना, उपसर्ग भयो भगवाना ॥ ३३ ॥ पृथ्वीको भेद तबै ही, जिन निकट सु आय जबै ही । गिर मेरु समानो धीरा, ध्यानामृत पी बन वीरा ॥३४॥ ऐसे जिन देखनमाई, थुत भक्ति करत उमगाई। तब वृद्ध सुभेष धरायो, उन कुमरनकौं समझायो ॥ ३५ ॥ तुम तरुण अवस्था मांही, मांगौ सब लाज गमाही । प्रभुने सब रिद्ध तजाई, निज आतमसौं लवलाई ॥ ३६ ॥ तुम भरतरायपे जावो, उनसे मनवांछित पावो । इन इन्द्रियको बस कीनों, बनवासी ह्वै तप लीनों ॥३७॥ मांगत है उस नरसेती, जो भोगे भोग हितहे ती । तुम मूरखता इम गहोहो, आकाश पुष्प किम लहोहो ॥ ३८ ॥

चौपाई—इम सुनकर ते राजकुमार, वृद्ध प्रतेंद्र इम बचन उचार । लोकविषैं यह कहते सार । वृद्धपने नहि बुद्ध लगार ॥ ३९ ॥ दो जन बातें करते होय, तीजौ बोले मूरख सोय । फलदा कल्पद्रुम हि बिहाय, और वृक्ष सेवे क्यों जाय ॥ ४० ॥ अन्तर भर्तरु प्रभुमे इतौ, गो पद अरु सागरमें जितौ । जिम चातक घनसे तृसाय, नदियनसे नही तृषा बुझाय ॥ ४१ ॥ अहो वृद्ध तुम समझौ यही, हम तौ प्रभुसे लेंगे सही । फणपत इम सुनकर मुद भयो, दिव्य रूप निज दिखलाइयो ॥ ४२ ॥ मुझकौं तुम धरणेन्द्र सु जान, भगवत भक्ति थकी इत आन । जिनवरने जब दीक्षा लीन, तब मुझसे सब ही कह दीन ॥४३॥ तातैं करूँ तुमे भूनाथ, चलो अबै तुम मेरी साथ । इम सुनकर

वह हर्षित भये, फिर फणपतसे इम पूछये ॥ ४४ ॥ सत्य कहौ अहिपत तुम येह, प्रभुने कहो कि नाही तेह। प्रभु आज्ञा बिन लेह न राज, सर्व संपदा हम किह काज ॥ ४५ ॥ असुरपतीने तब इम चयो, प्रभूने मुझसे सब कह दियो। फुन तीनों जिनवरकों नये, बैठ विमान सु चलते भये ॥ ४६ ॥ विजया- रधकों देखौ जबै, नागराज शोभा कह तबै। राजकुमार इम महिमा सबै, पश्चिम योजन उन्मत कबै ॥ ४७ ॥ चौथाई भू माह बखान, नव सिरकूट महा दुतवान। पृथ्वीमें चौड़ाई जान, पंचस योजन है जु महान ॥ ४८ ॥ पूर्वकूट मध्य है जिन धाम, सोभा वरनी जाय न ताम। पृथ्वीसे दश योजन जाय, विद्याधर द्वै श्रेणी थाय ॥ ४९ ॥ तहां इकसौं दस नगरी जान, तिन विस्तार सुनौं मन ठान। नव योजन पूर्वापर कही, द्वादश दक्षण उत्तर गही ॥ ५० ॥ नगरी छोटे जोजन जान, पर्वत योजन दीर्घ बखान। चतुपथ एक सहस मन धार, गलियां बारह सहस विचार ॥ ५१ ॥ एक हजार द्वार है जहां, पणसत खिड़की अति सुख लहा। तीन खातका जलकर भरे, ऊँचौ कोट ध्वजा फरहरे ॥ ५२ ॥ केतु हाथ कर पुर सुखदाय, देवनकों सु बुलावत भाय। दक्षिण श्रेणी नगर पचास, उत्तर साठ जान सुखरास ॥ ५३ ॥ पूर्वापर समुद्र तक कहो, दक्षण उत्तर तीस जु रहो। खेचर जहां रहे सुख पाय, मुनि चारण जु बिहार कराय ॥ ५४ ॥ योजन दस ऊपर जाइये, तहां द्वै श्रेणी अरु भाइये। दस दस योजनको

विस्तार, बिंतर देव वसे तहां सार ॥ ५५ ॥ दस योजन चौड़ो तहां जान, ताके ऊपर कूट महान। स्वर्ग लक्ष तज देव सु आय, रमहैं तिसकौं किम वर्णाय ॥ ५६ ॥ इम बरनन कर फुन नागेस, पुरमाही कीनो परवेश। चक्र बाल रथनूपुर दोय, राजधानि यह दीनी सोय ॥ ५७ ॥ दक्षण श्रेणीको नमिराय, उत्तर श्रेणी विनम बताय। सिहांसनपर इन थापियौ, फुन अभिषेक सु इनकौ कियौ ॥ ५८ ॥ इकसौ दस नगरीकौ राज, देकर अहिपत गयो सु साज। विद्याधरियोंके संग भोग, भोगत भये पुन्य संजोग ॥ ५९ ॥ देखो कित जिनवर बिन राग, कित धरणिंद्र सु आगम सार। किम विजयारध राज लहाय, सब सामग्री दुल्लभ थाय ॥ ६० ॥ इसमैं कोई अचंभो नाह, पुन्य उदयकर सब सुख पांह। सुन्दर भूषण वस्त्र मनोग, स्वर्ग थान सम भोगे भोग ॥ ६१ ॥ प्रभुकौ योग सु पूरण भयौ, षट् महिने जो धारण कियो। धर्मशुक्ल शुभ ध्यान कराय, तत्व चिंतवन करत सुभाय ॥ ६२ ॥ प्रभु धीरज वैसो ही थाय, क्षुधा त्रसाकर नाह चलाय। तौ फुन मार्ग चलावन काज, असन निमित्त उद्यम करताज ॥ ६३ ॥ पुर ग्रामादिकमैं जित जाय, तहां ही सब जन नमन कराय। के इक लावे रतन जु सार, बाहन वस्त्र बहुत परकार ॥ ६४ ॥ केइक भोजन थार भराय, लाकर प्रभुकी भेट कराय। इम छह महिना और जु भये, मौन सहित प्रभु भ्रमते रहे ॥ ६५ ॥ एक बरस न अहार कराय, तौ भी धीरज अधिक धराय।

बहु देशनमैं करत विहार, कुर जांगल शुभ देश सु सार ॥६६॥ तामध्य हस्तनामपुर जान, ता बनमैं आये अपराह्न। निस माही योगासन दियो, बपुको नेह सबै त्यागियो ॥ ६७ ॥ तिसपुरको राजा धीमान्, कुर बंसिनमैं भानु समान। सोमप्रभु तिस नाम सु जान, पुन्य कर्मकर्ता गुणखान ॥ ६८ ॥

गीता छन्द- धनदेव चर प्रथमहि कहौ, सर्वार्थसिद्धि सिद्ध हिमें गयौ। तहांतैं सुचय श्रेयांस नामा सोमप्रभू भाई थयौ ॥ सो रात्रि पश्चिमके विषैं सुपने इसे देखत भयौ। निज गृह विषैं परवेश करतौ मेरु पर्वत लखलयौ ॥ ६९ ॥ फुन कल्पवृक्ष लखो जु शांखा भूषणनकर सहित हैं। फुनि सिंघ वृषभ जु चन्द्र सूरज समुद कल्लोले सहैं ॥ व्यंतर निहार, जु अष्ट मंगल द्रव्य भी देखत भयो। इम स्वप्न लेख श्रेयांसराजा श्रेयकर जागत भयो ॥ ७० ॥ हर्षाय मनसु राय उठकर जेष्ट भ्रातासे कहो, नृपने पुरोहितसे जु पूछौ सो जु इम कहतौ भयौ। तुम मेरु देखौ जा थकी जो स्वर्णगिर समधी रहैं, जिस मेरु पर अभिषेक हुवो आय वह तुम तीरहै ॥ ७१ ॥ फिर कल्पवृक्षादिक सुपन जो देखियो तुमने सही, ये उन महातमको जू सूचे जो पुरुष आवे यही। जिनकी जगत विख्यात कीरत सकल गुण धारक वही। इम सुन नृपत अति मुदित होकर ध्यान प्रभुको करतही ॥ ७२ ॥

चाल विजयानी सेठकी—अब जिनवर जीतन थितके कारण सही कियो गमन सु जी, चार हस्त लखके मही मध्यान्ह सु

जी सुत वैराग संवेगही। हथनापुरजी तिन देखत जियपुर वही ॥ ७३ ॥ कोलाहल जी होत भयो प्रथ्वी विषैं, केई नर जी तास कथाको ही अखै, केई नमत सु जी। भक्ति सहित सज्जन सबै प्रभु चलत सु जी, निरखत मारगको तबै ॥७४॥ नहि शीघ्र सुजी, नीति विलंब लगावते। धनपतग्रहजी, दारिद्री सम भावते राजाग्रहजी, पहुंचे आरम चितारके। सिद्धार्थ सुजी, द्वारपाल मुद धारके ॥ ७५ ॥ नृपसे ती जी जाय अरज कीनी सही, जुग भ्राताजी बैठे थे सुखकी मही। तुम पुनतैं जी श्री जिनवर आये यहां, तिस बच सुनजी, मोद अधिक सब जन लहा ॥७६॥ अन्त पुरजी लेय संग नरपैत गयो गुर सन्मुखजी, भक्तिसहित निज सर नयो फुन अस्तुतजी। करत भयो प्रभूकी तहां शिव चाहतजी, सो भावि तुम सरणौं लहा ॥ ७७ ॥ नृप ततक्षिण ही रूप जिनेश्वर लखनबै, पहलो भवजी। श्रीमति आदिक लखतबै सब जानसुजी। दानतनी विध पूर्व ही तिष्ट तिष्ट सुजी, अन्न सुजल शुद्धि है सही ॥ ७८ ॥ उच्च स्थलजी, बैठायो पग धोइयो, सिरसे नमजी, पूज करी मन शुद्ध कियो। बच काय सुजी, दान वस्तु शुध थाय ही। इम नवधाजी, भक्तिथकी नृप पुन लही ॥ ७९ ॥

चौपाई—श्रद्धा शक्ति भक्ति विज्ञान, त्याग क्षिमा अलुबधता जान, दाता तणे सप्त गुण एम। सो नरपति धारे करि प्रेम ॥ ८० ॥ पोततुल्य ये पात्र महान, सबके हितकारक पहचान। लख उत्कृष्ट जिनेश्वर सही, निधवत दुर्लभ मानी

तही ॥ ८१ ॥ प्राशुक दोष रहित आहार, इक्षु जु रस दीयो सुखकार। सोमप्रभ लक्ष्मीमति नार, अरु श्रेयांस भ्राता मनहार ॥ ८२ ॥ इन सब मिलकर दीनो दान, तीज शुक्ल वैसाख पिछान। तास पुण्यतैं सुरगण आय, पंचाश्चर्य किये सुखदाय ॥ ८३ ॥ अब तिनको सुन भेद महान, मणिधारा नभसे वर्षान। पुष्पवृष्टि तरु कल्पसु करें, गंधोदक वर्षा अनुसरें ॥ ८४ ॥ मंद सुगंध पवन शुभ बहे, दाता पात्र धन्य इम कहे। तास दान अनुमोद बसाय, बहु विध पुन्य लोक उपजाय ॥ ८५ ॥ केई रत्नन चूर्ण कराय, ग्रह आंगनमें चौक पुराय। पात्रदानको फल साक्षात, लखकर दान सुयत्न करात ॥ ८६ ॥ और दान फल सुन सुखदाय, भोगभूमि स्वर्गादिक जाय। रागद्वेषको कर परहार, पाणिपात्र जो लेय अहार ॥ ८७ ॥ धर्म सिद्धके हेत बखान, काय स्थितके कारण जान। इम भगवान असन ले सोय, जात भये बनको तब जोय ॥ ८८ ॥ ध्यानाध्ययन सु करते भये, विरकत भाव सुनत वर्धये। नृप श्रेयांस लहो आनंद, निज कृतार्थता लख सुख कंद ॥ ८९ ॥ दान तनी महिमा बहु भई, लोकत्रयमें फली सही। भरतादिक नृप अचरज धार, तासु मिलने आये सार ॥ ९० ॥ कहत भये बहु थुत इम सही, दान तीर्थकर्ता है तुही। भगवत तौ मौनी अधिकाय, तुम तिन भेद सु क्यों कर पाय ॥ ९१ ॥ तुम सुदान विध कहां देखियो, भरतरायने इम पूछियो। तब श्रेयांस नृप कहते भये, हम निज पूरब भव लख लये ॥ ९२ ॥ पूर्व विदेह जाय सुख

खान, वज्रजंघ राजा गुणथान। सोभावान जीव तुम जान, मै श्रीमती नार तसु मान ॥ ९३ ॥ चक्रवर्तिकी पुत्री कही, तहां चारणमुनि पेखे सही, मुनि निज परहितकारक सार। हम दोनौ तिन दियौ अहार ॥ ९४ ॥ दानतनी जो विध सुखदाय, प्रभु देखत हम याद लहाय। सुन नृपराज कहूं मैं सोय, दान रीत तसु फल अब लोय ॥ ९५ ॥ निज परकौ हितकारक जोय, दयाहेत दीजे मुद होय। तास भेद हैं चार प्रकार, औषध ज्ञान अभय आहार ॥ ९६ ॥ अन्नदानसे लक्ष्मी पाय, भोगभूम स्वर्गादिक थाय। औषध दानसे रोग न लहे, सुन्दर काय सदा ही रहे ॥ ९७ ॥ ज्ञानदानसे सब श्रुत जान, अनुक्रम पावे केवलज्ञान। दान वसतिकाको जो करे, ऊंचे महलनको सो वरे ॥ ९८ ॥ यह गृहस्थ शुभ दान पसाय, दोनौ लोक विषय सुख पाय। जो नर कबहू दान न देय, पत्थर नाव समान गिनेय ॥ ९९ ॥ अब सुन तीन पात्र व्याख्यान, जिमश्री जिनवरने सु कहान। सकल परिग्रह रहित जु होय, रत्नत्रय तप संयुत सोय ॥ १०० ॥ हेम और पाषाण समान, लाभ अलाभ विषैं सम जान। सकल भव्य हितकारक लसे, जीत कषाया इंद्री कसे ॥ १०१ ॥ ऐसे उत्तम पात्र जु कहे, मुनी दिगम्बर ते सरदहे। जिन श्रावकको शुद्ध आचार, दर्शन ज्ञान अणुव्रत धार ॥ १०२ ॥ भगवत भक्ति हृदयमैं धरे, ते मध्यम पात्रहि अनुसरे। जो समदृष्टि व्रत कर हीन, जिनवर भक्ति सदा चित लीन ॥ १०३ ॥ गुरु निर्ग्रन्थ तनी कर सेव,

तेही पात्र जघन्य कहेव। अब कुपात्रको वर्णन सुनौ, जैसो जिन शासनमें मनो ॥ १०४ ॥

दोहा—सम्यग्दर्शन कर रहित, व्रत जिन भाषित ठान। उत्तम मध्यम जघन त्रय, भेद कुपात्र वखान ॥ १०५ ॥ जिन वचकी सरधा नहीं, व्रत धारे न लगार। शील रहित जे जग विषैं, सो अपात्र निरधार ॥ १०६ ॥

पद्धड़ी छन्द—सो दान कुपात्रहिके प्रमाय, कुत्सित जु भोग भूकौ लहाय। कुल नीच होय लक्ष्मी लहाय, अब भेद अपात्रनकौ सुनाय ॥ १०७ ॥ जिम नेक खटाईके प्रमाय, मन मोदन दुग्ध सबै फटाय। तैसे अपात्रको करे दान, सो दाता दुख पावे महान ॥ १०८ ॥ जिम मेघ तनौ जल भूमि माह, पडते ही नाना स्वाद थाइ। जो इक्षु स्वाद मीठो लहाय, अरु नीब माह कडवो बताय ॥ १०९ ॥ तैसे ही पात्र कुपात्र जान, तसु दान सुविध फलकी फलान। इम जान कुपात्रादिक तजाय, विध पूर्वक दान सुपात्र द्याय ॥ ११० ॥

चौपाई—इम वाणी सुनकर भरतेश, दान भावना धार विशेष। श्री श्रेयांसकी थुति बहु करी, निजपुर जात भयो मुद धरी ॥ १११ ॥ अब प्रभु तप संजम बहु भाय, रक्षा करे जीव षटकाय। मन वच काय करे शुद्ध सोय, प्रथम महाव्रत धारक होय ॥ ११२ ॥ सब व्रत तनौ मूल यह कहो, नाम अहिंसा तसु सरदहो। मौन सहित जिनवर है सदा, द्वितीय सत्य व्रत उत्तम बदा ॥ ११३ ॥ किसी वस्तुकी इच्छा नाह, तातैं चोरी

रहित कहाय। कायादिकसे विरकत जोय, उत्तम ब्रह्मचर्य जो होय ॥ ११४ ॥ द्रव्यादिककौ ममत नसाय, तातैं परिग्रह त्याग कहाय। ऐसे पंच महाव्रत कहे, पंच पंच भावन सरदहे ॥ ११५ ॥ इन विरतनकी रक्षा काज, तिनको वर्णन सुनो जो आज। वचन गुप्ति मन गुप्ति सुजान, ईर्यासमित तृतिय पहचान ॥ ११६ ॥ अरु आदान निक्षेपण सही, भोजन पान दृष्ट लख गही। ये पण भावन नित्य विचार, व्रत अहिंसाकी सुखकार ॥ ११७ ॥ क्रोध लोभ भयको कर त्याग, हास्य विषैं भी तज अनुराग। सूत्र विरुद्ध वचनकौ तजो, पण भावन सत्य व्रतकी भजो ॥ ११८ ॥ सूना घर विमोचना वास, जहां कोई रोके रहे न तास। भिक्षाकी जु शुद्धता धरे, धरमीसौं नहि वाद जु करे ॥ ११९ ॥ ये अचौर्य व्रतकी भावना, पाले सो पावे सुख घना। नारी राग कथा न सुनाय, तास रूप रुचकर न लखाय ॥ १२० ॥ पहले नाना भोग भुगाय, तिनकौ अब नहि याद कराय। बलकारी भोजन नहीं खाय, निज तनकौं संस्कार न थाय ॥ १२१ ॥ ब्रह्मचर्यकी इम भावना, पंच पाल मन सुख पावना। पंचइंद्रीके विषय जु कहे, जो मनोग्य अमनोग्य सु लहे ॥ १२२ ॥ बाह्याभ्यंतर परिग्रह जान, वस्तु सचित्ताचित्त बखान। इनमैं राग द्वेष कर त्याग, पंच भावना धर वड़ भाग ॥ १२३ ॥

सोरठा—भावन ये पच्चीस, पंचव्रतनकी जानिये। ते पालत जगदीश भाव विशुद्ध बढ़ायके ॥ १२४ ॥ ईर्या समित धराय

वन अथवा पर्वत विषैं। जहां रवि अस्त जु थाय, तहां प्रभु तिष्टे सिहवत ॥१२५॥ भाषा समित महान, मौन धरे जिनवर सदा सुमति एषणावान। उपवासादिक बहु करै ॥ १२६ ॥ सुमति जु चौथी जान सो आदान निक्षेप है, सो महान गुण-खान धरे उठावे देखके ॥ १२७॥ प्रतिष्ठापना नाम, सुमति पंचमी जानियो मल मूत्रको काम। जीव रहित भूविच करे ॥१२८॥

भुजंगी छंद–मनोगुप्त पाले सदा आत्म ध्यावे, वचनगुप्ति धारे सुमौनी सदा वे। गहे कायगुप्ति सुव्युत्सर्ग धारे, सु तेरह प्रकारं चरित्रं संभारे ॥ १२९ ॥ जु सामायिकं भी करे तीन कालं, सरव जीवपै धार समता विशालम्। रहे निःप्रमादी नहीं कोई दोषा, सुछेदोपथापन नहीं होय पोखा ॥ १३० ॥ विशुद्धी जु परिहार तीनो चरित्रा, जु सूक्षम कषायें सु चौथी पवित्रा। यथाख्यात चारित्र पंचम सुजानौ, सुक्षायक दरस ग्यान युक्ता प्रमाणौ ॥ १३१ ॥ प्रभु द्वादशं भेद तपको कराई, करमहान कारन सुथिरता धराई। वरष एक ताई तथा छै महीना, करे व्रत उत्तम रहे ध्यान लीना ॥१३२॥ सु बत्तीस ग्रासा पुरुषके कहे हैं, सु ले पूर्ण नाही सुकमती गहे हैं। तथा एक दो ग्रास लेवे जिनेशा, ऊनोदरं तप करे ये हमेशा ॥ १३३ ॥ करें अटपटी आखड़ी स्वामि ऐसी, मिले आज बनमें तथा रीति वैसी। रजतके जु वर्तन दरिद्रीके घरमें, जु हो खीर खांडादि भोजन सुकरमें ॥ १३४ ॥ तथा एक घरमाह ही आज जावै, मिले नाहि भोजन तो बनको सिधावै। तथा

राय घर होय कोद्रूको भोजन, तबै हम सुलें होय मिट्टीके बरतन ॥ १३५ ॥ यहे व्रत परिसंख्यान नामा धरावे, परित्याग रसकों सुनित ही करावे। जु पंचाक्ष शत्रूनको नाश करै हैं, सु आचाम्ल बर्धन तपो रीतिधरै है ॥१३६॥ सु पर्वत गुफा बन विषै ध्यान धरंतें, विविक्त शयनासनं तप विविक्त कर्तें। सदा शीत ग्रीष्म जु वर्षादि माही, परीषह सहते जु द्वाविंश ताही ॥ १३७ ॥ तप काय क्लेशं सदा ही करंते, सुबाहिज तपाषट विधी इम धरंते। तपाभ्यन्तरा षट सुकर्तें सदा ही, सुनो भेद ताको सुह्वैके मुदा ही ॥ १३८ ॥

सुन्दरी छन्द–तप सु प्रायश्चितकी विध है यही, होय दोष तबै लेवे सही। निरतिचार प्रभू रहते सदा, प्रथम तप इम करते हैं मुदा ॥ १३९ ॥ दर्शन ज्ञान चरित्र बखानिये, फुनि सु इनके धारक जानिये। विनय भेद कहे इम चार हैं, जगत-गुरु किम विनय सुधार हैं ॥१४०॥ तप सुतीजो वैयावृत कहो, धरम मार्ग चलावन इन गहो। जगत जेष्ट प्रभु सुखदाय है, काहि वैय्यावृत्य कराय है ॥ १४१ ॥ चतुर ज्ञान धरे प्रभुजी सही, जगत वस्तु सुजानत शुद्ध लही। अंग पूर्वादिक सब जानते. मन सुरोक वचन बखानते ॥ १४२ ॥ ममत देह तनो सब त्यागके, मेरु सम थिरता चित पागके। तप सु कायोत्सर्ग करे महा, दो घड़ी षटमास तनो कहा ॥ १४३ ॥ ध्यान तपके चार सुभेद हैं, आर्तरौद्र प्रभूने त्याग हैं। धर्म ध्यान सु चार प्रकार हैं, जास धारवे हों भवपार हैं ॥१४४॥

विचय आज्ञा प्रथम सु जानिये, अरु अपाय विपाक बखानिये। विचय संस्थान जु चौथो कहो, धर्म शुक्ल प्रभु ध्यावत रहो ॥ १४५ ॥ तप सु द्वादश इम करते भये, सहस वर्ष इस विध सो गये। बन तथा ग्रामादिकके नखे कर विहार सुपुर अटवी विषै ॥ १४६ ॥ सिथल कर्म किये प्रभु ध्यानतैं जीत इंद्री धीरजवानतैं। नहि प्रमाद धरे चितमें कदा, सकल भय वर्जित नित है मुदा ॥ १४७ ॥ पुरमिताल तने बन आइयो, बट सु वृक्ष तले थिर ताइयो। पूर्व मुख सिल ऊपर होयके, पदम आसन धर अघ खोयके ॥ १४८ ॥ करम रिपुको जीतन उमगियौ, ध्यान सिद्धनकौ प्रभुजी कियौ। अष्टगुन तिनके मन ध्यावते, भावना शुभ द्वादश भावते ॥ १४९ ॥ जो वैराग्य तनी जननी कही, फुनि संवेग सुधर्मक्षमा दही। भेद दस तिसके मनमैं गहे, धरम ध्यान धरे चव भेद हैं ॥ १५० ॥

चौपाई—अनंतानुबंधीकी चार, सो कषाय दुर्जय अधिकार। अर मिथ्यात्व मोहनी जान, मिथ्या सम्यग् द्वितिय बखान ॥१५१॥ अरु सम्यक्त मोहनी कही, नर्क तिर्यगायु लख सही। देव आयु इम दस ये भई, इन सबको प्रभु उछेदई ॥ १५२ ॥ चौथेसे सप्तम गुणथान, मध इन प्रकृतनको करि हान। क्षपक श्रेणीपर चढ़कै सार, रत्नत्रय आयुध करधार ॥ १५३ ॥ नवम गुणस्थानकमें जेह, नाश करी प्रकटे सुन तेह। स्थान ग्रद्धि निद्रा दुखदाय, प्रचला प्रचला द्वितिय बताय ॥ १५४ ॥ निद्रा निद्रा तीजी जान, नर्कगती तिर्यंच बखान। एकेन्द्री

द्वैइन्द्री जोय, तेइन्द्री चौइन्द्री सोय ॥ १५५ ॥ तिर्यग नर्क सु दोनौ येह, इन गत्यानुपूरवी तेह । थावर अरु उद्योत जु कही, सूक्षम साधारण सरदही ॥ १५६ ॥ अरु आताप हनी जगदीश, इस विध सोलह प्रकृति भणीस। प्रथम भागमे ये प्रभु हनी, ध्यान शुकल असि ले ततखिनी ॥१५७॥ चार अप्रत्याख्यान कषाय, प्रत्याख्यानी चव दुखदाय। दुतिय भागमें इनकौ हान, नार नपुंसक तीजे जान ॥ १५८ ॥ चौथे षट्हास्यादि कषाय, पंचममें यूं वेदत जाय। क्रोध संज्वलन षष्टम नाश, सप्तम भाग मानजु विनाश ॥१५९॥ भागाष्टं माया तज दीन, इम छत्तीस प्रकृत क्षय कीन। नवमें गुणस्थानके माय, मोह अरी हतके सोभाय ॥१६०॥ सूक्षम सांपराय जो नाम, गुणस्थान दशमो अभिराम। तामधि सूक्षम लोभ खिपाय, चारित संगर भूप रचाय ॥ १६१ ॥ सील सुभाव धार जिन लियो, द्वादश तप सुधनुष धारियौ। रत्नत्रय रूपी ले बाण, गुणव्रतकी सेना सुभ ठान ॥ १६२ ॥ मोह अरीकी जो संतान, बलकर छेदन करी महान। क्षीण कषाय नाम गुणस्थान, तामध नाश करी इम जान ॥ १६३ ॥ निद्रा प्रचला दोनों सही, दुतीय शुकल बह्नि सोदही। ज्ञानावर्णी पंच प्रकार, तिनको नाश कियो तत्काल ॥१६४॥ चक्षु अचक्षु आवरण दोय, सर्वावधि केवल चव होय। चारों दर्शनावर्णी येह, इनको नाश कियो प्रभु तेह ॥१६५॥ अंतरायकी पांच सु कही, इम षोडश प्रकृती हन सही। द्वादशमें गुणथान मझार, द्वितिय शुक्ल बलसो निर्धार ॥१६६॥ सात तीन

अरु छत्तीस जान, एक और सोलह पहचान। इम त्रेसठ प्रकृतनकौ नाश, करके पायौ ज्ञान प्रकाश ॥ ६७॥ लोकालोक सकल प्रभु लखो, केवल ज्ञान थकी सब अखौ। फाल्गुणकी सितपक्ष उदार, एकादशि दिन तिथि मनहार॥१६८॥ उतराषाढ नक्षत्र जु सही, सकल अर्थकौ भेद जु कही। ज्ञान अनंतो दर्शन जान, बीरजभी सु अनंतो मान ॥ १६९॥ क्षायक समकित जानौ सार, यथाख्यात चारितको धार। दान लाभ सु अनंतो थाय, भोगोपभोग अनंत सुपाय ॥१७०॥ इन नव केवल लब्धि लहाय, चवविध सुर आसन कंपाय। क्षोभ भयो दिवमें अधिकाय, जानौ प्रभु केवल उपजाय ॥१७१॥ ध्यान खड्ग कर जिनवर गही, घाति कर्म रिपु नाशे सही। गुणगणके समुद्र प्रभु सोय, नमूं सुगुण मुझ प्रापत होय ॥ १७२ ॥

बसन्ततिलका छन्द—जे भव्य जीव प्रभु भक्ति करे तिहारी, तेही लहे तुव दिये वर सौख्य भारी। मैं तो अनाथ यह दुष्ट जु कर्म घेरे, श्री आदिनाथ भव दुःख निवार मेरे ॥१७३॥ सीता पतादि तुलसी पतिकौं जुध्यायो, भैरो सुयक्ष पदमावतिकौ मनायो। तासो जुन काज मम एक सरौ न कोई, ऐसी कृपाकरि जिनेश जु मुक्ति होई ॥१७४॥

इतिश्री भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीवृषभनाथचरित्रे भगवतकेवलोत्पत्ति वर्णनोनाम एकादशमः सर्गः ॥११॥

अथ द्वादश सर्ग।

गीता छन्द—सबसे प्रथम जिन ज्ञान हूवो प्रथम उपदेशक भये, सु अनंत महिमाके निधान जु सकल जगकर बंदिये। जिन मोक्षमार्ग दिखाय अद्भुत करम रिपुकौ भेदियो, सब तत्त्व झलके ज्ञान माही तासको मैं सिर नयौ ॥ १ ॥

पद्धड़ी छन्द—अब प्रभुको केवलज्ञान थाय, ताकौ वर्णनको कवि कहाय। सुर लोक विषै घंटा बजाय, बर सिंहनाद जोतिष ग्रहाय ॥ २ ॥ शुभ संख भवनवासिन सु थान, व्यंतर घर भेरी बजी महान। सिंहासन है कंपायमान, सिर मुकट सबै हरिके झुकान ॥ ३ ॥ सुरगज निज सूंड कमल सुधार, करते सु नृत्य आनंदकार। सुर द्रुमसे पुष्प सुवृष्टि थाय, दसहूं दिस अति निर्मल लखाय ॥ ४ ॥ शुभ मंद सुगंध पवन चलाय, इन चिह्नन कर जानौ सुभाय। भगवान आज केवल लहाय, चवविध हरिलष निज सीस नाय ॥ ५ ॥ प्रभुकी पूजाके करन काज, उद्यम कीनो सब देवराज। जिस नाम बलाहक देव सोय, तिस रचो विमान सुहर्ष होय ॥६॥ सो बादलके आकार जान, मुक्ता लड़िकर सोभायमान। देवी देवन करिके भराय, जोजन इक लक्ष प्रमाण थाय ॥ ७ ॥ रत्ननकी किरणनको बिथार, सो फैल रहो सब जग मझार। जिसकी अति ऊँची पीठ जान, अरु महाकाय शुभ गज रचान ॥ ८ ॥ मद झरत कपोलनसे अघाय, बर कर्ण विषैं चामर धराय। लक्षण व्यंजन कर सहत

देह, कल्याण प्रकृत बहु तुंग जेह ॥ ९ ॥ वर दीर्घ सुगंधित श्वास लेय, जुग पार्श्वन बिच घंटा बजेय। नक्षत्र माल नामा सुहार, सो धारत गजग्रीवा मझार ॥ १० ॥ इक लख जोजन विस्तरि अभंग, चलतौ पर्वत मानौ सुढंग। सुर नागदत्त अभियोग जात, सो ऐरावत गज इम रचात ॥ ११ ॥ बत्तीस बदन जाके बनाय, इक मुखबिच अष्ट सुदंत थाय। दंतन प्रत इक सरवर मनोग, इक सर प्रत इक कमलनि मनोग ॥ १२ ॥ कमलनि बिच बत्तिस कमल जान, द्वात्रिंस पत्र प्रत कमल ठान। इक पत्र विषै बतिस प्रमाण, नाचे देवी अति रूपवान ॥ १३ ॥ ऐसे हाथी पर हो सवार, सौधर्म इन्द्र फुन सचीसु लार। शुभ ढोल बजे आनंदकार, केवल पूजा हित चलो सार ॥१४॥ युवराज समाने देव जोय, तिन नाम प्रतेंद्र चले जु सोय। जिनकी आज्ञा ऐश्वर्य नाह, अरु आयु काय हरि सम बताय ॥ १५ ॥ पित मान समाने सो कहाय, ते सामानिक सुर सब चलाय। जे मंत्री प्रोहत सब गिनाय, ते त्रायस्त्रिंसत सुर सु थाय ॥१६॥ जो सभा निवासी देव जान, तिनकी परिषद संज्ञा कहान। जो अंगरक्ष जु समान चीन, सो आत्मरक्ष संज्ञक प्रवीन ॥ १७ ॥ जे कोटपालकी सम निहार, ते लोकपाल चाले सुलार। जो सेन्या तुल्य अनीक देव, गज आदि सात विध जो कहेव ॥१८॥ जैसे पुरमें रैयत रहाय, तिन नाम प्रकीर्णक सो चलाय। जो दास यहां करते जु सेव, तिनि सम अभियोग चले सु एव ॥१९॥ जो प्रजा बाह्य रहते चंडाल, सो किल्विष सुर चल नाय भाल।

इम दस विध देव चले सबैहि, निज निज विभूति संजुत तबैहि ॥२०॥ अपने अपने वाहन सवार, देवी आदिक वेष्टित जु सार। सब चले इन्द्रकी साथ सोय, शुभ धर्म माह चित धार जोय ॥२१॥ सौधर्म अरु ईशान दोय, बाकी सुरिंद्र सब साथ होय। नाना वाहन पै चढ़ चलाय, सब देवी देव सु साथ थाय ॥२२॥

कामनी मोहन छन्द—अमर किन्नर सबै गायन जयर करैं, दुंदभी ध्वनि सबै बहुत निर्जर भरे। महत उच्छव सहतं निज विभूती लिये, छत्र वाहन ध्वजा सकल शोभा किये ॥ २३ ॥ अंग भूषण किरण सर्व नभ फैलियो, इन्द्र धनुकी जु शंका सकल मन लयो। सोलहो स्वर्गके त्रिदस सब आईया, जोतिषी पटल उल्लंघ सुर धाइया ॥२४॥ चंद्र सूर्यादि ये पंच जिन भेद हैं, जोतिषी विबुधते चले बिन खेद हैं। त्रायस्त्रिंस रहित लोक-पालानहीं, आठ विधतैं कलत्रादिको संग लही ॥ २५ ॥ भवनवासी सबै भेद दस जानिये, तोड़ पृथ्वी सबै आयु मुद ठानिये। व्यन्तरा आठ विध संग परवारले, सहत बहु संपदा पूजनेको चले ॥ २६ ॥ चार परकार त्रिविवेश इम धारिया, समोश्रत दूरते देख आनंदिया। धनदने इंद्र आज्ञा थकी निर्मयो, तास वर्णन तनी कौनमें सकत यौं ॥ २७ ॥

पद्धड़ी छंद—तौ भी निज शक्ति समान गाय, वर्णन करहू भक्ति पसाय। जब केवलज्ञान प्रभू लहाय, तब ढाई कोस सु उच्च थाय ॥ २८ ॥ जो पंच सहस जोजन उचान, तसु बीस सहस सोहै सिवान। ऐसो इक पीठ धनद रचाय, द्वादश योजन विस्तार भाय ॥ २९ ॥

चौपाई-इंद्र नीलमणि कौसो जान, ता उपर रचना सब ठान। पंच रत्नमय धूली शाल, जिम परकोटा होय विशाल ॥ ३० ॥ जिम रेतन को टीबो होय, तथा दमदमा कहे सु लोय। ऐसी आकृत जानौ सही, प्रथम कोट वह दुतको मही ॥ ३१ ॥ चवदिश स्वर्ण जु थंमन साय, तोरण मणि माला लटकाय। तहां तैं आगे मानस्थंभ, जिस देखनतै होय अचंभ ॥ ३२ ॥ चवदिशमाही चार बखान, जिनमें बने अष्ट सोपान। चव गौपुर अरु कोट सुतीम, श्री जिनवर मूरत पुन लीन ॥३३॥ तिसके मध्य सु भाग मझार, सोहै पीठका परम उदार। ता ऊपर त्रय पीठ सुजान, सुर नर नाग सबै पूजान ॥३४॥ जिन मूरति ऊपर त्रय छत्र, ध्वज चामर घंटादि पवित्र। जो मिथ्याती मानी थाय, जाको देखत मान हराय ॥ ३५ ॥ तातैं सार्थिक नाम धराय, मानस्थंभ सकलजन गाय। नंदोतरा आदि जे नाम, ऐसी वापी सब सुख धाम ॥ ३६ ॥ एक दिशामें चार सु कही, चार दिशा सोलह लख सही। मणि सोपान विराजत जास, जल निर्मल जहां कमल विकास ॥३७॥ वापी प्रति दो कुंड रचाय, पद प्रक्षालन हेत बनाय। तुष्णांतर आगे सो जाय, तहां खातिका अतिसोभाय ॥ ३८ ॥ गली गली बिच मानौ गंग, प्रभु सेवन आई जुत तुरंत। रत्न किनारे परजु विहंग, कमलनपर गुंजारे भृंग ॥ ३९॥ ता आगे सुलतावन सही, सब रितु फूल फले जिस मही। तहां देवी क्रीड़ा नित करें, सय्यायुक्त लताग्रह खरे ॥ ४० ॥ चंद्रकांति

मणि सिला उदार, तहां विश्राम लहे सुरसार। तातैं कितनक चलकर जाय, कोट स्वर्णमय प्रथम लहाय ॥ ४१ ॥ कहियक रतन विचित्र सु जोय, कहयक धन आसंका होय। कहि विद्रुमकी दीप्ति समान, पद्मराग मणिमय कहि जान ॥ ४२ ॥ हस्ती व्याघ्र हंस सुखदाय, और मयूरनके जुग थाय। इत्यादिक चित्राम सु बनें, मोती माला कर सोभने ॥ ४३ ॥ चारौं द्वार चार दिश मांहि, उन्नतता कर नभ परसाह। पद्मराग मणिमय अति तुंग, सिखर विराजत जाके शृंग ॥ ४४ ॥ तहां बैठ सुर जिनगुण गाय, केई सुने केई नृत्य कराय। एक एक गोपुरमे जहां, मंगलद्रव्य धरे वसु तहां ॥ ४५ ॥ झारी कलशा आदिक जान, भिन्न एकसौ आठ बखान। सो सौ तोरण इक दिस कहे, रत्नाभरण प्रभा लह लहे ॥ ४६ ॥

गीता छंद—चव द्वार प्रत संखादि नवनिध पडी मचली है सही, प्रभुने अनादर कियो इनकौ तोभी ये जाती नही। तिसके जुअंतर महावीथी पार्श्व दोउके विषैं, चवदिशा मांही नाटयशाला बनी दो दो सब लखे ॥ ४७ ॥ सुवरणमई जिस थंभ सुंदर फटिक भीत सुहावनी, सुंदर रतनके सिखर चमके नभ विषैं जिम दामनी। पुनि तीसरी भू माह जानो देव देवी भर रहे, सो दर्श ज्ञान चारित्र मारग मोक्ष तसु कथनी कहे ॥ ४८ ॥ फुन नाट्यमंडपके विषैं बाजे मृदंगादिक बजे, तहां सुरी नृत्य बहुत विध करै मानूं धरम रत्नाकर गजे। किन्नरी बहु विध भक्ति करहैं गाय गुण प्रभुके सबै, तुम कर्म अरि सरे जीत लीने कहैं किम महिमा अबै ॥ ४९ ॥

गाथा—धूप घड़े दोदोई, वीथी मध्य उभय दिशा जु सुख-दाई। धूप धूम तसु होई, शुभ गंधी दश दिशा छाई ॥ ५० ॥ वीथी आगे जानौ, चारों वन रम्य पुष्प फल धारे। सब रितु इकठी ठानौ, प्रभु पूजन आय ततकारे ॥ ५१ ॥ प्रथम असोक जु नामा, चंपक दूजो सु आम्र तीजो है। सप्तपर्ण गुण धामा, ये चारौं सकल जीव मन मोहै ॥ ५२ ॥ चारों बनमें सोहै, चारौं शुभ चैत्य वृक्ष मनहारी। तीन छत्र सिर सोहैं, राखे कलशा सु चमर अरु झारी ॥५३॥ घंटे तहां बजाई, दस दिस बधरी करी तानें। चव गौपुर सुखदाई, कोट नये सहित शुभ ठाने ॥ ५४ ॥

अडिल छन्द—मध्य भाग जिन प्रतमा चारौं दिश विषैं, ऊँची ध्वजा लहकाय त्रमेखल सब लखै। तुंग पीठत्रय जान स्वर्णमय सोहई, अशोकादि चारौं बनमें मन मोहई ॥ ५५ ॥

पायता छन्द—बन माह सुवापी राजे, चतुकोण त्रकोण विराजे। तिन माह कमल विकसाई, सुर क्रीड़ करैं तहां आई ॥ ५६ ॥ क्रीड़ा मंडप तहां सोहै, ऊँचे सबके मनमोहै। इक खन दोखनके जानो, महलनकी पंक्ति मानो ॥ ५७ ॥ कहीं सरिता लता बिराजे, ता तट सिकता थल छाजे। ध्वज एक दिशाके माही, सत अष्टोतर सुकहाही ॥ ५८ ॥ दस जात तनी सो थाई, तसु भेद सुनौ चित लाइ। मालापट मोर बखानो, पुन कमल हंस पहचानौ ॥ ५९ ॥ पुनि गरुड मृगेंद्र तनी है, गज वृषभ सुचक्र भनी है। इक सहस असी जु बताई,

मोहारि जीत सुकहाई ॥ ६० ॥ सो पवन थकी जु उड़ाई, मानु भव जीवन सु बुलाई। तुम आय सु पूजा करहो, भव भवके पातक हरहो ॥ ६१ ॥ अग ध्वजमें माला जोई, पट ध्वजमें वस्त्र सु होई। इम शेष ध्वजा जो बताई, जिन नाम सु मूर्ति धराई ॥ ६२ ॥ सब चारौं दिशा तनी हैं, सब जोड सु एमभनी है। चव सहस तीन सत जानौ, ऊपर जिन बीस बखानौ। ६३॥ तहांसे पुन आगे जाई, तहां कोट दुतिय सुखदाई। सो रजित तनौं अति सोहै, शुभ रचना कर मन मोहै ॥ ६४ ॥

चौपाई—पूरववत गोपुर हैं चार, तोरण नवनिध संजुत सार। पूर्व सभा द्वय नाट्य जु साल, दो दो धूप खडे जु बिशाल ॥ ६५ ॥ मंगल द्रव्य जान सुखकार, रक्खे पूरववत मनहार। तहांते आगे चलकर जाय, कल्पवृक्ष बन तबहि लखाय ॥६६॥ नाना रत्न प्रमाणजुत सोय, तुंग सफल छाया जुत होय। माला वस्त्राभूषण धार, इम पल्लव लागे सु विचार ॥ ६७ ॥ जोतिरांग तल ज्योतिस रास, दीपांगहि ढिग स्वर्ग निवास। वृक्ष भृगांग सुभावन जान, सुख तिष्ठे कर जिनगुण गान ॥६८॥ तिस बन मध्य सिद्धारथ वृक्ष, ता बिच सिद्ध प्रतिमा परतच्छ। चैत्यवृक्ष बरनन पुर कियो, ताकी सदृश यह लख लियो ॥६९॥ कल्पवृक्ष जो उपर कहे, सकल अर्थदाता श्रद्धहे। रत्नकिरण कर व्याप्त सुजान, नर सुर पूज करे हित ठान ॥ ७० ॥ तिस बनकी दीवार जु बनी, स्वर्ण रत्नमय उन्नत घनी। जाके चार द्वार बन रहे, मंगल द्रव्य तहां शुभ लहे ॥ ७१ ॥ रत्नाभरण

सुतोरण जहां, देव सु जिनगुण गावे तहां। तिस विधिके अंतर माय, नानाविध ध्वज पंक्ति थाय ॥ ७२ ॥ स्वर्ण थंभ विच लागी केत, रत्न पीठसे मन हर लेत। अट्ठासी अंगुलको जान, मोटो थंभ कहो शुभ मान ॥ ७३ ॥ पच्चिस धनुष जु अंतर सही, सबकी ऐसी विध सो लही। मानस्तंभ ध्वजा थंभ जोय, चैत्य सिद्धारथ वृक्ष बहोय ॥ ७४ ॥ तूप सु तोरण अरु प्रकार, पर्वत गेह और दीवार। जिन तनतैं बारह गुण सार, ऊंचे है हैं सोभा धार ॥ ७५ ॥ पर्वतकी चौड़ाई इसी, उचाईसे वसु गुण लसी। तुपनको विस्तार सु एम, उचाईसे अधिक सु तेम ॥ ७६ ॥ जानो वेदीको विस्तार, भाषामें जिस कहे दिवार। जाके नांह कंगूरे होय, जास कंगूरे कोटसु जोय ॥७७॥ ऊंचीसे चौथाई भाग, जानौ चौड़ो सरस सुहाग। विश्व अर्थके जाननहार, गणधर तिन इम कियौ उचार ॥ ७८ ॥ कहिं वापी कहिं नदी बहाय, कहीं सभाग्रह बन बिच थाय। बनवीथीके आगे जान, स्वर्णवेदिका लसे महान ॥ ७९ ॥ तस हेममय गोपुर चार, ऊंचे बने सकल मनहार। तोरण मंगलद्रव्य रखाय, पूरववत सोभा अधिकाय ॥ ८० ॥ दरवाजेसे आगे जाय, गलियन मध्य जु भूमि रहाय। महालनकी पंकत तहां बनी, देव सिल्पि जिस रचना ठनी ॥ ८१ ॥ स्वर्णमई जहां थंभे लगे, चन्द्रकांत सिलसौं जगमगे। दुखने तिखने अरु चौखने, चंद्र- शाल वल्लभ छंद बने ॥ ८२ ॥

दोहा—बहु उतंग प्रासाद हैं, ऊंचे कूट धराय। सभा गेह केई

बने, प्रेक्षशाल बहु भाय ॥८३॥ सय्या आसन जहां धरे, सुंदर बने सिवान। तहां देव देवी रहे, करे सु जिनगुण गान॥८४॥

चौपाई—वापीमेंसे जल भर लाय, प्रभु मूरत अभिषेक कराय। आगे फटक कोट सोभाय, पद्मरागमय द्वार जु थाय ॥ ८५ ॥

लावनी—चतुर्दिशमें चारो जानौं, सुमंगल द्रव्य तहां मानौं। जहां तोरण नवनिध सोहै, पूर्ववत रचना मन मोहै ॥ ८६ ॥ छत्र चामर अरु भृंगारा, कलश ध्वज दर्पण जहां धारा। बीज नासु प्रतिष्टक नामा, रखे सब गोपुरमें तामा ॥ ८७ ॥ तीन कोटनके जो द्वारे, तहां सुर खड़े गदा धारे। प्रथम वितर देवा राजे, दुतियमें भवनपति छाजे॥८८॥ कल्पवासी तीजे चीनो, जान नहि देह विनय हीनो। फटकके कोट तने आगे, भीत षोडश तहां चित पागे ॥ ८९ ॥

अहो जगतगुरुकी चाल—फटकमई सो जान तास ऊपर सुखदाई, रतन थंभ दुतिवान भी मंडप तहां छाई। जोजन एक प्रमाण नो विस्तीर्ण बखानौ, जगत जीव सब आय तौ भी भीड न ठानौ ॥ ९० ॥ तहां तिष्टे जगनाथ वृष उपदेश करंते, सुर शिव लक्ष्मीयुक्त सब जन आश पुरंते। तातैं सार्थिक नाम श्री मंडप सुधराई, मध्य पीठका जान बैडूर रत्नमय थाई ॥ ९१ ॥ जहां षोडश सोपान सोलह मार्ग तनी है, चार दिशा मगचार बारह सभा भनी है। तिन प्रवेशके काज यह शिवान सुभ राजे, मंगल द्रव्य जु आठ धर्म चक्र हि छवि छाजै ॥ ९२ ॥ यक्षजु सिरपै चार सहस आरे जिस सोहैं। मानो सूरजबिंब उदयाचल ऊगो है।

ताके ऊपर जान दुतिय पीठ दुतवंती। स्वर्णमई सोभाय रतन किरण धारंती ॥ ९३ ॥ तहां ध्वजा लहकाय आठ भेद कीजो है, हस्ती वृषभ सुचक्र कमल बसतर मन मोहै। सिंघ गरुड अरु माल पवनथकी सु उडावे, दर्शनके गुण आठ मानौं नृत्य करावै ॥९४॥ तिस उपर शुभजान पीठ तीजी सुखदाई। जग लक्ष्मीको थान मंगल द्रव्य रखाई। तस्योपर दिव्यांग गंधकुटी शुभ जानौं, पुष्प धूपकी गंध सो दस दिस महकानौं ॥ ९५ ॥ तातैं सार्थिक नाम गंधकुटी शुभ राजे। मुक्तामय बरजान रत्नाभरण विराजे, छसौ धनुष उतंग उपमा रहित भनीजे। कछुक अधिक चौडान लबांई सु भनीजे ॥ ९६ ॥ तहां सिंघासन तुंग रत्नप्रभा जुत थाई, स्वर्णमई सो सिंघ ता तल सदा रहाई। तिस विष्टरके माह श्री आदीश्वर देवा, अंतर अंगुल चार तिष्टे तापर शेवा ॥ ९७ ॥

पद्धडीछंद—शुभ फटक शालके मध्य जान। इक योजन भूम कही बखान। वसु धनुष जु ऊंचौ प्रथमपीठ, दूजी कटनी चवदंड दीठ ॥ ९८ ॥ चवचाप तनी तीजी कहाय, ताऊपर सिंघासन रचाय। तहां धर्मचक्र अद्भुत बनाय, इत्यादिक रचना बहुत थाय ॥ ९९ ॥ मैं किमपी कहो लघु बुध धार, समवश्रुत रचना है अपार। जिनकौं विशेष जानन सु चाव, ते दीर्घ ग्रंथमाही लखाव ॥ १०० ॥ द्वादश योजन विस्तीर्ण सोय, गंधोदक वर्षा तहां होय। अब प्रातिहार्य होय अष्ट जेम, तिनकौं कछु वर्णन करूँ तेम ॥ १०१ ॥ जो वृक्ष अशोक उतंग

सार, मरकत मणिमय शुभ पत्र धार। जिस देखत सबको सोक जाय, सार्थिक नामको सो धराय ॥ १०२ ॥ मन मरण देव मन्मथ डराय, तिहु जग सरणौ ढूंढत फिराय। प्रभु चौर समझ कोई ना रखाय, तब हार मान प्रभु सरण आय ॥ १०३ ॥ निज शस्त्र तबै डाले तुरंत, पुष्पन वर्षा मनु इम भनंत। तिनपर सु भ्रमर करते गुँजार, मानौ प्रभुकी थुति करत सार ॥१०४॥ सिर छत्र तीन सोभै विशाल, तिनमें सोभै मुक्ता सु जाल। रत्नत्रय मनु छाया कराय, त्रिभुवनवत प्रभु मनु इम कहाय ॥१०५॥ दुग्धाब्धि तरंग समान जान, ढारे सुर चौसठ चमर आन। मनु चन्द्र किरण समुदाय सोय, वा मुक्ति स्त्री जु कटाक्ष होय ॥ १०६ ॥

चौपाई—जग जीतो इक मोह जु सूर, तीन लोक पटहादियो पूर। शुक्लध्यान असि सो जिनराय, ता बैरीकौ बसु जु कराय ॥ १०७ ॥ तास हर्ष दुन्दभी बजाय, प्रभुकी जीत तबै बतलाय। साढे द्वादश कोट प्रमाण, दसों दिश जिन बहरी ठान ॥ १०८ ॥ प्रभु शरीरको तेज जु होय, ताहि प्रभामंडल कहि सोय। तेज देख रवि लज्जित थाय, ता महिमा हम किम वर्णाय ॥ १०९ ॥ प्रभु तन हिमवन गिर सम थाय, गंगासम बाणी निकसाय। मोहमई विजयार्द्ध महान, ताको भेद चली सुलखान ॥ ११० ॥ जग जड़तापत दूर कराय, ज्ञान पयोनिध महा [illegible]। जसे मेघ सुवर्षा एक, ता कर फल ही है जु अनेक ॥ १११ ॥

तोटक छंद–सिंघासनपे जिनराज तहीं, चारौं दिसमैं चव मार्ग सही। प्रभुकौं मुख पूरबमांह मनौ, परदक्षण रूप सभा जु गुनौ ॥११२॥ चारौं दिश त्रय त्रय कोष्ट बरे, त्रजगद्भव्यन कर सर्व भरे। सोलह भीतनके मध्य कही, इम बारह सभा सुजान गही ॥ ११३ ॥ प्रथम गणधर मुनराज तनी, दूजी मध्यकल्प सुरी जु मनी। श्रुतकामानुषनी तीजीमें, चौथीमें जोतिषनी सु-नमें ॥ ११४ ॥ व्यंतरनी जान सु पंचममें, भवन स्त्री राजत षष्टममें। सप्तममें हैं भावन अमरा, अष्टममें व्यंतर जान खरा ॥ ११५ ॥ नवमें कोठे जोतिष गनिये, दसमें मध्य कल्प सुरा भनिये। एकादशमें जु मनुष्य सजे, द्वादशमें सर्व पसु सु छजे ॥ ११६ ॥ जिन सन्मुख राजत भव्य तबै, जिनवाणीके बांछिक सु सबै। इसमैं वर्नन संक्षेप कहो, तुछ बुध मूजब विस्तार गहो ॥ ११७ ॥ पण भक्ति मनको प्रेरे है, तुम वर्णन कहीं बेटेरे है। सो सब वर्नन मैं केम भनौ, गणधर बिन और जु नाह ठनौ ॥ ११८ ॥ शक्रादि असंख जु देव सबै, नभ मांह आनंद संयुक्त सबै। मनमें उछाह प्रभु दर्शनकौ, आये जिनचर्ण सु पर्सनकौ ॥ ११९ ॥ सबही मिलकर जयकार करें, कर हर्ष पुण्य भंडार भरे। हरि इंद्राणी मिल पूज रचे, श्री जिनवरके जुगपद अर्चे ॥ १२० ॥

पायता छंद–कंचन भ्रंगार भराई, तीरथ जलसे अधिकाई। सो जिनवर अग्र चढ़ावे, तासे त्रय दोष नसावे ॥ १२१ ॥ भव तपहर सीत वचन है, सो चंदनमें नहि गुण है। प्रभु तुम गुण एम सुनीजे, सोई सांचो कर दीजे ॥ १२२ ॥ मुक्ताफल

अक्षत लाई, ताके शुभ पुंज कराई। तुम जीती इंद्री पांचो, मोह अक्षय पद दे सांचो ॥ १२३ ॥ तुमने मन्मथ जु नसायो, तातै हम पुष्प चढायो। जो शील सुलक्षि लहावे, इम कामबाण नस जावे ॥ १२४ ॥ नेवज इंद्री बलकारी, सो तुम ढिग लागे प्यारी। तुमने चूरो तपधारी, येही अचरज है भारी ॥ १२५ ॥ दीपककी जोत प्रकाशा, सो तुमरे तनमें भासा। मानो यह ध्यान कणासी, टूटे कर्मनकी रासी ॥ १२६ ॥ कश्नागर धूप सुवासी, दस दिस तिय वर सुख रासी। अती हर्षभाव परकासे, मनु नृत्य करे अघ नासे ॥ १२७ ॥ बहुविध फल ले तिहु काला, उर आनंद धार विसाला। तुम शिवपद देहु दयाला, तो हम मांगत तो नाला ॥ १२८ ॥ यह अर्घ कियो निज कारण, तुमको पूजो जग तारण। जो खेत किसान कराई, तामैं नृप भाग सुधाई ॥ १२९ ॥

अडिल–रत्न चूरण ठान तबै सतियो कियो, पुष्पांजलि सु चढाय मंत्र उच्चारियो। फुनि प्रभु आरती करे इन्द्र हर्षायके, इंद्राणी भी संग देव सब भायके ॥ १३० ॥

मोतीदाम छंद–तुमी जगनाथ तुमी वरदेव, तुमी गुरुके गुरु हो जगदेव। करो तुम लोक पवित्र सदाय, समस्त जगद्धितको सु कराय ॥ १३१ ॥ तुमी सब नाथ निरोपम थाय, अनंत गुणाकर पाप नशाय। अशक्य भये गणराज समस्त, तुम स्तुतिमें किम हूं मैं वरक्त ॥ १३२ ॥ तऊ तुम भक्ति करै वाचाल, सुता वस होय कहूं गुणमाल। किये तुम वस्त्राभर्ण सु

दूर, सु रूप विराजत अद्भुत सूर ॥ १३३ ॥ नहीं तुम नेत्रन माह निमेष, नहीं जुल लाई को कहूं लेश । कषाय तनी पख बीत बताय, सबै भवि निरखत आनंद थाय ॥ १३४ ॥ मुखाब्ज सु दिव्य महा अविकार, नयो जिनचंद्र सुकांत अपार । मनौ इम लोकन कहत सुनाय, दिये इन सर्व जु दोष नसाय ॥१३५॥ प्रभु तुम वाणी सबै हितकार, सुधावत तोषत भव्यन सार । अविकल्प मनोवृत धारत श्रेष्ट, सबै उपमायुत हो जग-जेष्ठ ॥ १३६ ॥ भवाब्धि विषै जिय दुःख लहाय, तिनै तुम काढन उत्सक थाय । तुमी जिनदेव सहो बिन राग, सु पूज करे नर जे बडभाग ॥ १३७ ॥ तथा अविनय जन कोई करेय, तुमी नहीं राग जु द्वेष धरेय । निजार्थ करे तुम पूजन जाय, सोई जग पूज लहे पद आय ॥ १३८ ॥ तुम स्तुतिकों जु करे बुधवान, जग स्तुति पद योग्य लहान । जग त्र तनी लब्धिके तुम स्वाम, कहे कवि फेर निर्ग्रंथ ललाम ॥ १३९ ॥ शची प्रमुखा शुभदेविसु आय, जजे तुमरे पद सीस धराय । तुमे भव पूजत भक्ति बपाय, तऊ तुम नाह सुराग धराय ॥१४०॥ सु पूजन हार लहे जगलक्ष, यही फल भावतनौ परतक्ष । जुमूढ़ करैं तुम निंद्य सदीव, तुमे नहि रोष भमे वह जीव ॥ १४१ ॥ प्रभु तुम भक्ति लहे सुख स्वर्ग, तथा तपधार लहे अपवर्ग । अभक्ति गहे दुःखदारिद रास, जु दुर्गत जाय करे बहुवास॥१४२॥ शुभाशुभको फल सर्व लहाय, नहीं तुम रागजु द्वेष धराय । महान अचंभ तनी यह बात, सु अद्भुत चेष्ट तुमी जगतात ॥१४३॥

अनंतगुणाब्धि नमो तुम देव, अनंत सुदर्शन नमो जगदेव।
अनंत सुवीर्य सुखादिक धार, यही जु अनंतचतुष्टय सार॥१४४॥
समस्त जगज्जिय आपद टाल, त्रिलोक जु मंगलकारण म्हाल।
तुमी जग उत्तम हो जगजेष्ट, सुमुक्ति तियापत हो उत्कृष्ट॥१४५॥
इम स्तुति ठान कियो जैकार, प्रभू हमको भवसागर तार।
करांजुल जोड तबै अमरेश, स्वकोष्ट विषैंहि कियो सुप्रवेश॥१४६॥
चतुर्विध देव सु देवि महंत, सबै निज कोष्ट विषै जुलसंत।
वृषामृत प्यास लगी उरमांय, सबै तिह तिष्ट प्रभुपद ध्याय॥१४७॥

गीता छंद—इम जगतगुरु गुण वृषभ जिनवर सकल संपद तिन लही, कैवल्यदर्शन ज्ञान गजित प्रातिहार्यादिक सही। सब जगत पूजत जिन चरणको कायसे नहि राग है, सब हित करन भगवान मुझको शिवकरन बड़भाग है॥ १४८॥ तुम गर्भकल्याणक सुभाही रतन वर्षा अति भई, ता कर जु सब जन त्रस हुवे नाह वांछा उर रही। तुम जन्मदिन मांही किमिच्छक दान पितुने बहु दियो, पुन राज्य लह सब प्रजा पाली सकल दुख तिन मेटियो॥ १४९॥ तप धार केवलज्ञान रविकर सकलको भ्रम नासियो, उपदेश दे भवजीव सारे सकल तत्व प्रकाशियो। मेरी तरफ क्यों द्रष्ट नहीं मैं भी तुम सेवक सही, अब मैं सरण तुमरे जुआयो तारहो मम कर गही॥१५०॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते भगवान् समवसरण रचना वर्णनोनाम द्वादशमः सर्गः॥ १२॥

अथ त्रयोदश सर्ग।

सवैया ३१ सा–नमो आदिनाथ जिनराजके सुपद सार गुणगण पूरण सकल अंग भरे हैं। दोषनमें देख इम गर्व कीनो मन माहि कहा हमें लोक माह कोई नहीं वरे हैं॥ तब तुम छोड़कर औरनके पास गये तब तिन देवगण आदर सुकरे हैं। फेर तुमे स्वप्न माह पादक भू कियो नाहि ऐसे सब दोष प्रभु आपसेती टरे हैं॥ १॥

चाल अहो जगतगुरुकी–एक समे भरतेश आनंद सहित विराजे, तीन पुरुष तहां आय नृपको नमन कराजे। फुनि इम विनती ठान सुनिये नृप मन लाई, अपनी अपनी बात कहत भये सुखदाई॥ २॥ वृष अधिकारी एक बोलो इम सुनराई, जगगुरु वृषभ सुनाय केवलज्ञान लहाई। दूजो नम इम भाष आयुधशाला माही, उपजो चक्र सुरत्न तुमरो पुन अधिकाई॥ ३॥ त्रत्रीय कंचुकी वेग बोलो बचन रिसाला, अनंत सुंदरी नार पुत्र जनो गुणमाला। इम सुनकर चक्रेश हिरदेमाह विचारी, तीनों कारज माह कौनसो प्रथम सुधारी॥ ४॥ वृषकर विभव महान और भोग सब पावे, बीज थकी है धान्य तिम वृष विन नहलावे। श्री जिनवरकी पूज धर्मवृद्धि कारण है, सोई करनी वेग भवदधिसे तारण हैं॥ ५॥ वृषसे चक्रोत्पत्ति अरु पुत्रादि अपारा, सब ही कार्य सु होय तातै धर्म सु सारा। पहले करने जोग और सब कारज छांडो, बिंदी देयनकाम अंक जो एक न मांडा॥ ६॥ काम अर्थ अरु

मोक्ष इनको मूल यही है, यूं नृप निश्चै जानकर वृष काज सही है। अंतःपुर सब साथ पुरके लोक सबै ही, चारप्रकारी सैन तिन जुत चाल तबै ही ॥७॥ पूजन वस्तु जु सार सब आगै भिजवाई, पटह सुभेरी आदि बाजे बहु बजवाई। क्रमकर तहां पहुंचाय मानस्थंभ सु देखो, तहां जिन प्रतिमा पूज खातिका आदि सु पेखौ ॥ ८ ॥ जिनप्रतिमा जिह थान सबकी पूज करंतो, पहुंचो सभा सु थान भर्तराय गुणवंतो। तहां राजे त्रय पीठ तापर जिनवर सोहै, त्रिजग तपतकर वंद्य सुरनरके मन मोहै॥९॥

मरहठी—देखो जिनस्वामी त्रिभुवन नामी आनंदयामी, भक्ति भरौ, नमकरपंचांगा बांधव सांगा सब मिल जै जैकार करो। उठकर फुन राजन कर परदक्षण प्रथम पीठपे दृष्ट धरी, तहां धर्म चक्र चव दिशा माह चव तिनकी वसु बिध पूज करी ॥ १० ॥ द्वितीय पीठ मध्य ध्वजा देख शुभ तृतीय पीठ पर जिनराजे, अष्ट द्रव्य कर पूजन कीनी मुद ह्वै शिव सुखके काजे। कर प्रणाम नृप थुति आरंभी ताके चार सुभेद गनो, स्तुत्या स्तुति जो कहिये फल इन सबकौ भेद सुनौ ॥ ११ ॥ गुण अभ्यंतर संयुक्त सु जानौ सर्व दोष करहि ताहै, त्रय जगकर थुति जोग प्रभुजी सोई स्तुत्य जु महताहै। हेयादेय तत्त्व जो जानत गुण अरु दोष विचारे हैं, ख्याति लाभ पूजा नहीं वांछित सो श्रोता पद धारे हैं॥१२॥ सत्य गुण ग्रामनको कहनौ सोई थुति है सुखकारी, अर्हतकी भक्तिके काजे सो थुत वृष वर्धनहारी। तासे पुण्य उपार्जन करना सोई फल सुर

शिवदानी, चक्रवर्ति यह सर्व समझ कर श्री जिनकी पूजन ठानी ॥ १३ ॥ तुमरे मध्य अनंत जु गुण है औरनमें एकहू नाही, अधो मध्य ऊरध लोकनमें फैल रहे इच्छा पाई । इन्द्रादिकके कर्ण हृदयमें तिन प्रवेश कीनो जाई, अति वीरजको आश्रय करके वीर्यवान ते भी थाई ॥ १४ ॥ पगसे लेके मस्तक ताई गुण सबने तुम घेर लियो, दोषनने तब, थान न पायो तब तिन यहांसे गमन कियो । मनमें धर अभिमान इसी विध क्या हमको कोई नहि धारे, हरि हरादिके पास जु पहुंचे तिनने बहुविध सत्कारे ॥ १५ ॥ तहां रहे आनंदसु ह्वैके सुपनेमें भी नहि आये, तातै तुम निर्दोष प्रभु हो याते तुमरे गुण गाये । मेघ धार सागर कल्लोल हि ताकी गिनती हो जावे, पर तुम गुण संख्या नहि होहै इंद्रादिक लज्जित थावे ॥ १६ ॥ हे गुणवारिध तुमरे गुणको जो कोई कहवो चाहै, सो ऐसे कर जान जगत पत मूको बोलन उत्साहै । जो तुमको ध्यावत नित हितकर ध्यावन योग्य सु होत सही, भक्ति भारकर तुमे जु नमहै वंद्यपदी सो तुरत लही ॥ १७ ॥ तुमको पूजे जो भवि प्राणी पूज पदी ततक्षिण पावे, कल्पवृक्ष कल्पित फल देवे चिंतामण चिंतत थावे । कामधेनु अरु चित्रावेली एक जन्ममें सुख देवे, तुम सेवा मनवांछित दाता तातैं भवभवमैं सुख लेवे ॥ १८ ॥ मात पिता बांधव तुम ही हो तुम निश्चय सब हितकारी, तातैं तुमको नमन करत हूं चक्षुज्ञान केवल धारी । केवल दर्शन जुत ही स्वामी दान लाभको नहि

अंता, भोगोपभोग विना मरजादा वीर्य अनंतो धारंता ॥१९॥ पूरण क्षायक समकित धारी जो अवगाढ़ परम कहिये, यथाख्यात चारित्रजु क्षायक धारत जैसो ही चहिये। इम नव केवल लब्धि जु स्वामी द्वैविध धर्मप्रकाशक हो, तीन जगतके भव जीवनको सरन एक अघ नाशक हो ॥ २० ॥

ते गुरु मेरे उर बसो इस चालमें—जो तुमरी भक्ती करे, और करे परणाम दर्शन ग्यान चरित्र लह। पावे सुरशिव धाम मेरे सब अघकौं हरो ॥ २१ ॥ तुम भक्तिको फल यहे बोध समाधि लहाय, जन्म जन्म तुम स्वामि हो। जब लो शिव नहि पाय, मेरी सब अघकौ हरो ॥ २२ ॥ इम थुति कर चक्री तबै, नमस्कार फुनकीन निजपर हितदायक सही। पूछत भयो प्रवीन, मेरे सब अघको हरौ ॥ २३ ॥ तुम सबके ज्ञायक सही, द्वादशांग कर्त्तार। तत्त्व पदार्थ सत्य जे, तिन लक्षण कहु सार ॥ मेरे सब अघको हरो ॥ २४ ॥ मुक्त मार्ग परघट करौ, किम फल किम सुख थाय। कर्मन करके किम बंधे, लहे चतुर्गति जाय ॥ मेरे सब अघको हरौ ॥ २५ ॥ काहेकर भव मेरु ले, काहेकर शिव जाय। अंध पंगु क्यों दुख लहे, क्यों विकलांगी थाय, मेरे सब अघको हरो ॥ २६ ॥ उत्सर्पण्यवसर्पणी, कालतनो जो भेद। सो सब ही कहिये सबै मेरे भ्रम उच्छेद, मेरे सब अघकौं हरो ॥ २७ ॥ इम प्रश्नको सुन तबै, वाणी खिरी सुखदाय। भो मर्ताधिप सुन सही, चित्त एकाग्र कराय, वाणी सकल भ्रम नासनी ॥२८॥

तालू होठ हिले नही, मुख विकृत नहि थाय। जगतवंद्य वाणी खिरे, तत्व अर्थ दरसाय, वाणी सकल भ्रम नासनी ॥ २९ ॥
जीव अजीवाश्रव कहो, बंध सु संवर जान। निर्जरा मोक्ष जु मानिये, तत्व कहे भगवान, वाणी सबै भ्रम नाशनी ॥ ३० ॥
जीव माह दो भेद हैं मुक्त और संसार, मोक्ष माह कछु भेद नही। ताहि नमूं चित धार, जिनवाणी भ्रम नाशनी ॥३१॥
संसारीके भेद दो--भव्य अभव्य कहाय तामैं पण थावर कहे। इक त्रस है सुखदाय, जिनवाणी भ्रम नाशनी ॥ ३२ ॥

वंदो दिगम्बर गुरु चरण इस चालमें—चेतन सुलक्षण जीव है, उपयोगमय त्रयकाल। अरु अमूर्तीक सुजानिये, कर्तासु भोक्ता हाल ॥ काया समान सुजीव कहिये, अरु संसारी मान। फुन सिद्ध पदवी लहे, ये ही उर्द्धगामी जान ॥ ३३ ॥ इत्यादि बहु नय भेदतैं, जिन जीवतत्व कहान। फुन शुद्ध अशुद्ध द्वै भेद करके, चेतना दुविधान ॥ शुद्ध ज्ञानमई सुजानो, अशुद्ध कर्मज मान। शुद्ध नय कर जीव, केवलज्ञान दर्शनवान ॥ ३४ ॥ अशुद्ध निश्चयनय थकी, मति आदि ज्ञान लहाय। व्यवहार नयकर जीव कर्ता, भोगता सु कहाय ॥ शुद्ध निश्चय नय थकी, कछु बंध मोक्ष जुनाइ। व्यवहार सूक्षम थूल होवे जो शरीर लहाइ ॥ ३५ ॥ निश्चय असंख्य प्रदेश धारक समुद्घात कराय, तब लोक माहीपूर जावे जीव यह मन लाय। यह जीव संसारी जु कहिये, नय व्यवहार प्रमान ॥ निश्चय सो सिद्ध समान जानो, कर्म क्षयको ठान ॥ ३६ ॥ यह जीव आप

स्वभावसे ही उर्द्ध गमन करंत, फुन कर्म कर बांधो थको दस दिस विषै विचरंत। व्यवहार नय दस प्राणमय है पंच इंद्री जान, मन वचन काया आयु अरु उश्वास ये दस प्राण ॥३७॥

चौपाई—अभव्य अपेक्षा यह संसार, है जु अनादि निधन दुखकार। निकट भव्य जु अपेक्षा ठीक, है जु अनादि शांति तहकीक ॥ ३८ ॥ तत्त्व पदार्थ जग विच जेय, तिनमें जीवतत्व आदेय। सिद्ध समानसु आतम जान, ध्यावो नित इंद्रीवस ठान ॥ ३९ ॥ सिद्धनकी सम आतम मान, ध्यान करै निसदिन मुदठान। सिद्धनकी माफक हो सोय, सकल कर्म क्षयकर सुख होय ॥ ४० ॥ इस विध आतमको पहचान, रुचिसे भावन कर अरु ध्यान। सर्व अवस्थामें सब थान, तजो नहीं तुम ह बुधठान ॥ ४१ ॥ जीवतत्व जो ग्रहणो जोग, गणधर व्रत मो कहो मनोग। अजीवतत्वको जो व्याख्यान, सुनो सकल भवि-कर सरधान ॥ ४२ ॥ धर्म अधर्म और नभ कहो पुद्गल काल पंच सरदहो। जिय पुद्गलको चलन सहाय, जिम मच्छी जल माह चलाय ॥ ४३ ॥ नित्य अमूरत प्रेरे नहीं, धर्म द्रव्य सो जानो सही। जिय पुद्गल जब थितको करें, तब अधर्म सहकारी बरे ॥४४॥ दो प्रकार आकाश बताय, लोक अलोक सु जानो भाय। सब द्रव्यनको दे अवकाश, अमूर्तीक निक्रय अविनाश ॥ ४५ ॥ धर्मादिक जहां द्रव्य लखाय, सोई लोकाकाश बताय। जहां नहि दूजो द्रव्य सु नाम, सोई अलोकाकाश ललाम ॥४६॥ काल द्रव्य दो विध मन धार, एक जु निश्चय अरु व्यवहार।

समय पहर घटकादिक जोय, सो व्यवहार काल अवलोय ॥४७॥
काल द्रव्य दो विध मन धार, एक जु निश्चय अरु व्यवहार।
समय पहर घटकादिक जोय सो व्यवहार काल अब लोय ॥४८॥
निश्चयमें अणुरूप सुजान, रतनराशि वत भिन्न लखान। नई वस्तुको जीरण करे, लक्षण जास वर्तना धरे॥ ४९ ॥ अणु स्कंध भेद द्वय सार, पुद्गल तने जानि निरधार। सूक्ष्म सूक्ष्म आदि महान, षट् प्रकार कहियो भगवान॥ ५० ॥ अविभागी परमाणु सही, सूक्ष्म सूक्ष्म सो जिन कही। अष्ट कर्मकी प्रकृत जु गिनी, सो सूक्ष्म पुद्गल सब भनी॥ ५१ ॥ शब्द स्पर्श रस गंध जु थाय, सूक्ष्म थूल यही जु कहाय। धूप चांदनी अरु पड छाय, स्थूल सूक्ष्म ये भेद बताय॥ ५२ ॥ जल ज्वालादिक जानौ थूल, धाम विमान हि थूल सुथूल। जीव द्रव्य संयुक्त सु येह, सब षट् द्रव्य लखो गुणगेह॥ ५३ ॥ काल विना पंचास्ति जु काय, काल द्रव्य बिन काय लखाय। भाव द्रव्य द्वैविध पहचान आश्रव तत्व लखो बुध ठान॥ ५४ ॥ रागद्वेष युक्त परिणाम, भावाश्रव सो कहो ललाम। पुन्य थकी शुभ आश्रव होय, पाप करत अशुभाश्रव जोय ॥५५॥ भावाश्रवको कारण पाय, द्रव्याश्रव होवे सब ठाय। कर्मतनी वर्गणाए जु आय. सो द्रव्याश्रव जानौ भाय॥ ५६ ॥ जो मिथ्यात पंच परकार, बारह अव्रत तज दुखकार। और तजो पचीस कषाय, योग पंचदस तजो सदाय॥ ५७॥ ये भावाश्रवके लख भेद, इनको मूलथकी जु उछेद। शुभ आश्रव आवे शुभ योग,

अशुभ थकी द्वै अशुभ संयोग ॥ ५८ ॥ जौ लौं आश्रव जियके जोय, तौ लौं मोक्ष कहांसे होय। जब जियके आश्रव रुक जाय, तब ही सिद्ध सु पदवी पाय ॥५९॥ ऐसे जान व्रतादिक राय, बुधजन आश्रवको रोकाय। बन्ध भेद द्वै द्रव्य रु भाव, बंदी ग्रहवत् जान सुभाव ॥ ६० ॥ शुभ रु अशुभ भेद द्विविधाय, मोक्ष रोक भव वर्धक राय। रागद्वेष करके यह जीव, भाव बंधकर बंध सदीव ॥ ६१ ॥

पायता छंद—जो जीव कर्म मिल जाई, सो द्रव्य बंध कहलाई। सो प्रकृत प्रदेश जु माना, थित अरु अनुभाग सुतामा ॥६२॥ जो प्रकृत प्रदेश बंधानौं, सो योग चलनसे जानौं। फुन थित अनुभाग जु कहिये, सो बंध कषाय न लहिये ॥ ६३ ॥ जिम बंधन बंधो जु कोई, सहवे है दुःख बहोई। तिम कर्म बंधकर जीवा, भुगते है दुख अतीवा ॥६४॥ भव जानो इम मन माही, यह बंध सदा दुःखदाई। तप शस्त्र थकी इस छेदो, मुक्त्यर्थी इसको भेदो ॥ ६५ ॥ दो विध संवर सुखदाई, सो द्रव्य भाव मन लाई। मुक्ति श्री जनक महंता, भव नाशक सुखद अनंता ॥ ६६ ॥ कर्माश्रव रोकनहारे, चेतन परमाण सु धारे। जो आतम ध्यान कराई, सो संवर भाव गहाई ॥ ६७ ॥ जो कर्माश्रव रुक जाई, सोई द्रव्य संवर थाई। सो पंच महाव्रत कर ही, अर पंच समित फुन धर ही ॥ ६८ ॥ त्रय गुप्त धर्म दश पाले, बारह अनुप्रेक्षा संभाले। जो जीत परीषह सब ही, चारित पण धारे तब ही ॥६९॥ जो ध्यानाध्ययन कराई, सो मोक्षमार्ग

दर्शाई। ये भाव जु संवर कारन, है भवसमुद्रसे तारन ॥७०॥ संवर जुत जो तप काई, सो शिवकामनको बाई। संवर बिन जो तप धरही, सो तुष खंडनको करही ॥ ७१ ॥ इम जान जु संवर कीजे, मन वचन काय रोकीजे। द्वै भेद निर्जरा ताका, सविपाक और अविपाका ॥ ७२ ॥ सविपाक सबन जिम होई, अविपाक मुननके जोई। जसे तरु आम्र लगाई, सो आपथकी पक जाई ॥ ७३ ॥ तिम कर्म उदयमें आवें, सो सुख दुख दे खिर जावे। सोई सविपाक बखानी, तसु हेय जान तज प्रानी ॥ ७४ ॥ जैसे जु पालमें आमा, पक जाय तुरत अभिरामा। तपकर मुनवरके लहिये, ताको अविपाक जु कहिये ॥ ७५ ॥ जिम जिम संवर मन थाई, तिम तिम निर्जरा सु बढाई। जिम जिम निर्जर मन भावे, तिम मुक्ति स्त्री ढिग आवे ॥ ७६ ॥ इम जान सकल भव प्राणी, निर्जर मनमें नित ठानी। तप धरकर कर्म खिराई, संवर जुत है हर्षाई ॥ ७७ ॥ द्वै भेद द्रव्य अरु भावा, शुभ मोक्ष माह दरसावा। जो सर्व कर्म क्षय करने, परणाम विशुद्ध जु धरने ॥ ७८ ॥ सो भाव मोक्ष सुखदाई, सब सुखको रास बताई। जो कर्म काष्टको जारे, सोई शिव माह सिधारे ॥ ७९ ॥ है द्रव्य मोक्ष तसु नामा, सु अनंत गुणनकी धामा। जिम पग सिर सब बंध जाई, बंदीग्रहमें सु रुकाई ॥ ८० ॥ तिसके बंधन जब खोले, तिसकौं सुख होवे तोले। तिस कर्म बंधसें छूटो, तिन ही सास्वत सुख लूटो ॥ ८१ ॥

पद्धड़ी छन्द—त्रयकाल जगत्रय माह सार, जो सुख होवे इक दिन सु धार। अर एक समय सुख मुक्ति माह, सो तुल्य कदाचित होय नाह ॥ ८२ ॥ फुन जीवतने त्रय भेद जान, बहिरातम जिय जड एक मान। अन्तर आतमको भेद येह, जो जिय पुद्गलकी मिलन खेह ॥ ८३ ॥ बहिरातमता तजके मलीन, अन्तर आतमको बेग चीन। फुन परमातमको धार ध्यान, जो होय शीघ्र वसु कर्म हान ॥ ८४ ॥ जो निज परकौं श्रद्धान होय, सोई दर्शन शिवकार जोय। संवर निर्जर अरु मोक्ष तीन, ये ग्रहणयोग्य जानो प्रवीन ॥ ८५ ॥ पुद्गल आश्रव अरु बंध हेय, निज जीवतत्वकौ जान ध्येय। अन्तर आतमको इक जु थाय, जो पुन्यबन्ध शुभकौ कराय ॥ ८६ ॥ जे बहिरातम हैं ज्ञान अन्ध, ते बहु पापाश्रव करै बन्ध। संवर आदिक जो तत्वसार, तिनको स्वामी मुनिगण निहार ॥ ८७ ॥ ये सात तत्व पुन पाप थाय, ये नव पदार्थ जिनवर बताय। इन तत्वनकौ श्रद्धान ठान, ये मोक्ष महलके हैं शिवान ॥ ८८ ॥ करहै निश्चै शुध चित्त लाग, ताकौ व्यवहार दर्शन कहाय। तत्वनकौ साचौ ज्ञान होय, सो सम्यग्ज्ञान सु जान लोय ॥ ८९ ॥ जो समित सु व्रतगुप्ती लहाय, सब दूषण तज तिनकौ धराय। सम्यक्चारित्र सोई बखान, शिवसुर पदवीकौ है सु खान ॥ ९० ॥

त्रोटक छन्द—यह रत्नत्रयको भेद कहो, सो सर्व विध सुखकार गहो। यह रत्नत्रय व्यवहार सही, निश्चयको कारण

जेम मही ॥९१॥ पुद्गल आतमको भिन्नपनो, श्रद्धे सो निश्चय दर्श मनो। निज आतमको जब वेदत है, परकी चिंता सब छेदत है ॥ ९२ ॥ सो निश्चय ज्ञान प्रमाण धरो, सुन चारितको अब भेद खरो। अपने आतमको जो भजना, अरु सर्व विकल्पनको तजना ॥९३॥ सो निश्चय चारित आदरनो, जो मुक्ति सखीको तुम परनो। इम रत्नत्रय द्वय भेद गनो, सब ही सुखकारन वेग ठनो ॥ ९४ ॥

दोहा—जो भव पहले शिव गये, अथवा जो अब जाइ। तथा सु आगे जाहिगे, रत्नत्रय परभाइ ॥ ९५ ॥ मुक्त मारग यह सत्य है, सुख अनंतकी खान। जो इसको धारण करे, पावैं पद निर्वाण ॥ ९६ ॥

गीता छन्द—जो तीव्र विषयाशक्त नर हैं सब विशन सेवे सही, जिनके जु तीव्र कषाय हो है धरे मिथ्याचार ही। जिन धर्म बाहिज जीव ऐसे मुक्त बहु आरंभ गही, ऐसे जु पापनके करैं नर जाय सप्तम नरक ही ॥ ९७ ॥ माया जु चारी अरु कुशीली अव्रती जो जानिये, परके ठगनमें चतुर लेश्या नील जिन परमानिये, खोटे जु मतके धरनहारे निंद्यकर्मी मानिये। ते आर्त ध्यान थकी मरण कर पशुगतिको ठानिये ॥ ९८ ॥ जे शीलवान आचार निरमल महाव्रतको पालहै, अथवा अनु-व्रतको धरे वृष ध्यानमें नित रत रहैं। जिन भक्ति पूजन करे नित ही अरु कषाय जु मंद है, इत्यादि पुनको जे करे ते स्वर्ग-गति वेगी लहैं ॥९९॥ ये धर्म मार्दव धरणहारे अल्प आरंभको

करै, जो अल्प आरंभ धार श्री जिनराज भक्ति उर धरे। करने न करने जोग जान तू श्रेष्ठ कारज आदरे, शुभ ध्यानसेती देह तजके मनुषगतिको सो वरे ॥ १०० ॥ श्रद्धान नास्तिक दुराचारी जो मिथ्याती जीव है, जिन मार्गसेती हो अपूछे इंद्रियोंके वस रहै, शुभ धर्म पथको छोड़ करके अन्य मारग जे गहैं, ते रुले बहु संसार माह निगोदके बहु दुख सहे ॥१०१॥ जे राग वर्जित सदाचारी रत्नत्रय भूषित महा, दीरघ तपसी निःकषाय सु इंद्रियांसे जय लहा। भयभीत भवतैं सदा रहते करत संवर निर्जरा, इत्यादि उत्तम करम कर तिन मुक्त पद सहजे वरा ॥ १०२ ॥

चौपाई—द्रिष्ट विषैं जो इर्षा करै, निज नेत्रोंका मान जु धरे। तिय योनादिककौं निरखाय, ते मरकर अंधे उपजाय ॥ १०३ ॥ खोटे तीरथ गमन जु धरे, पगकर परकी ताड जु लडे। इच्छापूर्वक जहां तहां जाय, सोई जीव पांगुले थाय ॥ १०४ ॥ यत्नाचार करे नहीं कदा, हस्त पैर पर भंजै मुदा। ते जिय मर विकलांगी होय, द्वि त्री चतु पंचेंद्रीय सोय ॥ १०५ ॥ हीनाचरण रहित जो जीव, परकी रक्षा करे सदीव। ते संसार तने सुख पाय, धर्म कर्मके थानक थाय ॥ १०६ ॥ इस विध प्रश्न जो चक्री किये, तिनके उत्तर जिनवर दिये। कालभेद द्वै षट विध कहौ, भवि जीवनमें सब सरदहो ॥१०७॥ उत्सर्पिणीमें बढते जाय, आयु काय बल सुक्ख सदाय। अव-सर्पणिमें घटते जान, इन द्वै भेद कहे भगवान ॥ १०८ ॥ अव-

सर्पिणी जो अब बताय, ता बिच काल कहे षट भाय। सुषमा सुषमा पहलो अखो, सुखमें सुख सब जीवन लखो ॥ १०९ ॥ चव कोटाकोटी सागरा, सर्व दुखसे रहित सुखरा। भोगभूमि उत्कृष्ट सु जहां, जुगल साथ उपजै शुभ तहां ॥ ११० ॥ तीन पल्यको आयु प्रमान, सब तिय पुरषनको सम ठान। तप्त कनक सम प्रभा महान, तीन कोसको देह उचान ॥ १११ ॥ दिन त्रय गये लेय आहार, बदरीफल सम सुख करतार। नहीं निहार कदाचित करे, रूप अनोपम अद्भुत धरे ॥ ११२ ॥ पुरुष स्त्री मिल भोगे भोग, पात्रदानके पुन्य संजोग। कल्पवृक्ष जहां दस परकार, तिनको दियो भोगवे सार ॥ ११३ ॥ पुरुष जंभाई तियको छींक, मर्ण समैं आवे है ठीक। मंद कषाय देवगति लहे, दुतियकाल वर्नन अब कहें ॥ ११४ ॥ सुखमा नाम जास उचरा, कोडाकोडी तीन सागरा। भोगभूमि है मध्यम जहां, चन्द्रवर्ण है मानुष तहां ॥ ११५ ॥ दोय कोसकी काया कही, दोय पल्य जीवन शुभ लही। वज्रवृषभ नाराच जु नाम, संहनन सोहै सब सुखधाम ॥ ११६ ॥ लेय बहेडेकी उन मान, जो आहार छह रसकी खान। दो दिन पीछे असन कराय, मरकर सब ही सुरपद पाय ॥११७॥ त्रयकालको वर्णन सुनौं, सुषमा दुषमा नाम जु मनौ। भोगभूम जहां जघन रहाय, आदि सुख अंतम दुख थाय ॥ ११८ ॥ कोडाकोडी सागर दोय, काल तनी मरजादा होय। एक कोसको होय शरीर, स्याम प्रयंगु समानो धीर ॥ ११९ ॥ इक दिन अन्तर लेय

आहार, दिव्य आंवले सम निर्धार। कल्पवृक्षसे सब सुख लहै, एक पल्यको आयु सु गहे ॥ १२० ॥

अडिल्ल छन्द—तृतीयकालमें पलकौं अष्टम भाग ही, शेष रहे तब कुलकर उपजन लाग ही। भोगभूमियोंकौं हितकारक उपजिये, सबी चतुर्दस जान प्रथम प्रत श्रुत भये ॥ १२१ ॥ स्वयंप्रभा जिस राणी गुणकी खान ही, स्वर्ण वर्णतन जान महा बुद्धवान ही। अष्टादस सत धनुष तनौ ऊंचो सही, ऐसो जान शरीर तेज जिम भान ही ॥ १२२ ॥ पल्य सु दसमें भाग आयु तसु जानिये, जोतिरांगके कल्पवृक्ष परमानिये। तिनकी मंदी जोति भई भूमें जबै, तब अकाशमें चंद्र सूर्य लखिये सबै ॥ १२३ ॥ भय धरके प्रतिश्रुत कुलकर पै सब गये, सो बुद्धवान सरूप सर्व कहते भये। शशि सूर्यादिक देव गगनमें रहत है, कल्पवृक्ष ह्वै मंद तबै ये दरसहै ॥ १२४ ॥ तुम कोई भय मत करो तुमे दुखको नहीं, पल अस्सीमो भाग गये दूजो लही। सन्मति नामा कुलकर उपजो तन सही, सतक त्रयोदस धनुष देह जिसने लही ॥ १२५ ॥

दोहा—पल्यतने सतभाग कर, तामें इक बढ़ आय। यस्ववती जिस नार है, हेमवर्ण सुखदाय ॥ १२६ ॥

अडिल्ल छन्द—जोतिरांगके कल्पवृक्ष सब ही नस गये, नभमें ग्रह तारादिक सब ही दरसिये। तिन देखत भय मान गये कुलकर नखे, कहत भये महाराज आज तारे दिखे ॥१२७॥

जोगीरासा—तिनके भय नाशनके कारण, कुलकर एम:

कहाई, ताराग्रह आदिक ये नभमें भ्रमण करे जु सदाई। इनसे तुमकों भय नहीं होहै, इन करि निस दिन थाई। ऐसे बच सन्मतके सुनकर सब ही निज गृह जाई॥ १२८॥ जो कोई दोष करे तौ कुलकर हा इम दंड कराई, पल्य अष्ट सत भाग करो जहां तामें एक बिताई। क्षेमंकर मनु जन्म लियो तहां तिया सुनंदा जाकी, अष्ट सतक धनु उच्च देह हैं कंचनसम दुति वाकी॥ १२९॥ पल्यतने जु सहश्र संख्यवट कीजे जो बुद्धिवाना, तामें तै इकवट गह लीजे इतनी आयु सु ठाना। तास समयमें सिंघादिक जिय क्रूरपनो उपजाई, तब सब ही जन विकल होयके कुलकरके ढिग आई॥ १३०॥ पहले तो हम इन बनचरसे क्रीड़ा करत सुखदाई, अब ये क्रूर भये मुख फाडे अरु नखसे नोचाई। तब मनु कहत भये इन सबते काल दोष तुम जानौ, इन विश्वास कदाचि न करनौ इनतें दूर रहानो॥ १३१॥ जो कोई जन करै दोष कछुहाइ ति दंड गहाई, पल्यतने अठ सहम भाग कर एक भाग अरु जाई। तब कुलकर उपजो बड़भागी क्षेमंकर सुखदाई, ताकी विमला राणी अठसत धनुष देह सु ऊंचाई॥ १३२॥ पल्य सहस वसु भाग करो तिस आयु एक बढ़ जानौ, तिस समय बहु जीव क्रूर ह्वै तिनसे सब डर पानौ। कुलकरके कहनेतैं तबही लाठी आदि रखाई, जो कोई दोष करै नरनारी तो हा दंड दिखाई॥१३३॥ पल्य तनौ अस्सी सहस्र बढ़ और गयो सुखकारी, सीमंकर मनु उपजे तब ही मनोरमा तसु प्यारी। धनुष सातसे पंचास जाकी

देह कनक सम धारी, पल्य लक्ष इक भाग आयु हैं दंड दियो महा भारी ॥ १३४ ॥ कल्पवृक्ष तब बिनस गये बहु मंद जु फलको देवै, विसंवाद तब करन लगे सब आपसमें बहु भेवै। तब सीमा बांधी कुलकरने, झगड़ो दियो मिटाई, पल्यतने लख अष्ट भाग कर इक बट जब बीताई ॥ १३५ ॥ सीमंधर कुलकर जो उपजो, वर्ण सुवर्ण धराई त्रया धारणी कोपत जानों हा मा नीत चलाई। पल्य तने दस लख बट कीजे आयु एक बट जाकी, पण विसत अरु सप्त शतक धनुष देह उच्च शुभ ताकी ॥१३६॥ कल्पवृक्ष बहु मंद हुवे तब काल दोष कर जब ही, तब वो आरज विसंवाद बहु करन लगे मिल सब ही। तिनकी सीम करी जब कुलकर सबकी कलह मिटाई, पल अस्सी लख भाग जु कीजै ता मध्य एक बिताई ॥ १३७ ॥ विमल जु वाहन नाम सु जाकौ कुलकर सो उपजाई, सुमति स्त्रीका भर्ता कहिये हेमकांत मन भाई। सप्त शतक धनु उच्च शरीर जु हा मा नीत चलानो, पल्य तने शुभ भाग कोट कर आयु एक बट जानों ॥१३८॥

छन्द पायता—तिन गज आदिक असवारी, अंकुश आयुध कर धारी। पल्य आठ कोट बट कीजै, तिसमें इक भाग सु लीजै ॥ १३९ ॥ इतने दिन बीते जब ही, शुभ कुलकर उपजे तब ही। जिस नाम सु चक्षुष्माना, तिस नार धारणी जाना ॥१४०॥ छस्से जु पिछत्तर धनुकी, इतनी काया उस मनुकी। दस कोट भाग पल कीजे, इक भाग सु आयु कहीजे ॥१४१॥ तिस वर्ण प्रयंगु कहाई, निज पुत्र तबै दरसाई। सब आरज

तब भय पायो, सब मिल कुलकर ढिग आयो ॥ १४२ ॥ मनु तिन भय दूर कराई, कहा तुम इन पालो भाई । तिन सार्थिक नाम धराई फुन हामा नीत चलाई ॥ १४३ ॥ इक पलके भाग सु जानौं, अस्सी जु कोट परमानौ । इक भाग और बीताई, तब ही कुलकर उपजाई ॥ १४४ ॥ तीस नाम यसस्वी थाई, तिय कांति भाल सुखदाई । साढेछस्सै धनु तुंगा, जिस काय हरित शुभ रंगा ॥ १४५ ॥ पल्य भाग कोट सत जानौ, इतनी तिस आयु सु मानौ । तिन हा मा नीत प्रकाशी, सो प्रगट हुवे जस राशी ॥ १४६ ॥

गीता छंद—पुत्री सुतनको सकल मिलकर जाति कर्म सबै करे, कितनेक दिन तिन पाल करके काल लह तन परहरे । तिसके जु पीछै पल्य अठ सत कोट भाग गये सही, अभि-चंद्र कुलकर ऊपनो तिन श्रीमती तिरपाल ही ॥ १४७॥ छस्सै सु पच्चिस धनुष ऊंची काय जिसकी जानिये, पल्य कोट जु भाग कीजै इतनी आयु प्रमानिये । शुभ स्वर्ण वर्ण शरीर जाको नीत हा मा तिनकरी, तिस समै पुत्रादिक खिलावत करत क्रीडा रस भरी ॥ १४८ ॥ पल्यके सु अष्ट सहस्र कोट सु बट करो सुखदायजी, तिस माह एक जु भाग बीतो तबै कुलकर थायजी। चंद्राभ नाम सु चन्द्रवर्णी तिय प्रभावति सोहनी, षट सत धनु-षकी काय जानो सबनको मनमोहनी ॥ १४९ ॥ दस सहस कोट सु भाग पल्य के जास जीवन जानिये, जो कोई दोस करै प्रजा हा मा धिक्कार बखानिये । तिनके बचनकर पुत्र पुत्री प्रीतसे

पालत भये, पलके जु अस्सी सहस कोट सु भाग मनमें सम-
झिये ॥ १५० ॥ तिस माह एक जु भाग बीते मरुदे देव सु.
नाम है, राणी अणुपमाको पती कुलकर हुवो गुणधाम है।
पणसै पिछत्तर देह जाकी धनुष ऊंची मन हरै. पल्य कोट लक्ष
सु भाग आयु जु प्रभा हाटक द्युत धरै ॥ १५१ ॥

पद्धड़ी छंद—हा मा धिक्कार ये दंड थाय, तब मेघतनी वर्षा
लहाय। तब नदी जु सागर भरे जोय, तब नाव जहाज बनाय
सोय ॥ १५२ ॥ गिरपर चढनेके काज जान, बनवाये कुलकरने
सिवान। अठलक्ष कोट जो भाग चीन, ये कल्पतनै जानो
प्रवीन ॥ १५३ ॥ तामे इक भाग जबै बिताय, तब मनु प्रसे-
नजित सुभग थाय। साढ़े जु पंच सत धनुष तुंग, वपु जास
सु सोमै जिम प्रियंग ॥ १५४ ॥ दशलक्ष कोट जो भाग होई,
इक पल्य तने इम आयु जोय। हामाधिक नीत तबै चलाय,
तसु पिता अमितगति सुभ लहाय ॥ १५५ ॥

चौपाई—सो कुलकर इकलो उपजाय, कन्या संग विवाह
कराय। उतपत युगल तबै मिट गई, जगमें व्याह रीति जब
भई ॥ १५६ ॥ जरा पटल तब ही उपजाय, बालकके इन दूर
कराय। अस्सी लाख कोट बट करौ, एक पल्यके इम चित
धरो ॥१५७॥ तामै तै इक भाग विताय, तब कुलकर सु नाम
उपजाय। मरुदेवी तिन राणी कही, हेम समानी तन दुत
सही ॥ १५८ ॥ पंच सतक ऊपर पच्चीस, इतने धनुष काय
शुभ दीस। कोट पूर्व प्रमाण जु आय, हामाधिक ये दंड

चलाय ॥ १५९ ॥ नाम नाल तिस काल जु भई, तब इनने कटवाई सही । तातैं इन सार्थिक जु नाम, नाम सकलने मिल रख ताम ॥ १६० ॥ वर्षा बहुत भई जिहवार, गर्जे चमके तडित अपार । धान्य बहुत विधके तब भये, बहुते कचे बहु पक गये ॥ १६१ ॥ सांठे गेहूं यव कंगनी, तिल मसूर अरु अलसी भनी । जीरा सरसो और जु धान, मूग उड़द अरु चना प्रधान ॥ १६२ ॥ कुसम कपास और सब नाज, परजाके जीवनके काज । ये सब वस्तु जु उत्पत थाय, कल्पवृक्ष सब ही विनसाय ॥ १६३ ॥ सबको क्षुधा लगी दुखकार, जो सब अंग जलावनहार । तब सब ही जन आकुल थये, नाभि-रायके पास जु गये ॥ १६४ ॥ देव कल्पद्रुम सकल विनास, अब ये उपजे बहु तरु रास । इनमें केते तजने योग, कितने ग्रहण करे सु मनोग ॥ १६५ ॥

लावनीकी चालमें—नाभि राजा तब उच्चरी, सुनो तुम सब ही सुखकारी । किते फल तुम भोगाई, कितेयक विखवत त्यागाई ॥ १६६ ॥ कितेयक औषध है सारा, सु बहुते ईक्षु दंड धारा । इने कोल्हूकर पिलवाई, पीकर तृप्ति होउ भाई ॥ १६७॥ इसो तिनकी सुनकर वानी, सबै मनमें आनंद ठानी । करत परसंसा बहु भाई, नमन कर निज निज घर जाई ॥ १६८ ॥ भये कुलकर चोदह ज्ञानी, पूर्व भव विदेह उपजानी । ग्रहण सम्यक्त पूर्वक करही, पात्र दानादिक उर धर ही ॥१६९॥ भोग-भूमि सु बंध ठानो, पिछे क्षायक समकित आनो । तहांसे चय

यहां उपजाई, लही सबसे अति चतुराई ॥ १७० ॥ किते जाती सु मरण पावे, अवधि ज्ञानी केते थावे। प्रजा हितका नियोग करते, नाम आदिक तिनके धरते ॥ १७१ ॥ नाभि कुलकरके सुत थाई, वृषभ तीर्थंकर सुखदाई। पंद्रमे कुलकर सो जानौ, नीति हामाधिक परमानौ ॥ १७२ ॥ तास सुत भरतचक्री देखो, सोलंवो कुलकर सो पेखो। वध बंध आदिक दंड दीने, न्यायमारगसे सुख कीने ॥ १७३ ॥ काल चौथो तब ही लागौ, दुषमा सुषमा जु नाम पागौ। दुख सुख दोनोंको धामा, कोडाकोडी सागर नामा ॥ १७४ ॥ सहस बयालीस जिस मांही, वरस इतने कमती थाई। इते दिनको सोहै काला, कर्मभूमी तहां है चाला ॥ १७५ ॥ मोक्ष सुर-साधनको कारन, कोट पूरब जीवन धारन। आदि में पंच वर्ण देहा, धनुष पणसत ऊंचौ जेहा ॥ १७६ ॥ एकवैर करहै आहारा, एक दिन माही सुभ धारा। कर्म षट करते सुखदाई, चतुर्गति माही सो जाई ॥ १७७ ॥ बहुत जिय जाते निर्वाणा, कर्म शत्रुको कर हाना। चतुर्विंशत हो तीर्थेशा, होय द्वादश जहां चक्रेशा ॥ १७८ ॥ होय बलिभद्र सुनो जबही, फेर नव वासुदेव तबही। होय प्रतनारायण जबही, रुद्र एकादस जान तब ही ॥१७९॥ चतुर्विंस तसु कामदेवा, नवो नारद तहां उपजेवा। तीर्थपत जगतपूज्य स्वामी, जान निश्चै सु मोक्षगामी ॥ १८० ॥ चक्रवर्ती त्रय गति पाई, मोक्षस्वर नर्क माह जाई। नवो बलभद्र गति जानो, जाय सुर तथा मोक्ष ठानो ॥१८१॥

कामदेवहि जो चौवीसा, होय ते शिवनगरी ईसा। नारायण प्रतनारायण जो, रौद्र दुर्ध्यान परायण जो ॥ १८२ ॥ नेम करके नर्कहि जावे, रामश्री जिनवर बतलावे। सलाका-पुर बनकी ऐसैं, कही बलवीर्य जु थी तैसे ॥ १८३ ॥ कहे सबके जो पौराणा, तप स्वर्गादिक जो ठाना। धर्मफल धर्म सबै कहियो, भव्य जीवनने तब गहियो ॥ १८४ ॥ अबै पंचम दुखमा काला, दुखकर पूरत बेहाला। बरस इकीस हजारको है, सप्त करको तन ऊंचो है ॥ १८५ ॥ आयु सत वर्ष अधिक बीसा, रुक्ष देहीके सब दीसा। एक दिन मध्ये द्वैबारा, करे हैं सबही आहारा ॥१८६॥ आयु बल बुद्धि घटती जाई, घटते घटते सब घट जाई। धर्म राजाग्नी विनसाई, फेर षष्टम सु काल आई ॥ १८७ ॥

गीता छन्द—दुषमा जु दुषमा नाम जाको बहुत दुख पूरत सही, इक्कीस हजार जु वर्ष जाको थित रिषभ जिनने कही। जहां धर्महीन मनुष होहैं धूम्र वर्ण बखानिये, द्वै हस्त ऊंची काय जानौ नग्न पशु सम ठानिये ॥१८८॥ विसत वरष उत्कृष्ट आयु जु मासको आहार है, दिनमें अनेक जु वार खावे विलखसे अविचार है। तिर्यग नरक गतिसे जू आवें वहीं जाते है सबै, मातादिसे मैथुन जु करहै भ्रष्ट मति होवे तबै ॥ १८९ ॥ जिस काल अन्त जु काय जानौ एककर ऊँची गनौ, षोडश बरसकी आयु जादे उष्ण सीत अधिक मनौ। तिस काल अन्त विषाग्नि वर्षा होय आरज भू जबै, तब प्रलय पर्वत आदि

हो है मनुष पशु आदिक सबै ॥ १९० ॥ जोड़े बहत्तर देव आकर रखे बिजयारध विषैं, उत्सर्पणी जब काल हुईं वृद्धि सब वसुधा लखे। दुखमादुखम आदि लेके काल छह तहां होय है। अरु सुधा मेघ जु आदि वर्षा दिन उनचास जोयहै ॥१९१॥

सवैया—पृथ्वीतलमें धान्य मनोहर उपने नाना सुख दातार, अवसर्पणीसे उलटो जानौ छहौं कालको जो विस्तार। उत्सर्पिणी इस नाम जु कहिये क्रमकर वृद्ध होत सब सार, बारह काल सरूप इसी विध कहो जिनेश्वर सर्व निहार ॥१९२॥ होय चुको अर अब होवे है अथवा जो होवेगा सोय, तीन लोक बिच तत्व पदारथ शुभ अर अशुभ ज्ञानसे जोय। द्वादसांगमें सर्व निरूपो गणधर प्रति कहियो थिर होय, धर्म प्रवर्त चलाई जिनने तिनको मैं वंदूं मद खोय ॥ १९३ ॥ तीन जगतगुरु सब गुणके निधि स्वर्ग मोक्षके दायक जान, जिनके वचन भव्य जीवनको तीन काल दिखलावत भान। लोकालोक सरूप कहो जिन स्वर्ग मोक्ष मारग दरशान, मैं तिनके गुण गणको गाऊँ दीजे निज पदको अमलान ॥ १९४ ॥ असम गुणनकी खान जु कहिये विश्वतत्व दरसावन हार, तीन भवनके पतकर पूजत। तीर्थनाथ तुम वृष कर्तार, सर्व दोषकर रहित जु स्वामि आदिनाथ जिनवर भवतार, द्वादस सभा धर्म उपदेशक ताह जजूं मैं अष्ट प्रकार ॥ १९५ ॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते भगवान् तत्वधर्मोपदेशवर्णनोनाम त्रयोदशमः सर्गः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दश सर्ग।

चाल बाईस परिषहकी–दश अतिशय धारक प्रभु उपजे, दस फुन ग्यान तने जु महाना। चौदह अतिशय देवन कृत हैं अनंत चतुष्टय अद्भुत थाना, अष्ट प्रातहार्येन कर सोभित इम षट्चालिस गुण परमाना। ऐसे रिषभनाथके पद नित, पूजत है हम मोद उपाना ॥ १ ॥

चौपाई–अब भरताधिप नृप पुनवान, धर्मरूप अमृत कर पान। जिनमुख चन्द थकी जो झरो, जन्म मृत्यु विखता कर हरो ॥ २ ॥ परम प्रमोद सु प्रापत होय, सम्यक क्षायक निर्मल जोय। श्रावक व्रतकौ ग्रहण कराय, धर्मसिद्धके अर्थ जु थाय ॥ ३ ॥ पुर मितालकौं राजा जान, भरतरायकौं अनुज महान। वृषभसेन जिस नाम बखान, सो प्रभुवानी सुनकर कान ॥ ४ ॥ काललब्धिके उदय पसाय, बाह्याभ्यंतर संग तजाय। मुनि ह्वै कर गणधर सोमये, सप्त रिद्ध चवज्ञान सुलये ॥ ५ ॥ भव्य जीव जो थे बहु माय, मोक्ष मारग तिनकौं बतलाय। द्वादशांग रचना जिन करी, भवजीवनने हिरदै धरी ॥ ६ ॥ हथनापुर राजा कुर बंस, सोमप्रभ अरु जान श्रेयंस। धर्म श्रवणकर ह्वै वैराग, अंतर बाहर परिग्रह त्याग ॥ ७ ॥ दीक्षा लेकर गणधर थये, सर्व अंग रचने क्षम ठये। और बहुत भूपत थे जहां, लह वैराग संपदा तहां ॥ ८ ॥ भगवत मुख सुन धर्म महान, दीक्षा ले गणधर पद ठान। किंचित राय उपथ सब त्याग, मुक्ति

काज मुनि है बडभाग ॥ ९ ॥ भरत बहन जो ब्राह्मी कही, ताने भी शुभ दीक्षा लही। गणनी पद ताकों शुभ जोय, अर्यकानमैं मुख्य सु होय ॥ १० ॥

पायता छन्द—सुन्दरी बहन दूजी है, सो है वैरागिन सही है। इक साढी बिना जु सब ही, त्यागो परिग्रह तिन जब ही ॥११॥ बहु राजनकी जो रानी, तीर्थंकरकी सुन बानी। जिन चर्चनमैं चित दीनौ, शिव हेत सु संजम लीनो ॥ १२ ॥ श्रुत-कीर्त्ति जगत विख्यातो, सो श्रावक वृतमैं रातौ। सम्यकदर्शन कर मंडित, सो सील धरे सु अखंडित ॥ १३ ॥ अर अन्य बहुत भव प्राणी, तपकौ शुभ भार धराणी। कितने समदृष्ट जु थाई, कितने अणुव्रत गहाई ॥ १४ ॥ प्रियदत्ता श्रावका जानौ, सब तियमैं मुख्य सु जानौ। द्रगव्रत शीलादिक धारे, श्रावकके जो सुखकारे ॥ १५ ॥ बहुते जन जपतप कर ही, शुभ सील भावना धर ही। मुनि वीर्य अनंत जु नामा, तिन कर्म हते बल धामा ॥ १६ ॥ फुन केवल ग्यान उपायो, जिस कर सब जग दरसायो। इंद्रादिक पूजा कीनी, पहले तिन मुक्त जु लीनी ॥१७॥ कच्छादिक भ्रष्ट मुनिजे, तिनने जिन वचन सुनी जे। पथ मुक्त तनो जु लखाई, सबही जु कुलिंग तजाई ॥ १८ ॥ बाह्याभ्यंतर परिग्रह छारे, जिनमुद्रा धर तत्कारे। भगवत पोतो जु मरीचा, सुर हो मिथ्यात सुवीचा ॥ १९ ॥ केचित मृगेंद्र सर्पाई, तिनकाल लब्धि जो आई। दर्शन अरु व्रत धराई, श्रावक पदवी तिन पाई ॥ २० ॥

पद्धड़ी छंद–देवी सुदेव जे वचन काय, अरु मनुष पशु आदिक सुथाय। जिनवर शशितैं अमृत झराय, सो काललब्धि वस सब पिवाय ॥ २१ ॥ पीकर मिथ्या मत वमन कीन, जो नर्क थान कारण प्रवीन। दृग रत्नतनी प्रापत कराय, फुनि अंत मुक्ति पदवी लहाय ॥ २२ ॥ इम वचन जु सुनकर भव अनेक, मोहाग्नि हतो तिन ह्वै विवेक। तब भर्तराय कर नमस्कार, निजपुर प्रति कीनौ गमन सार ॥ २३ ॥ फुन बाहुबली आदिक जु शेष, निज योग सुव्रत धारे नरेश। पूजा करके फुन नमन ठान, निज निज ग्रह प्रति कीनो पयान ॥ २४ ॥

चौपाई–भरतराय जब जाते भये, सब जनके जु क्षोभ मिट गये। दिव्यध्वनि होती रह गई, प्रथम इन्द्रने भाषा चई ॥२५॥ दोनों हस्त हृदय पर धरे, बारबार सु प्रणमन करै। उठकर सभा मध्य हरि जबै, आरंभ कीनी अस्तुत तबै ॥२६॥ नाम स्थापना द्रव्य सु जान, क्षेत्र काल अरु भाव महान। इम चव विधि निक्षेप कहाय, सो छै भेद अस्तुतके थाय ॥ २७॥ तुम हो आदि देव गुण धाम, अष्टोतर सहस्र गुन नाम। तुम जिनेन्द्र जिन धोरी कही, जिन स्वामी जिनाग्रणी सही ॥ २८ ॥ जिन शार्दूल जिनेश जु कहो, जिनाधीश जिन उत्तम गहो। जिन राजा जिन जेष्ट बताय, श्री जिन जन पालक सुखदाय ॥ २९ ॥ जिनश्रेष्ठी जिननाथ सुधीर, जिन उन्नत जिनमल्ल सुवीर। जिन नेता जिन श्रेष्टा सार, जिनादित्य जिनदेव संभार ॥ ३० ॥ जिनपति जिन सु जिनेश्वर सूर, जैनेश नाम गुणगण भरपूर।

जिनाराध्य जिन पुंगव सही, जिनाधिपो जिन प्रभो गही ॥३१॥

तोटक छंद—जिन मुख्य जिनार्च सुवीर कहो, जिन सिंघ जिनेंद्रिन नाम गहो। जिनप्रेक्षा वृद्धि जिन उत्तर है, जिनमान्य जिनास्तुत योग्य सहै ॥ ३२ ॥ जिनप्रभू जिनेन्द्र नाम तुही, जिनपूज्य जिनाकांक्षो जु तुही। जिनेन्द्र तुही जिनसत्तम हो, जिनतुंग तुही जिन उत्तम हो ॥३३॥ जिन यो जिनकुंजर नाम मनो, फुन जिनाकार जिनभृत सुनो। जिनभर्ता जिनचक्री सु लखो। फुनि जिनाग्रह जिन आद्य अखो ॥ ३४ ॥ जिनचक्र-भाक जिनसेव्य तुमी, फुन जिनाकांत तुम अक्षदमी। जिनप्रीत जिनाधिप जिन प्रिय हो। जिनधुर्ष जिनाग्रम नाम कहो ॥३५॥ अधिराट जिननके सत्य सही, आरत हर अस्तुत योग्य तुही। जिनहंस जिनत्राता जु नमो, जिनधूर जिनचक्र सु ईस पमो ॥ ३६ ॥ जिनऋषी जिनात्मक नाम ठनो, जिनदातृ जिनाधिक सर्व मनो। जिनशांत जिनालक्षो गनिये, जिन आश्रित जिन उत्कट मनिये ॥ ३७ ॥ जिन आल्हादी जिनतर्क कहा, जिन-स्वामी जैन पिता सु महा। जैनाइए जैन संवाचित हो, फुन जैनीजनको पालत हो ॥ ३८ ॥ सुजिताक्ष तुही जितकाम तुही, सुजिताश्रय जितकंदर्प सही। सु जितेंद्रिय जितकर्मारि गनो, सुजितारि सुक्ल जितशत्रु भनो ॥३९॥ अक्रोध अलोभ जिता-त्मक हो, न राग न द्वेष न मोह गहो। नहि शोक न मान न दुर्मति है, सब वादी वृंदन जीतन है ॥ ४० ॥ जयो जिन क्लेश मुखेद जयो, आरत परणाम सु भूल गयो। पति नायक

यतिपत पूज्य सही, यति मुख्य यति स्वामी जु तुही ॥ ४१ ॥
यतिप्रेक्ष यतीश्वर यतीवर हो, यति श्रेष्ट सुजेष्ट हितंकर हो।
योगींद्र योगपति योगीसा. योगीश्वर योग सु पारीसा ॥४२॥

अडिल छन्द—योगा पूज्य योगांग योग वेष्टित सही, योगिसु भूपति जान योगिकृत है सही। योग मुख्य नमन मू योगभृत जानिये, है सर्वज्ञ जु सर्व लोकको ज्ञान है॥ सर्व तत्व त्रितसर्व सुद्रक अमलान है ॥ ४३ ॥ सर्व चक्षु सब राय सर्व अग्रम गनो, सब दर्शन सर्वेश सर्व जेष्टहि मनो। सब धर्मांग महान सर्व जगद्धिती, सर्व धर्ममय सर्वगुणाश्रत संजुती ॥ ४४ ॥ सर्व जीवकी दया करो तुम ही सदा, विश्वनाथ तुम श्रेष्ट विश्वविद जितमदा। विश्वा हो विश्वात्म विश्वकारक नमूं, विश्वबांधव जाननमें सब दुख वमूं ॥ ४५ ॥ विश्वेट विश्व पिता सु विश्वधर नाम है, विश्वव्यापी अभ्यंकर गुण धाम है। विश्वधार विश्वेस विश्वभूमिय महा, विश्वधीर कल्याण विश्व-कृत जी गहा ॥ ४६ ॥ विश्वबुद्धि अरु विश्व सु पारग जी कहा, विश्व सु रक्षणहार विश्वपोषक महा। जग कर्ता जग भर्ता जग त्राता गनौ, जगतमान्य जगजेष्ट जगतश्रेष्टो भनो ॥ ४७ ॥ जगज्जयी जगपती जगन्नाथो कहो, जगद्भुतो जग ध्येय जगतत्राता गहो। जगतसेव्य जगस्वामी जगतपूज्यो सदा. जगत सार्थ जगहितू जगद्वर्ती वदा ॥ ४८ ॥ जगचक्षु जगदर्शी जगतपिता वरो, जगत्कांत जगजीत जगद्दाता धरो। जगज्ञात जगवीर जगद्वीराग्रणी, जगतप्रात महाकर्मी महाज्ञानी धनी

॥४९॥ जगत्प्रिय महाध्यानी जान महाव्रती, महार्थज्ञ महाराज महातेजो जिती। महातपा महाक्षांत महादम जानिये, महादात महाशांत महाबल ठानिये ॥५०॥ महाकांत महादेव महापूतो प्रयो महायोगी महाकामी महाधनी श्रियो, महायशस्वी माहसूर सुभटो महा। महानाद महास्तुत्य महामह पति कहा, महाधीर महावीर महाबंधू गनो ॥ ५१ ॥ महाकार महासर्म महासर्मा ठनो, महासुयोगी जान महाभोगी भयो, महाव्रतको धार महीधरजी थयो ॥ ५२ ॥

गीता छन्द—महाधुर्य अरु महावीर्य जानो महादर्शी प्रभु तुही, तुम महाभर्ता महाकर्ता महाशील सुगुण मही। प्रभु महाधर्मी महामौनी महामेरु महाग्रतो, तुम महाश्रेष्ठी महाख्यात सु महातीर्थ महाहितो ॥ ५३ ॥ तब महाधन्य सु महाधीश्वर महारूप महामुनि, महाविभु महीकीर्तिक कहिये महादाता महागुणी। महारत महाकृपा कहिये महाराध्य महापति, तुम महाश्रेष्ट महार्थकृत हो महाक्षारि जगत्पती ॥ ५४ ॥ फुन महालोक महान नेत्र महाश्रमी जगवंद हो, शुभ महा योग्य महाशमी सु महादमी वृषचंद हो। प्रभु महेश समहेश आत्मा महेशन कर पूज हो, फुन महानंत महेश राजा महातृप्ति सदा हो ॥५५॥ तुम महाहर महावर जु कहिये महर्षि मन आनिये, प्रभु महाभाग महा जु स्थानी महांतक परवानिये। तुम महा केवललब्धि स्वामी महाकार्य बखानिये, शुभ महाशिष्ट सु महातिष्ट सु महादक्षहि जानिये ॥ ५६ ॥ वर महाचल महालक्ष जानो

महार्थज्ञ सु ठानिये, विद्वान महाबंद्य कहिये महात्मक सो मानिये । तुम हो महाव्रादि महेन्द्रार्चो महानुत हो सही, परमातमापर आत्मज्ञ सु परं जोती तुम गही ॥ ५७ ॥ पर अर्थ कृत परब्रह्मरूपी परम ईश्वर देव हो, तुम हो परार्थी परम स्वामी परमज्ञानी वे वहो। परकार्य धृत फुन सत्यवादी पराधीन सु नाम हो, तुम सत्य आत्मा सत्य अंग सु सत्य शासन धाम हो ॥ ५८ ॥ फुन सत्य अर्थ जु सत्य बागीशा जु सत्य धरो सदा, सत्यासत्य विधेस तुम हो सत्य धर्मासत वदा । सत्या-श्रयो सत्योक्त मत हो, तुम ही सत्य हितंकरा । सत्यासत्य सु तीर्थ तुम सत्यार्थ शुभ तीर्थंकरा ॥ ५९ ॥

जोगीरासा छंद–सत्य सीमंधर धर्म प्रवर्तक लोकनाथ तुम सेवे, लोकालोक विलोकन तुम ही तुम सेवा शिव देवे । लोक ईस तुम लोक पूज्य हो लोकनाथ सुखकारी, लोक पालनेहारे तुम हो मंगलके करतारी ॥ ६० ॥ लोकोत्तम तुम लोकराज हो तीर्थकार तुमसो हो, तीर्थेश्वर तीरथ भूतात्मा तीर्थं भाक मन मोहो । तीर्थाधिश हितार्थात्मा हो तीरथ नये करानै, तीर्थ आद्य तीरथके राजा तीर्थ प्रवर्तक छाजे ॥ ६१ ॥ निःकर्मा निर्मल सु नित्य हो निराबाध हितकारी, निर आमय निर उपमा जानौ भवजनके मनहारी। निष्कलंक निर आयुध कहिये हैं निर्लेप महानौ, निष्कल अरु निर्दोष बखानौ निरजरा गुणी जानौ ॥ ६२ ॥ निस्वप्नो निर्भय अतीवहै निःप्रमाव है तामा, निर आश्रय निर अम्बरस्वामी अनंत गुणनके धामा । निरातंक

निर्भूष जु स्वामी, निर्मल आश्रय कहिये। निर्मद निर अतीचार विराजै मोह नहि तिन गहिये ॥ ६३ ॥ निरुपद्रव तुम निर विकार हो निराधार पहचानो, पाप रहत तुम आस रहित हो निर्निमेष चख ठानो। निराकार निरतो निरतिक्रम निर्वेदो कह गावे, निष्कषाय निर्बंध सुनिस्प्रह विराजक तुम ध्यावे ॥ ६४ ॥ विमलात्मज्ञ विमल विमलांतर विरतो विरतां-धीशा, वीतराग जित मत्सर तुमही तुम ध्यावै जोगीसा। विभवो विभवांतस्थ तुमी हो विस्वासी तुम देवा, विगताबाध विशारद तुम ही करे सुरासुर सेवा ॥ ६५ ॥ धर्मचक्र धर धर्म तीर्थंकर धरमराज तुम ही हो, धर्म मूर्ति धर्मज्ञ धरमधी धर्म तनी सु मही हो। मंत्र मूर्ति मंत्रज्ञ जु स्वामी तेजस्वी तुम पाई, तुम ही विक्रमी तुम ही तपस्वी संजम रीत बताई ॥६६॥ वृषभो वृषभाधीशो तुम ही वृष चिह्नो भगवंता, वृषा कर्तु तुम वृषाधार हो वृष्टभद्रो अरिहन्ता। ईश्वर शंकर मृत्युंजय तुम ज्ञान दक्ष कहावो, अनागार यति मुनी शिरोमणि पुरुष पुराण महाबो ॥ ६७ ॥ अजितो जित संसार तुम्ही हो, सन्मति सन्मति दाता, तुम क्षेमी क्षेमंकर कुलकर कामदेवके घाता। विघन रहत निश्चल तुम ही हो सबके ईसा, तुम अछेद्य अभेद्य तुम हो तुम तिष्टो जग सीसा। सूक्षमदर्शी कृपामूर्ति हो कृपा-बुद्धिको धारो, इत्यादिक इक सहस अष्टये नामसु उरमें धारो ॥६८॥

पद्धड़ी छंद—इस अस्तुतको फल एम जोय, ये नाम सुमेरे सर्व होय। इन नामनको जो नित पठाय, सु वाके घर मंगल-

नित रहाय ॥ ६९ ॥ तुमरी प्रतिमाकी पूज ठान, अरु नमन करै जो धारि धान । ते श्रेष्ट पुन्य लहकर सदीव, शिवरमणीके होवै सुपीव ॥ ७० ॥ साक्षात तुम्हारे रूप जोय, जे करे स्तवन बहु मुदित होय । तिनके पुनकी महिमा जु सार, कवि कौन सके निज मुख उचार ॥ ७१ ॥ औदारिक दिव्य सुदेह जान, जो जगत सार अणुकर रचान । ते परमाणु तितने ही थाय, तब तुम सम क्यों कर रूप पाय ॥ ७२ ॥ तुमरे जो धर्म तने प्रसाद, स्वर मोक्ष सौख्य पावे अनाद । निर्वाण क्षेत्र पूजा महान, जो करे भव्यजिय पुन्यवान ॥ ७३ ॥ अथवा जो पंच कल्याण माह, तुम अस्तुत करतो धर उछाह । तिनकौं सुख सार सु प्राप्त होय, फुन स्वर्ग मोक्षको सहज जोय ॥ ७४ ॥ केवल दर्शन अरु ज्ञान जान, इनको जो स्तवन करे सुध्यान । तिन ही गुणकर सो जुक्त थाय, इम तुम महिमा जग रही छाय ॥ ७५ ॥ मोहारितनो तुम नाश कीन, फुनि भव्यनको संबोध दीन । जगके हितकर्ता हो वृषेश, तुमको नित नमहूं हे जिनेश ॥ ७६ ॥ प्रार्थना तबै इम इन्द्र ठान, करिये विहार किरपा निधान । भव जीव रूप खेती लहाय, सो पाप धूप करि सूक जाय ॥ ७७ ॥ धर्मामृत तुम मुखसे झराय, तब स्वर्ग मोक्ष फलको फलाय । जब श्री जिनवर करते विहार, तब धर्मचक्र आगे निहार ॥ ७८ ॥

चाल अहो जगतगुरुकी—मोह अरीकी सैन सकल ताप उपजाई, सन्मारग उपदेश करत सु नाश कराई । इम अरकी

हरि कीन जग संबोधन कारण, सुनकर बेग विहार करत भये जग तारन ॥७९॥ तब सबकी गीरवाण जय जय नंद कहाई, दुंदभि देव बजाय कोटक केत उड़ाई। किन्नर अरु गंधर्व नृत्य करे अरु गावै, भानु समान विहार बिन इच्छा जु करावै ॥८०॥ सत जोजन परमान होय सु भिक्ष सदा ही, प्रभुके चारों ओर होय न रोग कदा ही। नभमें गगन कराय जात विरोध नसाई, सिंहादिक जिय क्रूर मृग आदिक महताई ॥ ८१ ॥ जिन नही करे अहार अरु उपसर्ग न होवै, प्रभु इक आनन थाय चवदिश चवमुख जोवै। सब विद्याके ईश तनकी नहीं परछांही, नेत्रनकी टिमकार सो नही होय कदाही ॥ ८२ ॥ नाहि बढ़े नख केश नहि होवे दिन राता, इम दस अतिशय होय जब चत्र कर्म जु घाता। तब केवल उपजाय चौदह अतिशय थाई, देवनकृत सो जान श्री जिन पुन्य प्रभाई ॥ ८३ ॥ अर्द्ध मागधी भाष श्री जिनकी जु खिराई, सकल अर्थ दर्शाय दीपक सम सुखदाई। सब जिय मैत्री थाय गज सिंघादि अनेका, सर्प नकुल इक ठाम बैठे धार विवेका ॥ ८४ ॥ गोसुत निज सुत जानि सिंघन दूध पिलावै, सब रितुके फल फूल एके काल फलावै। दर्पण सम है भूमि चिकली पवन सुहावै, सबको परमानन्द धर्म सर्म सु बढ़ावै ॥ ८५ ॥ पवनकुमार सुदेव इक योजन परमाणा, तृण कंटक कांटादि वर्जत धरा कराना। गंधोदककी वृष्टि करे ते स्तनित कुमारा, विद्युत जहां चमकाय इंद्र धनुष विस्तारा ॥८६॥ जब प्रभु करें विहार चरण कमल तल थाई, कमल सुदेव रचाय

स्वर्णमई सुखदाई। सप्त सु पीछे ठान सप्त आगे सु रचाई, एक बीचमें जान इम पन्द्रह समझाई ॥८७॥ दोसो पचीस सर्व कमल जानौ सुखकारी, ऊंचे अंगुल चार गमन करे हितकारी। शाल्यादिक जो धान्य सब उपजे सु जहां ही, है निरमल आकाश दिशा निर्मल सु तहां ही ॥ ८८ ॥ इंद्र हुकमको पाय देव सु भव्य बुलावे, आवो दर्शन हेत इम सुनकर बहु आवे। रत्नमई जु दिपंत आरे सहस विराजे, मिथ्यातमको हंत धर्मचक्र पुनि छाजे ॥८९॥ आदर्शादिक आठ मंगलद्रव्य जु सोहै, देव करे जयकार धोक देत मन मोहै। चौदह अतिशय येम जग अचंभ कर्तारा। देव करे धर भक्ति महिमा अपरंपारा ॥९०॥ चौतिस अतिशय सर्व प्रातिहार जब सु जानौ, अनंत चतुष्टय धार इम छालिसगुण ठानौ। वृष उपदेश कराय बचन अमृत वर्षायो, जिन भवकर्ण सुधार मुक्ति तिन पहुंचायो ॥ ९१ ॥ दर्शन ज्ञानचरित्र आदिक रत्न सु जोई, भव्यनको वह देय कल्पवृक्ष सम होई। देश और पुरग्राम सबमें कियो विहारा, जो अज्ञान अंधियार तसु हरकर उजियारा ॥ ९२ ॥ दिव धुन किरण पसाय मुक्ति सुपथ दर्सायो, जगमें कियो उद्योत सूरजवत मन भायो। जिनरूपी जु मेघ धर्म अंबु वर्षायो, चिरके प्यासे भव्य चातक वत सु पिवायो ॥ ९३ ॥ दिव्यध्वनि सुभ जान जहां विजली चमकाई, प्रभुको अंग अनूप इंद्र धनुष सम थाई। ज्ञान सु जलकी वृष्ट होत भई सुखदाई, भव्य खेतकी वृद्धि सुर शिवफल उपजाई ॥ ९४ ॥ अंग बंग सु कलिंग काशी

कौशल देशा, मालव और आवन्ति कुरु पंचाल महेशा। देश दशार्ण जु मुक्य मागध आदि विशेषा. विहरे आरज खण्ड मोक्षमार्ग उपदेशा ॥ ९५ ॥ भ्रमण कियो चिरकाल धरणी-तलके माही, बहु भव्यन सम्बोध मुक्तिमें पहुंचाही। मुनि सु अर्जिका जान श्रावक श्रावकनी हैं. संघ चतुर्विध एम सब कैला-श ठनी हैं ॥९६॥ अति ऊँचो गिर सोय जास शिखर सुन्दर है, पूरववत मंडान समोसरन सुर करहै। वृष उपदेशक राय द्वादश सभा सु मांही, त्रिजगद्‌गुर भगवान सो तिष्टे सु तहां ही ॥ ९७ ॥ गणधर जिनके साथ सम्बोधे भवजीवा, आरज क्षेत्र विहार कर कैलाश गहीवा। वंदूं सो वृषभेष जा अस्तुत सुर करहै, सो मुझको दो ज्ञान जाकर मुक्ति सुवरहै ॥ ९८ ॥

सवैया २३–तीर्थंकर पहले जो अनुपम, भव्य लोकके शिवदातार। असम गुणनकी निध सो जानौ, धर्म कहो जिन द्वै परकार ॥ ९९ ॥

गीता छन्द–'तुलसी' जु सीता गौर जापति देखनो नीको भयो, कोई जु आयुधतान ठाढे कोई तिरिया कर गहो। उनको स्वरूप जु देखनेकर भई तुम पहचान है. तुम देखते वह कुछ जु नाहीं यह जु चितमें ठान है ॥ १०० ॥

दोहा–बहुत दिना इस आयुके बीते तुम परभाव। शेष आयु प्रभु चरण ढिग, जाय यही उर चाव ॥ १०१ ॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे सकलकीर्तिविरचिते भगवान् सहस्रनाम स्तुति तीर्थविहारवर्णनोनामचतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अथ पंचदश सर्ग।

दोहा—आदितीर्थ प्रगटाइयो, दियो धर्म उपदेश। जग उद्धारणको चतुर, नमूं स्वहित वृषभेश ॥ १ ॥

अडिल—अब सु चक्रधर चक्र तनी पूजा करी, श्री जिनको अभिषेक कियो पूजन भरी। दीन अनाथ जननकौं दान सु बहु दियो, पुत्र जन्मको उच्छव बंधुन सह कियो ॥ २ ॥ तब प्रयाणकी भेरी बजवाई सही, स्नान कियो फुन वस्त्राभूषण बहु गही। स्थापित रत्नने निर्मापो शुभ रथ तबै, कंचनमय मणि जडित महा ऊंचो जबै ॥ ३ ॥ तिसमैं ह्वै असवार चक्र-नायक ठनौ, षटविध दल संयुक्त महुरत शुभ बनौ। चले दिग्विजय हेत पूर्वदिश जीतने, उद्यम कियो महान शक्र जिम कीडने ॥ ४ ॥ चक्ररत्नको तेज नभस्तल पूरियो, आगे आगे जाय सुरन रक्षित थयो। चक्र सु पीछे जान नवौनिध चलत है, नवसहस्र सुर रक्षा जाकी करत है ॥ ५ ॥ दंडरत्न ले हाथ सेनपति चालियो, आगे आगे जाय मार्ग सम कर दियो। सहस देव रक्षा उसकी करते जहां, निराबाध ह्वै सैन्य चली सुखसों तहां ॥ ६ ॥ सरदकालमैं सरद जु लक्ष्मी बन रही, फूले तहां पयोज लखे ग्रामादि ही। देखे चक्री मुदा शालिको खेत ही, गंगा तटपर फले लखो जल स्वेत ही ॥७॥ सारथि तब यौं कहैं सुनौ महाराय जू, गंगा बनकी बरनन जो सुखदाय जू। मच्छादिक बहु चकवे केल जहां करैं, स्थपित रत्नग्रह रचो तास लखिये खरे ॥ ८ ॥

पायता छंद–चांदीके थंभे तुंगा, तापे रच सौध अभंगा। जो दूरथकी दिखलाई, षट मंडप सोई रचाई॥ तिस देखत जन ये जाने, मनु स्वर्ग चढन सौ पाने॥९॥ मध्यानसमयके मांही, जब भानु किरण फैलाहीं। तब छत्ररत्नकृत छाया, रथमें सवार नरराया॥१०॥ जहां राज मजूरन आई, ईंटा चूनान लगाई। जो स्थापित रतन नृप धरहै, सुर सहस सुरक्षा कर है॥११॥ चौरासी खनको महला, वो देव बनावे सहला। जिसके बहु द्वार विराजे, नाना रचना जुत छाजे॥ १२॥ बहुजन कर दुर्गम सोई, आवे जावे बहु लोई। जहां रचिये बहुत बजारा, जहां रत्नादि व्यवहारा॥ १३॥ तिस महैल विषै चक्रेशा, लीला जुत कियो प्रवेशा। नृप मुकटबन्ध संग आये, तिन सबको भी उतराये॥१४॥ फुन चक्री कर स्नाना, पूजन कर भोजन ठाना। सुखकर तिष्ट नृपराई, सब ही नृप सेव कराई॥ १५॥ पूरव मंडल जो थाई। ताके सु भूप सुखदाई, तिन सब हीको बस कीना, कन्या रत्नादिक लीना॥१६॥ इक दिनको सुन सु विधानो, परभातक्रिया शुभ ठानो। गज विजय सु पर्वत नामा, तापर चढ़कर गुण धामा॥ १७॥ पूरव दिश जीतन काजे, उद्यम सु कियो महाराजे। शुभ चक्रदंड पुर धरही, इस विध प्रयाण नृप करही॥ १८॥

तेगुरु मेरे उर बसौ इस चालमें–चक्ररत्न जु अलंब है, अरि समूह हरतार। दंड रतन अर दंड दे सबमैं ये द्वै सार, चक्री पुन्य उदै लखो॥ १९॥ सहस सहससुर रक्षते, इक इक रतन सु

जान, इन सेती जय होय है। सब चौदह मन आन, चक्री पुन्य उदै लखौ ॥ २० ॥ सेनापति कहतौ भयौ, सुन सेनाके लोग। दूर सु चलनौ आज है, नहि विलंब तुम जोग, ॥चक्री पुन्य० ॥ २१ ॥ डेरे तीर समुद्र है, करो सितावीकाज। चक्री तो आगे गयो, ढील करो मत काज ।।चक्रीपुन्य०॥२२॥ समुद् तलक चलनौ सही, डेरे गंगाद्वार। इम बच सुनकर कटक सब, शीघ्र चलो तत्कार ॥ चक्री पुन्य० ॥ २३ ॥ मारगमैं बहु देश हैं, नदी जु पर्वत थाय। बहुतेरे बन कोट हैं, तिन सबकौं जु लखाय ॥ चक्री पुन्य० ॥ २४ ॥ मारगमें आये सही, जे राजा अधिकाय। रत्नादिक बहु वस्तु शुभ, नमकर भेट कराय ॥ चक्री पुन्य उदै० ॥ २५ ॥ देश देश प्रत आवते, नाना विधके राय। चक्रीकी किरपा चहै, भेट सु देवे आय ॥ चक्री पुन्य० ॥ २६ ॥ शस्त्र लियो नहीं हाथमैं, नाही धनुष चढ़ाय। पूर्व दिशाको जीतियो, केवल पुन्य प्रभाय ॥ चक्री पुन्य० ॥२७॥ बनमें बनचर बहुतसे, हस्तीदंत ल्हुलाय। बहु गज मोती लाईया देकर नम नृप पाय ॥ चक्री पुन्य० ॥२८॥ केश सु चमरी गायके, लाये अरु कस्तूर। म्लेच्छ देशके भूपति, आय नमे सब सूर ॥ चक्री पुन्य० ॥ २९ ॥ चक्रीके आदेशतैं, सेनापत तब जाय। दुर्ग सहस्रों साधिया, तहांके नृप जीताय ॥ चक्री पुन्य० ॥३०॥ तिनकों धन बहु लाइयों, रतन जु लायो सार। दीप अंतके राय जो, नम आज्ञा सिरधार ॥ चक्री पुन्य० ॥ ३१ ॥ बहु मारग उल्लंघके सब ही सेना संग।

निकट समुद्र जु पहुंचिया, गंगा द्वार अभंग ॥ चक्री पुन्य० ॥ ३२ ॥ महासमुद्रको देखियो, कठिन प्रवेश सुजान । गंगाके उपवन विषै, सेना सब ठैरान ॥ चक्री पुन्य वदै लखो ॥३३॥

चाल वंदौ दिगम्बर गुरुचरनकी वीनती वागीता तहां कटक किंचित सकुच उतरो-भूमि थोड़ो जान धक्का जु मुक्को होय तहां जहां भीड बहुत लहान। जंबू सुदीपहि वेदकांतर बहुत पादप थाय। तिनकी पवन गंगा परसकर लगी अति सुखदाय ॥३४॥ तब सकल दल सुखमग्न होकर उतरियो इतठाम, तब चक्रवर्त जु साधियो जो देव बहु गुणधाम। उपवास त्रय करि बैठयो शुभडाभ सेज बिछाय, शुभ मंत्र आराधन कियो। तब देवता वस थाय ॥३५॥ तिन आनकर शुभ रथ दियो, अर दिये घोटक सार। जो जल विषैं थल जेम जावैं बहु दिये हथियार, तब चक्रवर्त सु पूज्य प्रभुकी करी बहु सुखकार। सेनापतिकौं सौंप रक्षा कटककी मुदधार ॥ ३६ ॥ नाम अजितंजय सुरथ है तास पर जु चढाय, जो दिव्य शस्त्रन कर भरो नृपसुर दियो जो आय। ग्रह जेम गंगा द्वार माही भये धीर महान, कल्लोलमाला सहित देखो क्रूर जलचर थान ॥ ३७ ॥ शुभ लवण समुद्र अगाध तिस चक्री सु गोपदमान, रथ लसे पोत समान तब ही पुन्य उदय सुजान। चक्री तनो अति पुन्य माहो लखो भवि जिनसार, दुस्सहको सुनत शंका रथ सु लीलाधार ॥ ३८ ॥ निर्विघ्न रथ द्वादश सु योजन जाय कर ठैराय, तब वज्र कांड धनुष सु चक्री छोड़ियो मुद थाय। मानो समुद्र चलियो तथा सब

जगत क्षोभ लहाय ॥ तिसना दुस्सह कौ सुजात शंका सुखेचर लाय ॥ ३९ ॥ तिस बाण मध इम वर्ण लिखये सुनो सब जन श्रेष्ट, मुझ भरतचक्री नाम जानो वृषभ नंदन जेष्ट। पूरव दिशा मुखधार करके छोड़िओ जब बाण, सो पड़ो मागध सभा माही सर्व क्षोभ लहान ॥ ४० ॥ मानो प्रलयकी पवन सेती समुद अति कोपाय, अथवा सु भूमहि कंप हुवो सकल इम चिताय। मंत्री तबै कहते भये सुनिये अमरपति एम, इस बाणको यो शब्द हुवो अरुन कारन केम ॥ ४१ ॥ जिसने जु सर ये छोड़ियो कोई स्वर्गवासी देव, तिसकी जु सेवा करन चहिये यही याको भेव। इनके वचन सुनके जु मागध तबै अति कोपाय, कहतो भयो निज सचिव सेती तुम कहा डरपाय ॥ ४२ ॥ बहुते कहनसे काज क्या, धीरज रखो उरमाह। मम भुजा दंडनको पराक्रम देखना रणठांह ॥ इक बाण छोडन मात्र करके बस करूं मैं ताह, धनके जु बदले निधन देहूं मरनचूरू चाह ॥ ४३ ॥ मम कोप अग्नि विषैं मुई धन तासको कर बेग, तब वृद्ध सुर कहते भये जासे नसे उद्वेग। हे देवको पशु योग्य नाही तुम करन इसवार, दोनों स लोक विनासकर्ता कोप यह दुखकार ॥ ४४ ॥ कोई महा बलवान जानो जास छोड़ो वान, जिन वचन मांहि यू कहो ताकौं सुनो सु कथान। शुभ भरत नामा आदि चक्री होय है बलवान, जाकी सुकीर्ति दशो दिशामें फैल है शुभ जान ॥ ४५ ॥ अन्य हि पुरुषमें एमशक्ति बाण मोचन नाह,

तुम पढ़ो इसमें लिखे अक्षर नाम परघट थाय। इस बाणकी पूजा करौ शुभ गंध अक्षत लाय, तुम जाइ आज्ञा ग्रहण करके यही तुम सुखदाय ॥४६॥ पुन चक्रधर पूजा करौ नातर व्यतिक्रम होय, पूज्यनसु पूजा लंघने करदुःख होय व होय। इम तास वच सुनकर सु मागध स्वस्थताकौ पाय। शुभ ज्ञान अवधि थकी सु लखके इम विचार कराय ॥ ४७ ॥ इम कुल विषै जो देव हुवौ करत चक्री सेव, अब प्रथम चक्री यह भयौ जिस नाम भरत लखेव। तिसकी सु जान उलंघ आज्ञा इसी भव लह मोख, त्रिजगत प्रभुकौ पुत्र कहिये त्र पद धर गुण कोख ॥ ४८ ॥ इक इक सु पदवी धार पूजन जोग होवे संत, यह त्रपद धारक इने क्यौं नहि पूजिये बहु भंत। इम समझ बहु सुर साथ ले मागध चलो तत्काल, भरतेश पास सु जायकर जुग जोड नमियो भाल॥४९॥ जो बाण चक्रीने सु छोड़ो ताइ सुर सिरधार, रत्नन पिटारी माइ रखकर लाइयो निजलार। सो बाण चक्रीकौ दियौ अरु एम वचन कहाय, तुम चक्र उत्पत जब भई तब हमैं आवन थाय ॥ ५० ॥

त्रोटक छन्द—अब मुझ अपराध क्षमो सब ही, इम कह बहु रत्न दियो तब ही। जो सूरजकी समजो तल्से, मुक्ताफल थूल दिये जु इसे ॥ ५१ ॥ कुण्डलकी जोड़ी भेट करी, तिस क्रांत थकी दिश सर्व भरी। अपने सेवक मध मोह गिनौ, जो आज्ञा हो मैं वेग ठनौ ॥ ५२ ॥ इम कहकर देव नमाय जबै, सत्कार सुलह ग्रह जाय तबै। तिस कारजको करके सु जहां, सर्वेश फिरे उलटे सु तहां ॥ ५३ ॥

पद्धड़ी छन्द–अंबुध मध बहु आनंद पाय, बहु थूल मत्स आदिक लखाय । नाना कौतूहलको सुठान, निर्विघ्न चले अति पुन्यवान ॥ ५४ ॥ तब महासमुद्र उल्लंघ कीन, गंगा सुद्वार आये प्रवीन । तहां खड़े सजन भूपत जु थाय, जय हो नन्दो इम सब कहाय ॥ ५५ ॥ आनंदित हो निज थान आय, प्रवेश कियौ निज कटक जाय । तहां नृप सामंतादिक सु आन, बहु जय जयकार कियो महान ॥ ५६ ॥ निध रत्न आदि सब ही गहाय, सब जन सुपुन्य फलको लखाय । मघवा समान लीला सुधार, निज गृहमें कर प्रवेश सार ॥ ५७ ॥

गीता छन्द–तब वृद्ध नृप आनंद हो सामंत स्वजनादिक सबै, देते भये सु असीस बहुती चक्रवर्तीको तबै । नन्दो सु वृद्धो चिरंजीवौ एम सब कहते भये, पुन चक्रधर पूजा करन अर्हंत मंदिरमें गये ॥ ५८ ॥

अडिल–तब प्रयाणको पटह सु बजवायो सही, पूर गयो नभ अंगन अरु सारी मही । दक्षिण दिश जीतन उद्यम चक्री कियो, सेन्या ले सब संग खेचर भूचर लियो ॥ ५९ ॥ एक ओर तो लवण समुद्र सु जानिये, एक ओर उपसागर खाड़ी मानिये । तिन मध चक्री सैन चलत शोभाय है, मानो तीजो समुद्र चलो यह जाय है ॥ ६० ॥ हस्ती रथ अरु अश्व पयादे सोहते, देव और विद्याधर सब मन मोहते । इम षट विधकी सैन समुद्र तट चल रही, नीत सुजलकर आज्ञा बेल सुफल लही ॥ ६१ ॥ नृपगण आदिकके मस्तक चढ़ती भई, प्रजा और

राजनकी देखी दुखमई। निज हासिल कर माफ सबै सुखिया कियौ, तब सब परजा चक्री की थुति जंपियौ ॥ ६२ ॥

चाल अहो जगतगुरुकी-एक पुन्य है साथ दुजो चक्र सु जानौ, दोनौ साधक जान सैन्य विभूति प्रमाणौ ॥ हरि प्रयाणके माह बहुते नृपत सु आवै, आज्ञा सिरपर धार नमकरके सुख पावैं ॥ ६३ ॥ देश अवंती जान कुरु पंचाल जु सोहै, काशी कौशल ठान तिनके नृप मन मोहै। वैदर्भादिक देश इनके भूप प्रचंडा, विना जुद्ध ही जीत दास किये बलचंडा ॥ ६४ ॥ कच्छदेश अरु वत्स पुङ्ग सु गौड विराजे, तहांके नृप सुखकार आज्ञा धर हित काजे। देश दशार्ण महान अरु काश्मीर सुजाई, मध्य विषै बहु देश सबही बस करवाई ॥ ६५ ॥ भीलनके जो देश सेनापत वस कीने, ते सब आज्ञा धारकर उर हरष नवीने। सरिता बहुत अगाध पर्वत बहु उलंघा, नाना देशन माह चक्री फिरत सुरंगा ॥ ६६ ॥ जहां जहां ये जांहि उपमा रहित जु सेना, तहां नमैं सब आय और कहैं मृदु बैना। क्रम कर सैन्य चलंत सुन्दर बन पहुचाई, वैजयंत जहां द्वार लवण समुदको थाई ॥ ६७ ॥ तहां बन षट-विधसैन उतरी अति सुख पाई, कटक सुरक्षा सर्व सेनापती सो पाई। पूरववत तब जाय रथपर होय सवारा, अम्बुधके मध जाय वैजयंत शुभ द्वारा ॥ ६८ ॥ बाण सु मोचन कीन चक्रीने तिह काला, क्षणभरमें सो जाय देखो पुन्य विशाला। अधिप सुअन्तर दीप वरतन देव जु सोहै, व्यंतर अधिपत सोय भक्ति थकी जुत मोहै ॥ ६९ ॥

चूडामणि जो रत्न अर कटि सूत्र जु लायो, हीरादिक बहु रत्न देकर नमन करायो। जहां चक्री जय पाय सेना थान सु आये, पुन्य उदय कर रत्न बिन उद्यम बहु पाये ॥ ७० ॥

जोगीरासा—अब पश्चम दिशके जीतनको उद्यम कर महाराजा, पहले प्रभूकी पूजा कीनी चले चमू सब साजा रथ हस्ति अरु अश्व पयादे सब ही सैन चलाई, नदियोंमें कर्दम निकली जब पर्वत मारग थाई ॥ ७१ ॥ बहुते पर्वत नदी उलंघत बहुत देश मध जाई, कर प्रयाण विंध्याचल देखो नदी नर्मदा थाई। तहां तिष्ट चक्री सुख कारन जहां बनचर बहु आई। वन महौषधी गज मुक्ताफल भेट किये अधिकाई ॥ ७२ ॥ नदी नर्मदा लंघन करके पश्चिम दिश सु चलाई, तहांके सब राजनको वश कर देवन कर पूजाई। चक्र सुदर्शन ही सब राजा मनमें भय अति धारो, चीन पट्ट अति सूक्षम देकर आराधन सुखकारो ॥ ७३ ॥ जल थल मारग हो सेनापति बहु साधे भूपाला, जो तीर्थंकर होनेवाले तिनकी जय गुणमाला। प्रत प्रयाण जो वस्तु मनोहर रत्नादिक बहु आवे, लवलसमुद्रको सिंधु द्वार है जो देखे सुख पावे ॥७४॥ सिंधु नदी तट वन अति सुंदर तहां कटक उतरायो, तहां सब ही जन स्वस्थ होयकर सगरे काज करायो। धर्मचक्र अधिपत जो जिनवर तिनकी पूज करंते। गंधोदक मस्तकपर धरकर जैजै रव उचरंते ॥७५॥ तब विद्यामय लेय शस्त्र शुभ रथ मांही बैठायो, मानों पुन्य जहाज सु चढ़ियो लवणोदधि प्रति धायो। सिंधु द्वार प्रवेश सु

करके शर छोडो तत्कारा, नाम प्रभास जु व्यंतर अधिपति तांह जीत जस धारा ॥ ७६ ॥ दीप प्रभास जु नायक जानों सो आयो इन पासा, मुक्ताफल माला अति मोटी देकर कर अर दासा। संतान जात पुष्पनकी माला सो गलमैं पहराई, हेम सुमुक्ता दो जालनकर चक्री अति शोभाई ॥ ७६ ॥ इंद्र समानी लीला करते सिंधु द्वार सो आई, सिंधु नदीकी शोभा निरखत निज आवास सुजाई। अब उत्तरदिश जीतन काजे उद्यम कर महाराजा, श्री जिनवरको ध्यान सु कीनों पटहादिक बहु बाजा ॥ ७८ ॥

चाल अठाई पूजाकी—मारगमैं जो थे राय ते सब बस कीने, विजयार्द्ध निकट तब जाय तहां डेरे दीने। प्रभु देखो गिर सु उतंग कूट सुबन सोहै, बनदेवी बहुत सुरंग देखत मन मोहै ॥ ७९ ॥ तहां वनके अंतर भाग मध्य सु जान सही, पृथ्वीतल धर अनुराग चक्री तिष्टे तहीं। तहां थित चक्रीको जान सुर बिजयार्ध जबै, बहु वस्त्राभूषण ठान नमियो वेग तबै ॥ ८० ॥ चक्री सुरको बैठाय बहु सत्कार कियौ, तब निर्जर बहु सुख पाय इम वच कहत भयौ। मम बिजयारध है नाम तिष्ठत कूट विषैं, इस पर्वतपै सुर थाय मम आज्ञा सु लखै ॥ ८१ ॥ इम कहकर समुद सु जाय बहु जल घट लाओ, अभिषेक कियो सुर आय बाजे बजवायो। पुन रत्नमई भृङ्गार छत्र प्रभा धारी, जुग चामर विष्टर देय कीनी मनुहारी ॥ ८२ ॥ बहु रत्न सु भेंट कराय बहु थुत कर नमियो, चक्रीकी आज्ञा पाय निज

आवास गयो। विजयारथ जब जीताय दक्षण भरत जयो, इम जान सुगंध मगाय चक्र सु पूजन ठयो ॥ ८३ ॥ तहांतैं सब कटक चलाय द्वार गुफा आये, रूपाचल दक्षिण भाय कटकसु उतराये। तहां सिन्धु नदी तट जान बन है सुखदाई, तहां प्रभु पूजनको ठान हस्त सु जोड़ाई ॥ ८४ ॥ सिरसे ती नमन कराय भक्त करी भारी, सुवरण मणि मुक्तक लाय पूजे भर थारी। कुंकम अर अगर मंगाय कर्पूरादि लिये, बहु सुंदर रत्न चढाय जिनवर पूज किये ॥ ८५ ॥ उत्तरके जीतन काज कुरराजादि ठये, क्रतमाल नाम सुरराज आयो हर्ष हिये। चक्रीको नमन सु ठान बैठो सुखदाई, प्रभुदेव छुद्र हम जान तुछ पुन भोगाई ॥८६॥ तुम महापुन्य योगाय देवन देव तुही, तुमको नरसुर पूजाय हमतौ नाम गही, मेरो क्रतमाली नाम मर्म सु जानत हूं। विजयार्द्ध कूट मुझ धाम भेद बखानत हूं ॥ ८७ ॥ वह गुफात मिश्रा जान द्वार सुर बोलाई, सेनापति दंड महानता सुनियो गाई। भूषण सु चतुर्दस लाय दीने सुखदाई, फुन निज आवास सुजाय नम थुत उचराई ॥ ८८ ॥

चाल करुणा लौजी महाराज सेवककी करुणा लो जिनराज—

सेनापत तब वजायकै दंड सु करमे धार, द्वार गुफाको खोलियो धीरज धार अपार। लखो भवचक्री पुन्य विशाल, चक्रीपुन्य विशाल लखो भवचक्री०॥८९॥ अग्नि निकली गुफासे, षट महीना सुरराय। तब तक साधे सेनपत म्लेच्छ खंडके राय, लख भव चक्री पुन्य बिशाल ॥ ९० ॥ पश्चिम दिशके राय जो, आज्ञा

सिर पर धार। फुन सेनापत आइयौ, सिंधु नदी तटसार॥
लखो भवचक्री पुन्य विशाल॥ ९१॥ राय म्लेक्षन कन्यका
दीनी बहु युत ठान, अर बहु रत्नादि दिये। सब लाये
इस थान॥ लखो भवचक्री पुन्य विशाल॥ ९२॥ म्लेच्छ
देशके मनुष जो, धर्म करम नहिं धार। और जात आचार
सब आरजकी सम थान॥ लखो भवचक्री पुन्य विशाल
॥९३॥ गुफा जबै सीतल भई, तब सेनापति आय। दूर तलक
अंदर गयो, सोधन कियौ सुभाय॥ लखो भवचक्री पुन्य
विशाल॥९४॥ चक्रवर्ति ढिग पहुंचियो, सब भूपत है साथ।
सबही कर बहु वीनती, बहु नमायो माथ॥ लखो भवचक्री
पुन्य विशाल॥ ९५॥ कन्या रत्नादिक तबै, सब नृप भेट
कराय, चक्री तिन आदर कियौ, ताकर वो सुख पाय॥ लखो
भवचक्री पुन्य विशाल॥ ९६॥ म्लेक्षरायने पाइयौ, चक्रीसे
सत्कार। नमकर नृपके पदकमल, गये सु निज निज द्वार॥
लखो भवचक्री पुन्य विशाल॥ ९७॥ औरे दिनचक्री चले,
जयहस्ती असवार। सब सेना चलती भई, बहुते नरपत लार॥
लखो भवचक्री पुन्य विशाल॥ ९८॥ सेनानी कै सोधियो,
पूरब मारग जाय। तिस मारग चलती भई, सब ही सेना भाय॥
लखो भवचक्री पुन्य विशाल॥ ९९॥ रूपाचल सोपान पथ,
गये गुफाके द्वार। वसुयोजन ऊंचो सही, चौड़ो द्वार सुसार॥
लखो भवचक्री पुन्य विशाल॥ १००॥ वज्रकपाट सु द्वै तहां,
गुफा लंबाई जान। जोजन परम पचीसकी नामत मिश्रा ठान॥

लखो भवचक्री पुन्य विशाल ॥ १०१ ॥ अंधकार तहां बहुत है, यह चक्रीने जोय। सेनापतिसे यौं कही, रचो उपाय सु कोय, लखो भवचक्री पुन्य विशाल ॥ १०२ ॥ काकणि अर मणि रत्नसे, गुफा भीतमैं थाय। दो दो शशि सूरज लखो, प्रत योजन सुखदाय॥ लखो भवचक्री पुन्य विशाल ॥१०३॥

चाल बाईस परीसहकी—तिनकी प्रभा किरण जो फैली ताकरिके तम सर्व गयो है। गुफा मध्य प्रवेश कियो तब द्विधा कटकने भेद लयो है॥ सिंधु नदीके पूरव पश्चिम दोनों तट मध्य गमन भयो है। चक्र महादैदीपमान शुभ सेनापति जुत अग्र ठयो है ॥ १०४ ॥ निर्बाधा चाली सब सेना दौनौं पथ सुन्दर अधकारी। अर्द्ध गुफामैं चक्री पहुंचे तहां सब सेना रुकी अपारी॥ तहां उन्मग्न जली सुनदी है अरु निमग्न जल दूजी धारी। पूरव पश्चमसे वो आकरि सिंधु नदीमैं मिल सुखकारी॥१०५॥ विषम नदी दोनोंको लखकर चक्रीसैन तहां ठेगाई। सेनापतसे एम कहा जब रचौ उपाय सुबुद्ध लगाई॥ इम सुनकर जयकुमर सु बोलो बनमैं तैं बहु वृक्ष मंगाई। तिनके थंभ लगाय मनोहर तापे काष्ट राम भरवाई ॥ १०६ ॥ सब कारज कीने सेनापति सेत तबै अति दृढ़ बनवायौ। तिस पर होकर सारी सेन्या नदियनसे उतरायो॥ अनुक्रमसे कंयक दिन चलकर गुफा द्वार सब कटक जु थायो। मानों गुफा इन निगल गई थी कठिन कठिनताने उगलायो॥ १०७॥ गुफा माह गरमी बहु पाई तातैं खेद बहु मन आनो। बाहर सीतल पवन लगी जब तब

ही सबको दुख पलानो॥ स्वस्थ होय तहां वनसे निवसे सेनापति तब कियो पयानो। पश्चिम म्लेच्छ खंडमें जाकर तिन सब नृपको सेवक ठानो॥ १०८॥ मध्य म्लेच्छ खंड हि जीतनको चक्रीने जब उद्यम कीनो। कितनी दूर गये भरतेश्वर म्लेक्षरायने तब सुन लीनो॥ इक चिलात आवर्त सु दूजो होय तयार लड़नके ताई। चार प्रकार सेन सब सजकर नृपके संग तबै चलवाई॥ १०९॥ तब ही मंत्री चतुर नमन कर रण निषेध कर बचन कहाई। हितकारक अरु सत्य मनोहर ऐसे वचन कहे सुखदाई॥ विन समझे जो काज करत तिन लक्ष्मी हान पराभव थाई। इस राजाको नाम कहा है कितियक सेन कहांतें आई॥ ११०॥ यह सब बातें पूछन चहिये पीछे जुद्ध करन मन धारो। रुपाचलको लंघि जु आयो सो सामान्यन भूप निहारो॥ महत्पुरुषकर करन विरोधहि सो तो प्राणघात कर्तारो। जो कुलदेव तुमारे कहिये तिनको ध्यान करो सुखकारो॥११ १॥

चौपाई—नागासुर अर मेघकुमार, तिनको ध्यान धरो हितकार। आराधन पूजा तसु करो, तातै शत्रु हानि जय वरो॥ ११२॥ इम मंत्री वच सुन तत्कार, देव उपासन कीनी सार। तब ही आये देव तुरंत, जलदाकार उदक वर्षंत॥ ११३॥ तीव्र गर्जना करते भये, महापवन सु चलावत थये। बहुत सुवर्षा तब हि कराय, चक्रीको दल लीनो छाय॥ ११४॥ समुद तुल्य सोवन भयो ताम, चक्रीने इम कीयो काम। चर्म रत्नकों दियो बिछाय, ऊपर छत्र रत्न ढकवाय॥ ११५॥

नव बारह योजन विस्तार, रही सेन अंडवत धार। चक्र रत्न उद्योत सु कीन, द्वार चार जहां रचे प्रवीन ॥ ११६ ॥ बाहर जयकुमार बैठाय, रक्षा जलसे करे अघाय। सप्त रात्रि दिन जल वर्षाय, देवन कृत सो नाहि थंभाय ॥ ११७ ॥ चक्रीके पुनके परभाय, सेनाको कछु खेद न थाय। सप्त दिवस पीछे मुद होय, स्थपित रत्न रथ रचियो सोय ॥ ११८ ॥ तामें बैठ जय सुकुमार, सेनापत नभ करत विहार। है अक्षोभ सु धीरज धार, बहु दिव्यास्त्र सु ले तत्कार ॥ ११९ ॥ देवन संग संग्राम कराय, जो कायर जनको भयदाय। कल कल शब्द बहुत तब भयो, हस्त खड्ग बहुते नृप लयो ॥ १२० ॥ तब चक्रीको हुकम जु पाय, जो गण बद्ध जात सुर थाय। हुंकारादिक तर्जन ठान, करत भये सो युद्ध महान ॥ १२१ ॥ जयकुमार तब पुन्य पसाय, मेघ समानो अति गर्जाय। बाणवृष्ट रणमाह सु ठान, धीर सिंहवत अति गर्जान ॥ १२२ ॥ पुन्य उदै कर नभके मांह, नागकुमारनको जीतांह। पुन्य उदय कर होवे जीत, तातैं पुन्य करौ धर प्रीत ॥ १२३ ॥ तबै चक्रधर मोद लहाय, मेघेश्वर इन नाम धराय। जयकुमारको बहु सत्कार, कीनो चक्रीने तिहवार ॥ १२४ ॥ वीर पट्ट मस्तक बांधियौं, वीराग्रणी तबै इन कियौ। बाजे बहु विध तबै बजाय, मेघ गर्जको सो जीताय ॥ १२५ ॥ ततक्षण म्लेक्ष नृपत सब आय, नाम चिलातावर्त धराय। भय धरके परणाम कराय, बहु धन भेट कियौ सिर नाय ॥ १२६ ॥ फुन हिमवन पर्वत पर्यंत, बहु प्रयाण कर तहां

पहुचंत । सिंधु नदी शुभ जहां गिराय, अनुक्रम कर सो थान लहाय ॥ १२७ ॥ तहां सुन्दर वन मध्य महान, सेना सबै तहां ठैरान । चक्रीको तब आयो जान, देवी सिंधु आय थुत ठान ॥ १२८ ॥

पद्धड़ी—नमकर सिंघासनपैं बिठाय, अभिषेक कियौ शुच बारि लाय । भृंगार लेय निज कर मझार, शुभ सिंधु नदीको जल सुढार ॥ १२९ ॥ आशीर्वाद कह बारबार, फुन देवी निजग्रह गमन धार । फुन चक्री केई प्रयान ठान, पहुंचे शुभ हिमवत कूट जान ॥ १३० ॥ तहां शुभ स्थानकको लखाय, सेना सगरी तिस थल ठराय । तहां चक्रीने तेला कराय, अरु-डाभ सेजमाही सुवाय ॥ १३१ ॥ परमेष्टीको करके सु जाप, तब एक देव आयो सु आप । ताने सब रीत दई बताय, तिस ही मूजब चक्री कराय ॥१३२॥ निज नामतने अक्षर लिखाय, छोडो इक बाण तबै सुराय । सो पहुंचो हिमवत कूट जाय, तब देवसु पुष्पांजल क्षिपाय ॥ १३३ ॥ इकसोपचीस योजन सु जान ऊंचौ तिसको आवास मान । सो बाण गयो तिस देव पास, कंपित तिसको कियो निवास ॥ १३४ ॥ सो सभा मांह बैठो सुदेव, तहां वज्र समानो शर गिरेव । हिमवन कुमार तिस नाम थाय, सो मागध सुरवत वेग आय ॥१३५॥ सो चक्रीसे डरकर प्रवीन, नमकर बहु थुतको वरण कीन । तुम देव मनुष विद्या धरेश, सबके अधिपत तुम हो महेश ॥ १३६ ॥ हिमवन गिर तुम परताप थाय, अर लवणसमुद्रमैं जीत पाय ।

चक्रीको सुर अभिषेक ठान, वंदनमाला देकर नमान ॥१३७॥ आज्ञा लहकर सुर थान जाय, हिमवन गिरको नरपत लखाय। कौतूहल जुत चक्री चलाय, वृषभाचलके तब निकट आय॥१३८॥ सतयोजन ऊंचो सो महान, इतनो चौडो जड माह जान। क्रमतैं घटतो घटतो सुजाय, ऊपर पंचम योजन रहाय ॥१३९॥ कोटन चक्री बीते अशेष, तिन नामन कर भरियो विशेष। इन नाम लिखनकी ठौर नाह, इम लखचक्री चितवन कराह ॥१४०॥ यह संपत वपु अरु विषयराज, प्राणांत भये आवैं न काज। जो यम कालै सो थिर रहाय, तातैं इस पर्वत पे सु जाय ॥ १४१ ॥ विख्यात हेत लिखहू सु नाम, जो यश थिर होय सदा ललाम। इम चितवन कर चक्री उदार, पहुंचो गिर पास तबै सु सार ॥ १४२ ॥

तोटक छन्द–तब काकणी रत्न सु हाथ लियो, इक चक्री नाम सु मेट दियो। तहां कोटन चक्री नाम लिखे, यह भूपतने निज नैन दिखे ॥ १४३ ॥ तिस देखत सर्व गुमान गयो, यह किस किसकी पृथ्वी कहियो। किस ही की लक्ष्मी नाह रही, मुझ सम भूपद संख्याति गही ॥ १४४ ॥ इम चितवन कर तब लेख कियो। तिस वर्णन मुन भव खोल हियो ॥१४५॥ इक्ष्वाक कुलाकाश हि गिनियो, ताको रवि भरतेश्वर भनियो। पहलो चक्री ये जान सही, श्री वृषभनाथ जिन पुत्र कही ॥ १४६ ॥ पोता श्रीनाभ तनो वरनौ, बल विक्रमताको केम भनो। षटखंडतने नृप सेवत ही, खग व्यंतरकी गिनती जु नही

॥ १४७ ॥ दिगजीत पछे नृप आय गयो, तब निज नामाक्षर लेख कियो । इस पर्वत पै जस थाप दियो, निज कीरतको परकाश लियो ॥ १४८ ॥

सुन्दरी छन्द—इम सु लिख करके चक्री तबै, शुभ अनुक्रम कर चलियो जबै । जहां पड़ी सर गंगा आयके, कटक संयुक्त तहां पहुंचायके ॥ १४९ ॥ गंगादेवी तब ही आइयो, भूप सिंघासन बैठाइयो । फुन करो अभिषेक सुरी तहां, जलसु गंगामें ला जहां ॥ १५० ॥ कर नमन फुन तोषित नृप कियो, नंदीवर्ध सु वैरिन जीतियो । दिव्य सिंघासन तिनने दियौ, नमन कर निज थानकको लयौ ॥ १५१ ॥ क्रम सबै नृप म्लेक्ष तने जये, निकट विजयारध प्रापत भये । पूर्ववत सेनापत जायके, गुफा द्वार तबै उघड़ायके ॥ १५२ ॥ म्लेक्ष राजनको फुन बस किये, नम विनम विद्याधर आगये । साररत्न जु कन्यादिक दिये, नमन मस्तकतें करते भये ॥ १५३ ॥ नाम जास सुभद्रा जानिये, विध विवाहतनी शुभ ठानिये । रत्न पटराणी चक्री गही, और बहु तिया व्हांसे लही ॥ १५४ ॥ छह महीनामै जय आइयो, म्लेक्ष राजनको संग लाइयौ । ते सबै नमते भये आयके, चक्रपतकौं भेट चढ़ायके ॥ १५५ ॥

गीता छन्द—तहां गुफा कांड प्रतापनामा, तिस प्रवेश कियो सबै । पूरब गुफा बन सकल दल चक्री सु बाहर आ तबै । तहां गुफा द्वारे वास कीनौं नाट्य माली सुर तहां, सो आपहीसे आयके पूजो सु चक्रीको जहां ॥ १५६ ॥ बहुते

रतन सुर भेट करके लेय आज्ञा घर गयो, सेनापति अदिश नृप लइ जाय म्लेक्षन जीतयो। इस धर्मके परिपाकतैं चक्री सकल जीतत भये, नर खचर सुरपत सर्वको षट्खण्डके सब वस किये ॥ १५७ ॥ अद्भुत निरोपम संपदा अर रत्न निध सब ही लिये, षट् विध जु सेन्या सकल पाई खेचर भूचर सब नये। फुनि रूप सुख अरु कला निध लक्ष्मी निरोपम ठानिये, यह धर्मरूप जु वृक्ष बोयो तासको फल जानिये ॥ १५८ ॥ वृष बिना कहां सु विभूति पावै बिना वृष नहि सुख लहे, बिन धर्म किम लह चक्र पदवी न धर्म कारज सिध नहै। बिन धर्म उन्नत भोग नहि। बिन धर्म कीरत नहीं चले, वृष बिना बुद्धि नाह पावैं क्रांत तनमैं ना मिले ॥१५९॥ इम जान बुध-जन सकल तजकर धर्ममें रुचि धारियो, मन वचन काय लगाय व्रत नियमादि नित्य विचारियो। इम धर्मसेती सु गत होहै सकल गुण वृषसे लहै, सो धर्म मुझ भव भव मिलो प्रभु यही वांछा पुर है ॥ १६० ॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक सकलकीर्तिविरचिते भरतेश्वर दिग्विजयवर्णनो पंचदशमः सर्गः ॥ १५ ॥

अथ सोलहवाँ सर्ग ।

अडिल्ल छन्द—दशलक्षण जो धर्म तास दातार है, सब जगके हितकार सर्म कर्तार है। धर्मतने वो नाथ सकलके गुर सही, तिने नमूं मैं वेग सकल दुख नाश ही ॥ १ ॥ अबै सु चक्री सर्व दिशाको जीतियो, निजपुर जानेकी इच्छा करतो भयो। विजय सु पर्वत नाम सु गज ऊपर चढ़ो, धर्म काजमें मन जाको अति ही बढ़ो ॥ २ ॥ क्रम करके सो पहुंचे गिर कैलास ही, षट् विध सेना थापी पर्वत निकट ही। और नृपनिको संग लेय चलि ये मुदा, भगवतको कर ध्यान चढ़ो गिरपे तदा ॥ ३ ॥ तब चक्रीने अचरज देखो एक ही, अजापुत्रको सिंघनि दुग्ध पिलावही। नकुल सर्प इकठाम सु क्रीड़ा करत हैं, सब रितुके फल फूल मनोहर फल रहे ॥ ४ ॥ तिस पर्वतके साल समाश्रित बन रहो, चक्री तिसको देख महा आनंद लहो। मुकट सीसपै धरे बहुत नृप साथ है, मानों इंद्र सोधर्म देव संग जात है॥५॥ त्रजगत पतिको वंद्य सु जय जय उच्चरी, भक्ति धार उर माह सु बहु पूजन करी। जो दिग जीतन मांह पाप बहुतो भयो, तिसको हानि सुकाज प्रभु पूजन ठयो ॥ ६ ॥ फुन प्रभु अस्तुत कीन सु चक्रीने तहां, ता बरनन भव सुनो ध्यान धरके यहां। तुम स्वामी त्र जगतके तुम हो देव ही, तीन लोक मह पिता करे सुर सेव ही ॥ ७ ॥

छप्पय छंद—जगनाथन कर पूज्य नाथ तुम सबके स्वामी, वंदनीक कर वंद्य तुमी त्रिभुवनमैं नामी। धर्मराज सार्थिक

विश्वमंगलके कर्ता, सर्वोत्तम गुण थान सकल भव जन भय हर्ता ॥ विन कारण जग बंद्य तुम सबके हितकार हो, चिंतामणि सम जगतमें चितत फल दातार हो ॥ ८ ॥ कल्पित फल दातार तुमी हो कल्प सु वृक्षा । द्रग रत्नादिक थान तुमी धारत गुण स्वच्छा । कामधेन सम तुमी अर्थ अरु काम दातारा, माता स्वामी सुहृत सभा हितके कर्तारा ॥ ९ ॥ मैं अनदेवन पूजहूं, नहिं वंदन कारहूं कदा । इम परभव शिव दातार लख, तातैं तुम पूजूं मुदा ॥ १० ॥

नाराच छंद–सु कल्पवृक्ष छोडके धतूरको न सेवही, सु अमृतादि त्यागके पीवे हलाहल कहीं । तथा जु स्वर्ग मोक्षदाय आपको जु त्यागके, जु और देव पूजहैं सु पाप माही पागके ॥११॥ सु आप नाम लेत ही सु जाय पाप भाज ही, तुम्हारी पूज जे करे सु पूजनीक थाय ही । जु वंदना करे वही सु वंदनीक होत है, जो कीर्ति आपकी करे सुवेग कीर्तिको लहे ॥१२॥ तुमी सु नाम लेतही जु विघ्न रोग जाय है सुवज्रपानतें तथा जु पर्व ताप लाय है । सु ध्यान आपको करैं सु घाति कर्मको हरें, जु ज्ञान केवलं धरे सु मुक्ति कामनी वरे ॥ १३ ॥

सवैया २३–अब मैं सुकृतवंत भयो हूं अब निज जीवन सफल जु मान, अब मुझ बचन पवित्र भयो है जब तुम गुणको कीनो गान । नेत्र सफल तुम दर्शन करते सीस सफल तुम चर्णन मान, कान सुफल तुम वचन सुनतही हस्त सुफल तुम पूजन ठान ॥ १४ ॥ अंतातीत गुणकर स्वामी वचन अगोचर

प्रभुता थाय, गणधरसे कहने समरथ नहीं मंदबुद्धि मैं किम वरनाय । ऐसो जान बहु श्रुत नही कीनी कीनी नाममात्रहीमैं कहवाय, कर्मारी नाशक तुमको लख तातैं नमूं तुमारे पाय ॥१५॥

पायता छन्द—तुम गुण समुद्र अभिरामा, कल्याण मित्र गुण धामा । तुम नंत सु लक्ष्मी धारी, निर्ग्रंथ मूर्ति सुखकारी ॥ १६ ॥ तुम देव असंखज जाई, तौ भी तुम निस्पृह थाई । इम नमस्कार श्रुत कीनी, भक्ति उर धार नवीनी ॥ १७ ॥ प्रभू मैं तुम शरण गहाई, निज गुण सम निज गुण द्याई । इम अस्तुत कर बहुवारी, फुन धर्म सुनौ हितकारी ॥१८॥ जो स्वर्ग मोक्षको दाता, श्री जिन भाषित विख्याता । फुन चक्री नमन कराई, निज थानकको जु सिधाई ॥ १९ ॥ फुन शीघ्र कियौ सु पयाना, अजुध्या नगरी पहुंचाना । परवेशित नग्र सु मांही, सारी सेना अटकाही ॥ २० ॥ द्वारेके बाहर जब ही, भयो निश्चल चक्र सु तब ही । यह बात सुनी जब काना, चक्री अति विस्मय ठाना ॥ २१ ॥ प्रोहतसे तब पूछाई, किम कारण चक्र रुकाई । क्या अब कोई बस करनौ, कोई शत्रुसे अब लरनौ ॥ २२ ॥ इम सुनकर तब बोलाई, अंतर अरि है तुम भाई । तुम आज्ञा नाही मानै, अरु नमस्कार नहि ठानै ॥२३॥ तहां जेष्ठ बाहुबल जानौ, निज बलकर नाह न मानौ । इम सुनकरके महा राई, बस करहूं ये मन भाई ॥ २४ ॥ तब दूत तहां भेजाई, तिनको सत लेख दिवाई । सो सब देशन पहुंचाई, बाहुबल बिन सब भाई ॥ २५ ॥ सबने जू दूत सन्माना, तब

दूत कहो हित ठाना। हे कुमर सुनो मन लाई, तुम जेष्ट भ्रात सुखदाई ॥ २६ ॥ जिसको नर सुर वंदाई, विख्यात सरब जग-मांही। तुम मानन जोग सदाही, जिम कल्पवृक्ष फलदाई ॥ ७॥ तुम बिन नहि राज जु सोहै, तुम बिन विभूत नही को है। इस कारण तुमे बुलाई, तुम सहित लक्ष भोगाई ॥ २८ ॥ इम दूत वचन जु सुनाई, सब भ्रात विचार कराई। तिसको उत्तर इम दीना, तुम सुनहो दूत प्रवीना ॥ २९ ॥

चौपाई—त्रिजगत गुरुने हमको दियो, मांई राज हमने भोगियो। न तृष्णा हमको अधिकाय, जो अब भरतरायपै जांय ॥ ३० ॥ जगतगुरुको अबै तजाय, और न काहूं नमन कराय। पूर्व किसीको नमियो नाह, बल भय तैं अब हूं न नमाह ॥ ३१ ॥ तीनलोक पतके जो चर्ण, सेवेंगे हम आपद हर्ण। तिनके निकट सु प्रापत होय, फिर हमको होवे भय कोय ॥ ३२ ॥ इम कहकर प्रति लेख जू दीन, दूतनको सत्कार जु कीन। करी विसर्जन दूत जु तबै, आप प्रभु ढिग पहुंचे सबै ॥ ३३ ॥ विश्वनाथ कर अर्चित जोय, तिनको पूजे हर्षित होय। जन्मथकी तुमही हो नाथ, और जु किसको नमहूं माथ ॥३४॥ तुम चरणनको कर परणाम, कौन कौनहि नमहै ताम। भरतरायने हमें बुलाय, चाहो थो परणाम कराय ॥ ३५ ॥ तातैं हम आये तुम तीर, पथ्य वचन तुम कहो गहीर। इम कहकर सो बैठत भये, श्री जिनवानी सुनि हरषिये ॥ ३६ ॥ जिन दिव्यध्वनिमें इम कहो, अहो भव्य तुम दीक्षा लहो। सकल

भ्रात मिल संजम धरो, जगत इंद्र तब प्रणमन करो ॥ ३७ ॥ भरत राज्यकी है क्या बात, वृषसे तीर्थंकर पद पात। सास्वत मुक्ति तनो सुख लेह, अनघ अनंत इसो पद गेह ॥ ३८ ॥ जगत पाप करता यह राज, वैर जु कारण बंधु समाज। बहुत शत्रु करके दुखदाय, तातैं निंदित राज अघाय ॥ ३९ ॥ बहुत भोग भोगनके मांह, आतम तृप्ति कभू है नाह। सर्प समान प्राण ये हरे, को बुधवान सु इच्छा करे ॥ ४० ॥ चिंता दुख अर क्लेश जु थान, भय आदिककी है यह खान। चपल जु वेश्याकी सम जान, है अनित्य फुनि निंद्य बखान ॥ ४१ ॥ विषयनके सुख ऐसे कहै, विष मिश्रत जु अन्न सरदहै। नरकादिकको कारण सही, बुधजन तामैं किम राचही ॥४२॥ संपद् विपत समान गिनाय, भाई बंधु बंधन सम थाय। शृंखल सम रामा दुखकार, पुत्र पासवत् बन्धन धार ॥ ४३ ॥ निधि रत्नादिक सबै असार, यम मुखमैं जीवत निरधार। तीन जगत क्षणभंगुर लखो, जोवन जरा ग्रसत नित दिखो ॥ ४४ ॥ दुखसागर संसार निहार, जहां कषाय जल भरियो क्षार। यह शरीर रोगनकी खान, क्लेशकार दुर्गंध महान ॥ ४५ ॥ इम संसार विषै बुधवान, निज कल्याण करे हित ठान। संजम बिन रमणीक न कोय, तातैं संजम धर मुद होय ॥४६॥ कितने काल पछे चक्रेश, निध आदिक लछ त्याग अशेष। संयम धारण करे महान, फेर मोक्षपुरको पहुचान ॥ ४७ ॥

गीता छन्द—इम सुन प्रभु वाणी मनोहर, धर्ममें रुचि

धारियो। जग भोग त्याग वैराग होकर, सकल परिग्रह टारियो।
सब कुमर तब दीक्षा लही, फुन द्वादशांग पढ़ी सही। फुन
ध्यान धर्म जु शुक्ल तत्पर, मूल उत्तर गुण गही ॥ ४८ ॥
फुन महाव्रत जो पांच धारें भावना पनवीस ही, भावे निरंतर
धर्म दशलक्षण धरे निर्दोष ही। बाईस परीषह सुभट जीते अरु
कषाय विनाशिया, फुन आर्त रौद्र कु ध्यान तजकर वचन मन
तन वश किया ॥४९॥ निज कायसे निस्पृह सदा मन मुक्तिसे
लों लग रही। बाहिर अभितर त्याग परिग्रह रत्नत्रय निध जिन
गही ॥ जो ध्यान अरु अध्ययन करते चार विकथा परहरें।
उपदेश सुन जो शरण आवे ताहि जगसे उद्धरे ॥ ५० ॥ जे
सून्य घर अर गुफा वनमें अरु मसाण विषै बसैं। पर्वत तथा
निजर जु थानक बैठकर इंद्रिय कसैं॥ जो पक्ष मासरु छै महिना

आदि कर उपवास हैं। फुन तप ऊनोदर करै जहांसे तुच्छ लेवे
ग्रास हैं ॥ ५१ ॥ जो व्रतपरसंख्यान धरते अटपटी बातैं
गहैं। जे राय घर कोई सु भोजन थाल मृतकाको लहै॥
अथवा दरिद्री गेहमें हो स्वर्ण भाजन पावनो। अरु क्षीर खांड
तनो सु भोजन होय तो हम खावनो॥ ५२ ॥ षटरस विषे
कोई जु रसको त्याग करहैं मुनि सही। अथवा छहौं रस त्याग
करके लेय गुणगणकी मही॥ मिथ्या जु दृष्टि दुर्जनादिक क्लीब
तीय पशु जानिये। इन रहत थानक देखके तहां सयन आसन
ठानिये ॥ ५३ ॥ अब कायक्लेश जु तप सुनो जो धरत मुन
गुणरास हैं। वर्षा जु रितु तरु मूल तिष्ठे डांस मच्छर काट हैं।

झंझा जु वायु चले महा वर्षा जु वर्षे अति घनी । तिम काल मांही तरु तले तिष्टे सकल ही शिव धनी ॥ ५४ । जे ताल नदीके किनारे शीत ऋतुमें तप करैं। जे ध्यानरूपी अग्नि करके तपन बहु विध आचरैं॥ जो ग्रीष्मऋतुमें तप्त पर्वत तुंग ऊपर बैठ ही । शुभ ध्यान अमृत पान करके सूर्य सन्मुख जे ठही ५५॥ इत्यादि नाना काय क्लेश जु तप करत बहु प्रीतसों । इम भेद षट वाहिर सुतपकी आचरत इम रीतसौं ॥ अब भेद अभ्यंतर सु तपके सुनो अति सुखदायजी । जो आचरत सन भ्रात सुंदर तासको वर्णायजी ॥ ५६ ॥

पद्धड़ी—प्रायश्चित व्रतधारें बुधवान, जिसके नव भेद प्रभु बखान । फुन विनय चार विधको धराय. वैयावृत दस विधकी कराय ॥ ५७ ॥ स्वाध्याय तने पण भेद धार, मनगज रोधन अंकुश विचार । धारे व्युत्सर्ग सु दो प्रकार, फुन धर्मध्यान धरहै जु सार ॥ ५८ ॥ फुन शुक्लध्यानको भी धरंत, अर आर्तरौद्र दोनो तजंत । इम द्वादस तपको जे करंत, ते कर्महान शीघ्र ही करंत ॥ ५९ ॥ ते सत मुन मन शुद्ध कर सदीव, अणिमा महिमादिक रिद्ध लहीव । तिन अवधिज्ञान आदिक सु थाय, विक्रिया आदि रिद्धि उपाय ॥ ६० ॥ फुन ग्राम खेटमें कर विहार, चव घात कर्मको कर संघार । शुभ केवलज्ञान उपाय सोय, फुन मोक्ष गये सब कर्म खोय ॥ ६१ ॥ अब चक्राधिपने सब सुनाय, मम भ्रात तने दीक्षा ग्रहाय । अनुजनको बहु आश्चर्य ठान, तिनको सुमान साचौ बखान ॥ ६२ ॥ अब

दूत सुबाहुबल तटाय, पहुंचौ केतक दिनके मू माह। पोदनपुरके माही सु जाय. फुन द्वारपालसे सब कहाय ॥ ६३ ॥ फुन राजसभामें गयो सोय. राजाको नमियो मुदित होय। जब भूपतकी आज्ञा सु पाय, आसनपर दूत तबै बिठाय ॥ ६४ ॥

चाल अहो गुरुकी—दूत तबै इम भाष सुनिये राय प्रवीना, चक्रीको आदेश उचित सु प्रिय हित भी ना। तुम मम बंधु जान प्रीत सु कारण थाई, तुम यहां आवो बेग मिलकर लछ भोगाई ॥ ६५ ॥ मैं अंबुधमें जाय मागधको बस कीनौ, व्यंतर कृत रथ बैठ फुन सरको छोडीनो। हिमवन गिर तट जाय बाण सुमोचो जबही, भृत्य होय सुर आय आज्ञा सिर धर तबही ॥ ६६ ॥ विजयारधके सीस सुर कृतमालि विराजै, इत्यादिक बहु देव आकर नमन कराजे। आरज और म्लेछ छहों खंडके राई, धरकर बहुविध भेंट सबही नमन कराई ॥ ६७ ॥ घर दासी सम जान लक्ष्मी जाके थाई, सुर किंकरता ठान पुन्य फलो अधिकाई। नीत थकी जु प्रताप अरिके सीस विराजे, तुमरो जेष्ट सु भ्रात माननीक महाराजे ॥ ६८ ॥ तिस षटखंड विभूत तुम बिन शोभे नाहीं, तातैं तुमें बुलाय जाय प्रणाम कराही। इम वच सुन भूपाल बाहूबली तब भाखो, तैने साम दिखाय दंड भेद अभिलाखो ॥ ६९ ॥ चक्री बल जु कहाय सो इम मन नहिं आयो, डाभ सेजपे सोय ताने काज बनायो। देवनसे संग्राम कर जीते बहुवारी, मैं तिस पौरष देख निज बलपर तपकारी ॥ ७० ॥ उत्तम प्राण सु त्याग वन वासो

शुभ जानो, नमहूं नाह कदाय ये ही चितमैं ठानो। अथवा जिन ढिग जाय व्है दीक्षा सुखकारी, अहो दूत तुम जाय यह विध वचन उचारी ॥ ७१ ॥ रण करणो मुझ वेग तुम भी होउ तयारा, इम कहकर नृप ईस दूत विसर्जन कारा। तब बाहूबली भूप चव विध बल ले लारा, निज देशहीकी सीम आयो जुध मन धारा ॥ ७२ ॥

जोगीरासा—भरतराय तब दूत वचन सुन मनमैं अति क्रोधायो, सब सेन्याको संग लेयके पोदनपुर पहुंचायो। तब संग्राम करनके पहले मंत्री सबन विचारो, दोनों भूपत नाह मरेंगे चर्मांगी चित धारो ॥ ७३ ॥ युद्ध माह बहुभट क्षय होगे तिनकी रक्षा करिये, दोनों भ्राता युद्ध कर लेवें इनसे यो उच्चरिये। दृष्टि युद्ध मल युद्ध सु करहैं अरु जल युद्ध करावैं, इम मंत्री सब निश्चय करिके जुग नृपको समझावें ॥७४॥ दोनों नरपत रणको उद्धत हट करते अधिकाई, तब मंत्रिनने कहो युद्धसे कोटक जीव मराई। तिन सुभटनकी रक्षा कारण तीन युद्ध ठराई, तिन तीनमैं एक युद्धको सुन वर्णन महाराई ॥ ७५ ॥ दोनोंमें जिस पलक न झपके उसकी जीत सु होवे, सरवरमें जल क्षेपन करते। व्याकुलताकों खोवे, मल्लयुद्धमें दूजे नृपकों पृथ्वी माह गिरावे, तिसकी जीत तनो जस सुरनर विद्याधर मिल गावें ॥ ७६ ॥ इम मंत्रिनके कहने सेती दोनों नृपने मानों, प्रथम ही दृष्टि सु युद्ध करनको बैठे युग मुद ठानो। भुजबलिको तन पणशतपचिस धनुष सु ऊंचो जानो,

भरतचक्रिको तन पण शत धनु ऊंच कहो भगवानो ॥ ७७ ॥ तातें दृिष्टि मिलावन मांही जोर पड़ो अति भारी, भरतेश्वर तब दृष्टि युद्धमें हार भये ततकारी। तब ही सब नृपगणने मिलकर बाहुबली जय भाषी, फुनि दोनौं सरवरमैं पहुंचे जल युद्धके अभिलाषी ॥ ७८ ॥ चक्रवर्त जो जलको क्षेपे उस वक्षस्थल जाई, बाहुबल जो छीटे देवे भर्त तने मुख आई। तातैं चक्री यहा भी हारे जीते बाहुबली हैं, सब नृपने इम घोषण कीनौं पुनते होत भली है ॥ ७९ ॥ मल्लयुद्ध फुन युग आरंभो बाहु स्फोटन कीनो, बाहुबलने भर-तेश्वरकौं तुरत उठाय सु लीनौं। सिरसे ऊंचौ करस्रू फिरके थाप दियो भुव मांही, सब नृप भट मिल जय कोलाहल करत भये तिह ठाही ॥ ८० ॥ तब चक्री लज्जाको पाकर क्रोधानल उपजाई, लघुभ्राता दिश चक्र सुदर्शन तबही बेग चलाई। सो बाहुबलकी परदक्षणा देकर उलटो आयो, तब भुजबल नृपको जस सब मिल सुर मनुषनने गायो ॥ ८१ ॥ तब चक्री अति लज्जित हुवो मानभंग बहु थाई, ऐसी लख बाहूबल राजा चित वैराग सु आई। काललब्धि वस इम चिंतत नृप राजहीको धिक्कारा, जगत दुःखको कारण येही यह निश्चै मन धारा ॥८२॥ बंधुजनके अर्थ करत अघ सो कछु काम न आवै, कोटक भार जु ईंधन कारके अग्नि उपसम थावै। तैसे निध रत्नादिकसे नहि आशा गर्त भरावै, जो जो इसको त्याग करे मनु त्यौं त्यौं सुख लहावै ॥८३॥ जैसे तेल जुडालनसेती दावानल प्रजलाई,

तैसे अक्ष विषय सुख भोगत तृप्त कभू न लहाई, चवदिशसे जिम पक्षी निशमें एक वृक्ष पर ठाई। तिम परिजन सब लोग मिलत है फुन सबही नस जाई ॥ ८४ ॥ परमारथ करके जो देखो अपनो कोई न थाई, जैसे कर्म उपार्जन कीने निज निज सो भुगताई। जिम कुटंबके पोषन कारन पाप बहुत जिय करिहैं, सो सब जिय यहां रह जावे आप नरक दुख भरहैं ॥ ८५ ॥ जे शठ मेरी मेरी करि हैं तिय सुत लक्षि सबै ही, गृह आदिक सब यहां ही रहै है मरकर दुरगत लैही। ये ममत्व वपु आदिकको है पाप वृक्षको मूला, निर्ममत्व वृष युत जो प्राणी पावे शिव सुख झूला ॥ ८६ ॥ ज्ञानवान जो निर्मोही है सो बहु सुखिया थाई, अज्ञानी जो मुझ सम हो है पावै दुख अधिकाई। जहां यह देही अपनी नाही तहांसु अपना को है, सुत परियन सब जुदे जुदे हैं कोई नाह सगो है ॥ ८७ ॥

नाराच छंद—विचार एम ठानके संवेगको बढाइया, तबै मुनीश होनको सुचित मैं उमाहिया। सु दीर्घ भ्राततैं तबै सुबोलियो विचारके, जु तास क्लेश हान काज चित क्रोध टारके ॥८८॥ सुनो सुभ्रात भरत वेग राजको संभारियो, मैं लक्ष तप धार हूं सु चित्त स्वस्थ कारियो। प्रशाद ये तुमारी है जुलोक अग्र जाय हूं, लहू सु राज मोक्ष अष्टकर्मको नशाय हूं ॥ ८९ ॥ जु गर्भ धार मैं दियो तथा अज्ञान होयकै, अनिष्ट काज मैं कियो क्षमा करो सुनीयकै। इसो अलाप ठानके निसल्य होयके जबै, सुराज पुत्रको दियो वैराग होयके तबै ॥ ९० ॥

तोटक छंद—तब ही चलियो वह धीर सही, तप संजमकी सिद्ध चित्त गही। अष्टापद पर्वतपै जु गयो रिषभेश्वरको तब ही नमियो ॥९१॥ मनवचकाया त्रय शुद्ध कियो, परिग्रह बाह्यांतर त्याग दियो। उत्तम दीक्षा ततकाल लई, जो मुक्तितनी माता सुकही ॥९२॥ तपद्वादश विधको सर्व गहे, फुन द्वादशांगको पार लहै। नाना गुणकर पर पूर्ण मही, हो इकल विहारी धीर्ज मही ॥९३॥ इक वर्ष पर्यंत सुयोग धरो शुभ ध्यान विषैं है लीन खरो। निज काय ममत्व सबै तजियो, बनमैं निज आतमको भजियो ॥९४॥ तनमैं जु अबे सर्पो जु करी, सीतोष्ण थकी सब काय जरी। बाईस परीसह सर्व सही, दव दग्ध वृक्षवत् काय वही ॥९५॥ चर्णनसे मस्तक तक जानौं वेलोने आछादन ठानौ, विद्याधर तिय जुत बहु आवैं। इन ऊर्द्ध विमान सु ठहरावै ॥ ९६ ॥

चोपाई रूपक मात्रा १६—वाहन अटको लखकर जब ही नीचे आ मुनि पूजैं तब ही, बाहूबलको योग प्रभावा इन्द्रासन तुरंत ही कंपावा ॥ ९७ ॥ अचरज लहि हरि पूजन आयो, मनमाही धर हर्ष सवायो। व्याघ्र सिंह जिय क्रूर सुभावे, मृग आदिकको नाहि हतावें ॥ ९८ ॥ सब रितुके फल फूल फलाई, मानौ षट रितु पूजन आई। तपके योग सु रिद्ध लहाई, कोष्ट बुद्धि आदिक सुखदाई ॥ ९९ ॥ सर्वावधि लह अवधि सुज्ञान, मनः पर्यय फुन वेग लहान। विपुलमती जिस भेद बखानौं, उग्र उग्र तप बहु विध ठानौ ॥१००॥ दीप्ततप्त ये रिद्ध उपाई, औषध उग्र सु रिद्ध गहाई। विक्रियरिद्ध सु अष्ट प्रकारा,

रस रिद्धके षट् भेद सुधारा ॥ १०१ ॥ अक्षीण जु महालय जानौ, महानसी अक्षीण गहानौ। इत्यादिक तपके परभावा बहु विधकी मुन रिद्ध लहावा ॥ १०२ ॥ निःप्रमाद अति निर्भय थाई, महामेरु सम तन जु उचाई। निश्चल खड़े क्रांति फैलाई, मानौ रवि पृथ्वीपै आई ॥ १०३ ॥ धर्मशुक्ल ये ध्यान सुध्यावै, यों बाहूबल तप सु धरावैं। अब चक्री अयोध्यापुर आये, साठ सहस्र वर्ष पीछाये ॥ १०४ ॥ सर्व दिशाको जीत जबै ही, षटविध बल सुविभूति सबै ही। पुरजननगरी सोभा कीनी, तोरण ध्वज पंकति सुख भीनी ॥ १०५ ॥ चक्री पुर परवेश कराई, बाजे बहुत प्रकार बजाई। बहु नृप मिल अभिषेक सु ठानौ, गंगा सिंधु सुरी जुग आनौ ॥ १०६ ॥ बहु तीर्थनको जल मंगवायो, तिनने भी अभिषेक करायो। भूषण नानाविध पहरायो, सभा सिंघासन पर बैठायो ॥ १०७ ॥ गणबध जात अमर जो थाये, ते भक्ति धर नमन कराये। हिमवन विजयारधके ईसा, मागधादि सुर नमि सब सीसा ॥ १०८ ॥ उभय श्रेणिके विद्याधर ही, मुकट नमाय सेव सब करही। निष्कंटक यह राज कराई, भरतेश्वर विभूत बहु पाई ॥ १०९ ॥ धर्म कर्म अग्रेस्वर होई, आचरणादि करे शुभ जोई। भोग महान सकल भोगांई, नानाविधके सुक्ख लहाई ॥ ११० ॥ इम सुखमें इक वर्ष विताई, फुन आदीश्वर वंदन जाई। चक्रनाथने तबही लखाई बनके मध्य खड़े निज भाई ॥१११॥ मेरु समान है ध्यान धरो है, भरत जाय पर-णाम करो है। वहांसे चल प्रभु पास सुजाई, नमस्कार कर इम

मूर्छाइ ॥ ११२ ॥ बहुत घोर तपको सुत पायो, बाहूबल नहीं केवल पायो। दुर्बल जास सरीर भयो है, इस मध कारण केम ठयो है ॥ ११३ ॥ तब सर्वज्ञ सु एम कहाई, अहो विचक्षण सुन मन लाई। ताके मनमें एम सुभावा, मैं भ्राता अपमान करावा ॥ ११४ ॥ यह प्रथ्वी सुभरतकी जानौं, जाके उपर मैं तिष्टानो। यथाख्यात चारित न गहायो, तातैं केवलज्ञान न पायो ॥ ११५ ॥ यथाख्यात चारित न लाई, तातै कारज सिद्ध नहि थाई। यथा अग्नि कणिका अल्पाई, रत्नरासको देय जराई ॥ ११६ ॥ तिम कषाय अग्नि तुछ थावे, चारित्रादिक रत्न जलावे। इम सुनकर चक्रेश्वर तबै ही, पहुंचे मुनवर पास जबै ही ॥ ११७ ॥ मुनपद सेती सीस लगायो, अष्ट द्रव्यसे पूज करायो। जग अनित्यता बहुत दिखाई, अन्य अन्य सुत माता भाई ॥ ११८ ॥ अन्तस्करण शुद्धि जु करायो, जातैं शिव तिय वेगहि पायो। तत्क्षण मोह शत्रु जीताई, सब कषाय जीती मुनराई ॥ ११९ ॥ बारम गुणस्थानको लहके, शुक्लध्यानपद दूजो गहके। तीन घात यों तब ही नासे, केवल दर्शन ग्यान प्रकाशे ॥ १२० ॥ लोकालोक पदार्थ जु मारे, देखे एक हि काल मंझारे। महिमा गुण अनंतके थानी, तिन जिनको हम सीस नमानी ॥ १२१ ॥ निज आसनके कंपित थाई, जानी केवल श्रीमुनि पाई। चतुरन काय देव सब आये, निज परवार सबै संग लाये ॥ १२२ ॥ सब ही आय सु कर परणामा, केवलिकी पूजन कर तामा। द्रव्य सुर्गमें जो उपजाये, लाकर बहुविध पूज रचाये ॥ १२३ ॥

गंधकुटी तब देव रचाई, तापर सिंघासन सुखदाई। स्वेत छत्र अर चामर ढर है पूजा चक्रवर्त शुभकर हैं॥ १२४॥ निधि आदिकसे उपजाई, ऐसे पूजन द्रव्य सु लाई। अन्तहपुरकी राणी संगा, बंधुवर्ग सब साथ अभंगा॥ १२५॥ बाहुबलिके निकट सु आये, नमकर सभा माह बैठाये। फुन केवलिने कियो विहारा, बहु देशनमें चव संघ लारा॥ १२६॥ तत्व धर्म उपदेश कराई, सत्पथमें बहु भव्य थपाई। कैलाशाचल ये पहुंचे जाई, निज पद योग्य विभूत लहाई॥ १२७॥

गीता छन्द—त्रय युद्धमें चक्रेशको ये धर्मसे जीतन भये, फुन शुक्ल ध्यान सु खड्ग कर ले घातिया छिनमें जये॥१२८॥ नव लब्धि केवल पायके फुन मोक्षपुर माही गये। जग जीत बाहुबल जु स्वामी तास पद हम बंदिये॥ १२९॥ वृष थकी पाप निकन्द होवे पुण्य निध वृष जानिये। सब सुक्ख होवे धर्मसे तातैं नमूं हित ठानिये॥ १३०॥ त्रजगतमें हितकरन दूजौ धर्मसे सब गुण लहे। जो धर्म मुझको प्राप्त हो मम यही वांछा उर रहे॥ १६१॥ 'तुलसी' सियापत आद पदवी नाह चाहत हूं कदा। तुम भक्ति मो उर रहो निस दिन यही वर मांगू सदा॥ १३२॥ जबतक न मोक्ष सु पद लहूं तबतक यही अरदास है। तुम चरण मुझ मनमें रहो यह पूरवो मम आस है॥ १३३॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारकसकलकीर्तिविरचिते भरततनुज दीक्षाग्रहण बाहुबल विजयकेवलोत्पत्तिवर्णनो नाम षोड़शदशमः सर्गः॥ १६॥

अथ सत्रहवाँ सर्ग।

दोहरा—ध्यान रूप गजपर सवार है, दसलाक्षण वृष टोप सुधार। रत्नत्रय मय धारो वक्तर, संवर असिकी तीक्षण धार ॥१॥ अनुभव भाला कर ग्रह लीनो कर्म अरि लीने ललकार, ऐसें वृषभनाथको बंदू ध्याऊं तिन गुण बारंबार ॥ २ ॥

चाल गज सुकुमारकी—भरत प्रु चक्री हो महलन मांही आय धर्म सदाजी उर धारते, सम्यग्दृष्टि हो। शुभ आचर्ण धराय, विधकर नित वृत पालते ॥ ३ ॥ पंच अनुवृत हो गुणव्रत तीन सुजान। शिक्षाव्रत चारों कहे इम बारह व्रत हो ॥४॥ पालत बिन अतिचार। ग्रह व्रतके सिध कारणे ॥ ५ ॥ अष्टमी चौदस ही राज्यारंभ जु त्याग। करत भयेजी उपवासको ॥ ६ ॥ मुनव्रत हो कैजी, तीनो संध्या मांह। सामायक करते भये ॥७॥ रात्रि दिनामें जो, आरंभ कर है पाप। सामायक कर नासिये ॥८॥ जिनवर स्वामीजी, अरु मुनवर समुदाय। तिनकी नित पूजा करै ॥ ९ ॥ श्री गुरु मुखसेजी, नितप्रत धर्म सुनाय ज्ञान बढावन कारणे ॥ १० ॥ भू निर्वाणाजी, प्रतमा जिनवर थान। तिनको ध्यावै प्रीतसों ॥११॥ निज महलनमेंजी, जिन मंदिर सुखदाय। तहां अर्चाकर भावसों ॥१२॥ द्वारा क्षेपनजी नितकर हैं मंन लाय, दान देय अति भक्तितैं ॥ १३ ॥ जिन गृह रचियोजी, परतिष्टा करवाय। रत्नादिकसे पूजियो ॥ १४ ॥ धर्म प्रभावन हो, पूजा उत्सव ठान। जिन वृषको प्रकाशियो

॥१५॥ बैठ सभामैं हो, दैत धर्म उपदेश। मंत्री बंधू सब सुने॥१६॥

चाल लावनी—भजो जिन दाव भला पाया। औसर मिले नहि ऐसा सतगुरु गाया॥ इस चालमें—धर्म हीसे हो राज्य विभूति सुख अनेक पावै। अर्थ काम सब वृषसे होवे मुक्तिमें जावे॥१७॥ धर्म प्रसाद थकी भव देखो चक्री विभूति लही। ताकौ वरनन सब जन सुनियौ मन वच काय गही॥ १८॥ लखौ यह वृष फल उरमाही, बहु सुर आकर नमन सु कीनौ। चक्र सु उपजाही। टेक॥ चौरासी लख हस्ती कहिये रथ इतने जानो। कोट अठारह घोडे कहिये पवन पुत्र मानौ॥ लखौ यह वृष-फल उरमाही, बहु सुर आकर नमन सु कीनौ॥ १९॥ कोड चौरासी जान पयादे सुर खग बहुत सही, वज्र अस्थि अरु वज्र लपेटी वज्र नाराच गही। लखो यह वृष फल उर माही, बहु सुर०॥ २०॥ संस्थानहि समचतुर सु कहिये चौसठ लक्षन है, व्यंजन बहु विधके शुभ जानौ कनक छबी तन है। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर०॥ २१॥ षटखंडके जो राजा सबही तिनको बल जितनौ, तातैं बहुगुणो विचारो चक्री बल इतनौ। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर आकर नमन सुकीनो चक्र सु उपजाही॥ २२॥ सहस बतीस मुकटबंध राजा सबही सेव करैं, तिनकी बहुविध भेट जु आवै तिनपै दृष्ट धरै। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर०॥ २३॥ छ्यांणवे सहस तिया सब पाई रूप सु गुणधामा, ज्ञाति सु कुल वय सर्व मनोहर तिनके सुन ठामा। लखो यह

वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥ २४ ॥ द्वात्रिंशत हजार जो पुत्री आरज नृप केरी, म्लेच्छनकी कन्या सहस बत्तीसु हु चरी। लखो यह वृषफल उरमाही, बहु सुर० ॥२५॥ विद्याधर-नतनी नु दुहिता सहस बत्तीस कही, ये सब चक्रवर्तने पर्णी पुन्य संजोग सही। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥२६॥नाटक गण बहु नृत्य करंते बत्तीस सहस कहे, पुर जु बहत्तर सहस सु जाने जहां वृषवंत रहे। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥ २७ ॥ कोड छाणवे ग्राम सु जानो कंटक वाड जहां। द्रोणी मुख सहस्र निन्याणव सिंधु सु पास लहा, लखो यह वृष फल उरमाही। बहु सुर० ॥ २८ ॥ अडतालीस सहस पत्तन है रत्न सु उपजाई, समुद मध्य जो अन्तर द्वीप छप्पनसा थाई। लखा यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥ २९ ॥ एक दिशामें नदी जाके इक दिश पर्वत है, ऐसे खेट मनोहर जानो सोलह सहस कहे। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥३०॥ जो पर्वतके ऊपर कहिये संवाहन सोई, सो चौदह हजार सु जानो चक्रीके होई। लखो यह वृष फल उरमाही, बहु सुर० ॥ ३१ ॥

सुन्दरी छन्द-थाल हेममई सो जानिये, गिनती एक सु कोट प्रमाणिये। कोट लक्ष सु हलधरके कहे, तिस प्रमाण सुहाली सरदहे ॥ ३२ ॥ तीन कोट सु गांव सुहावनी, सहस अट्ठाईस अटवी भनी। कुक्षवास जु सात शतक कही, नमत मलेक्ष अठारह सहस ही ॥३३॥ नवनिध अति पुन्य उदै लही,

तास वर्ण सुनो भविजय सही। काल अरु महाकाल विचारिये, नैसरप पांडक चित धारिये ॥३४॥ पद्म माणव पिंगल जानिये, संख सर्व रतन मन मानिये। काल नाम प्रथम निध जो कही, सर्व पुस्तक दे सुखकी मही ॥ ३५ ॥ पंच इंद्रियनके जु विषय कहे, शुभ मनोग्य सबै ही देत है। वीण वांसरी आदि वखानिये, पुन्यकर सब देत प्रमाणिये ॥ ३६ ॥

अडिल्ल छन्द—असिमस्यादिक कर्म सुषट माधन सबै, महाकाल निध देत सु पुण्य उदै जबै। शय्या आसन आदि निसर्प सु दे सही, षटरस अरु सब धान्य सु पांडुकतैं लही ॥ ३७ ॥ पद्मनाम निध सुंदर वस्त्र जु देत है, पिंगल निध शुभ सब आभर्ण निकेत है। नीत शास्त्र अरु शस्त्र सु माणव देत है, संख दुक्षणावर्त संख निध तै लहै ॥ ३८ ॥ सर्वरत्न निध सकल रतनदायक मनी, गाडेके आकार नवों निध जाननी। वसु योजन सु उतंग आठ पहिये कहे, नव मंडलमें रहे देव सेवा वहैं ॥ ३९ ॥ चक्र छत्र असि दंड काकणी जानिये, मणि अरु चर्म अजीव सात ये ठानिये। सेनापत ग्रहपत गज अश्व लहात हैं, तिया पिरोहित स्थपित सजीव जु सात हैं ॥ ४० ॥

चाल जोगीरासाकी—इम ये चौदह रत्न सु जानो जिम थानक उपजाही। चक्र छत्र असिदंड सु चारौं आयुधशाला थाही ॥ मणिकामणि अरु चर्म रतनत्रय श्रीग्रहमें उपजावें। तिय गज अश्व रतन ये तीनौं रूपाचलते आवे ॥ ४१ ॥ शेष

रत्न चत्वार उपजहै साकेतामांही। नारी रत्न सुभद्रा जानो ता संग सुख भुगवाही॥ षट ऋतुके सब भोग मनोहर भोगत अंतर रहिता। हस्तथकी जो वज्र ही चूरे ऐसी बलकर सहिता॥ ४२॥ रत्न सुनिध अरु नारी जानो सेना शय्या आसन। भोजन और रसभाजन कहिये नृत्य लखे अरु वाहन॥ ये दस विधके भोग सुजानो पुन्य उदै सुखदाई। इकछत राज्य सु-पालत मुद है सब जीवन सुखदाई॥ ४३॥ सुरगण रूप सु जात बखाने षोडश सहस प्रमाणे। नाम जास क्षितसार उतंगकी ऐसो महल रचानो॥ भद्र सर्वतो गोपुर जानो मणी तोरण जहां राजै। निद्यावर्त सु बैठन कारण सब शोभा जुत छाजै॥ ४४॥ वैजयंत प्रासाद मनोहर सबही सो सुखदानी। दिक स्वस्तिक जु सभाग्रह जानो रत्न लगे जिस थानी॥ चक्रपणी जिस नाम छड़ी है माणि चित्रत बहु भांता। सोध एक गिर-कूट तहांतै दिस अवलोक कराता॥ ४५॥ वर्धमान जिस नाम मनोहर पेक्षा-ग्रह सुखदाता, धर्मांतक धाराग्रह जानो, जहां जियको है साता। ग्रहकूटक नामा मंदिर है वर्षा रितुके ताई, नाम पुष्करावर्त महल है देखत चित लुभाई॥ ४६॥

पायता छन्द-सु कुबेर कांत जिस नामा, अक्षय भंडार ललामा। जिस नाम सु अव्यय धारा, सो ही है कोष्टागारा॥ ४७॥ जीमूत नाम सुखदाई, मज्जन आगार बताई। रत्ननकी माला सोहै, सेहरा सबके मन मोहै॥ ४८॥ जिस पाए सिंघ विराजै, ऐसी सेज्या छविछाजै। जिस नाम अनुत्तर

जानौ, सिंघासन दिव्य प्रमानौ ॥ ४९ ॥ जिस नाम अनूपम कहिए, ऐसे शुभ चवर जु लहिये। सूर्यप्रभ छत्र गहाई, जो रत्न रश्मि अधिकाई ॥ ५० ॥ विद्युतप्रभ है जिस नामा, सो कुन्डल क्रांत सु धामा। बक्तर अभेद्य है सोई, रिपुबाण लगे नहिं कोई ॥ ५१ ॥ रत्नोंकर जडित अनूपा, पादुक विष मोचक भूपा। जाको सपरस हो जाई, ताहीको विष उतराई ॥५२॥

पद्धड़ी छन्द—रथ उर्जित जयनाम बखान, फुन धनुष वज्रकांड कल-खान। जिस नाम अमोघ इसो सुबाण, शक्ति सु वज्रकांड पिछान ॥ ५३ ॥ सिंघाटक जो बरछी महान, जो रत्नदंडमें लगी जान। फुन छुरी लोह वाहनिक हाय, अरु कणय नाम इक शस्त्र थाय ॥५४॥ असि नाम सुनंद कहै खड्ग, जा देखत अरि हो खेद खिन्न। फुन ढाल भूत मुख नाम जोय, फुन चक्र सुदर्शन जान लोय ॥ ५५ ॥ फुन चंड वेग दंड हि धराय, जो गुफा द्वार भेदन कराय। जो चर्मरत्न जलकर अभेद, सुदर सो वज्रमई अछेद ॥५६॥ चूडामणि रत्नतनोपहार, चिंतामणि नाम सुदीप्त धार। फुन रत्न काकणी सुक्खकार, सेन्यापत नाम अयोध्य सार ॥ ५७ ॥ बुध सागर है जाको सु नाम, सो रत्न सु प्रोहत गुणन धाम। फुन स्थापित भद्र मुख जो गहाय, शुभ काम वृष्ट ग्रहपति लहाय ॥ ५८ ॥

गीता छन्द—हस्ती विजय पर्वत सुनामा अश्व पवनञ्जय भनौ। प्रमदा सुभद्रा नाम जानौ रहित उपमा सु गिनौ ॥ ये दिग्पाल सुदेव रक्षित चतुर्दश शुभ जानिये। फुनि विजय

घोष सु आदि नामहि पट हि सुंदर ठानिये ॥५९॥ आनंदनी द्वादस जु भेरी अधिक निर्घोषा कही। बारह सुयोजन शब्द जाको सर्व दिशमें फैल ही। शुभ संख है चौवीस गम्भीरा-वरत जिस नाम है, वीरांगद हि जिस नाम भूषण कड़े हस्त ललाम है ॥६०॥ शुभ कोट अडतालिस ध्वजा है अर सिंघासन सोहनो, जिस नाम महा कल्याण कहिये। सर्वजन मन मोहनो, अर और रत्न जु रासि तिनकी सर्व गिनतीको कहै, अमृत जु गर्भहि नाम जाको स्वाद भोजनसो गहै ॥६१॥ फुन स्वाद्य अमृत कल्प जानो रस रसायन नाम है, फुन पान अमृत जास सज्ञा सकल गुणको धाम है। यह पुन्यनामा कल्पद्रुमके फल लखो सुखमें सदा, इम जान सुख वांछक पुरष नहि धर्मको भूलो कदा ॥ ६२ ॥

लावनीकी चालमें—लखो यह चक्री मनमाही, आयुधन आदिक विनसाही। कष्ट कर पैदा लछ होवे, दुख करके रक्षण जोवे ॥६३॥ नाश जब होवे लक्ष्मीको दुःख तब व्यापेहै जीको। पात्रदानादिक जो कीजे, तथा जिन मूरत पूजीजै ॥ ६४ ॥ प्रभूकी मूरत बनवावे, तथा चैत्यालय करवावे। प्रतिष्ठा दोनोंकी कर ही, सोई धन उत्तम गत धरही ॥ ६५ ॥ दान पूजाको काम आवै, वही धन अपनो मन भावै। ब्याह भोगनमें खरचाई, मनो वह चोरन लूटा ही ॥६६॥ लक्ष्मी चार पुत्र जानो, सु धर्म चोराग्नि भूप मानो। बड़े नृपको जो नहि सेवे, तबै तीनों धन हर लेवे ॥ ६७ ॥ पात्रको दीजै जो दाना, त्रिविध संयुक्त

हर्ष ठाना । वही फैले है सुखदाई, जेम वट बीज सुफैलाई । ६८॥ दान जु पात्रनके थाई, भोग भू कु'त्सत उपजेई । दान जु अपात्रनको धाई, बीज कल्लरभू बोवाई ॥ ६९ ॥ जानकर ऐसे बुधवाना, देहु शुभ पात्राहिको दाना । महाफलकारक सोई है, और अघ कारण जोई है ॥ ७० ॥ मुनोंने लक्ष्मी तज सब ही, सर्पणी सम जानी जब ही । होय कर निस्प्रह नाह गही, सर्व वृत नासनहार कही ॥ ७१ ॥

पायता छन्द–निर्ग्रन्थ गुरुको थाई, तिन योग मिलन कठिनाई । आहारौषध जो धावे, तामें धन केम लगावे ॥७२॥ जो मुनवरको धन देई, सो श्रावक दुर्गत लेई । मो साधु नर्क ही जावे, दीक्षा भंग पाप लहावे ॥ ७३ ॥ तातं यह निश्चै कीजै, शुभ श्रावकको धन दीज तिनकी परीक्षा काजे । मारगमें पुष्प बिछाजै ॥ ७४ ॥ त्रयवर्ण सबै बुलवाई । परिवार जु संजुत आई, अंकुरे हरित दिखाई, सब व्रती तहां ठहराई ॥ ७५ ॥ जो व्रत कर रहिता प्राणी, सो राजमहल पहुंचानी । नृपने जब विरती देखे, तिन पायो हर्ष विशेषे ॥ ७६ ॥ तिन शुद्ध मारग बुलवाये, निज पास तबै बिठलाये । तिनको सन्मान जु कीनो, बहु आदरसे पूछीनो ॥७७॥ तुम पहले क्यों ठहराये, पीछे इतको क्यों आये । तिन लोकन एम कहाई, अब सुनो राय महाराई ॥ ७८ ॥ हम प्रोषध व्रत सुधरो है, हम आरंभ सर्व तजो है । अणुव्रत हम धर्म गहो है, शुभ धर्मध्यान मजो है ॥ ७९ ॥

अहो जगत गुरुकी चाल—साधारण प्रत्येक जो बहु जीव विराजै, तिनकी रक्षा ठान हम कीनौ यह काजै। व्रत भंगको भय ठान हम इस राह न आये, इम वच सुन चक्रेश तुष्ट हुये अधिकाये ॥ ८० ॥ जाने द्रिढ व्रत धार, तिन सन्मान सु कीनौ। प्रशंसा तिन ठान मुद ह्वै तिन पूजीनौ, संपत बहुविध देय तिन सन्मान कराई, जो थे व्रत कर हीन तिन सबको कढ़वाई ॥८१॥ पुन्यवान जे जीव तिनकी पूजा होई, अघतैं निद्या पाय बहुविधके दुख जोई। कंठ विषै यज्ञोपवीत तिनकौ पहरायो, प्रतमा व्रतकौ चिह्न सब जनके मन भायौ ॥८२॥ प्रतमा ग्यारह जान तिनकौ भेद बतायो, जिसकी जैसी शक्ति तैसो कार्य करायो। सब जन इनकी पूज भक्ती बहुत कराई, नृप माननते मान्य सब जो करें अधिकाई ॥८३॥ आदिनाथ भगवान सोही ब्रह्मा कहिये, तिसहीको ये ध्याय तातैं ब्राह्मण कहिये। चौथो वर्ण सु थाप चक्रीने हितकारी, धर्मवृद्धिके काज तिन षटकर्म सु धारी ॥८४॥ श्री जिनपूजन ठान गुरुको ध्यान कराई, कर स्वाध्याय महान संजम तप सु धराई। दान सुपात्रहि देय पूजा भेद कहीज, प्रथम नित्यमह जान कल्पद्रुम गिन लीजे ॥८५॥ और चतुरमुख ठान अष्टान्हिक सुखदाई, इस विध भेद सुचार पूजाके सुगहाई। प्रतिमा मंदिर आदि निर्मापन म कराई, जलसे फल पर्यंत ले जिनालय जाई॥ ८६ ॥ जिनवर मूरत पूज नित्यमह जाको नामा, मुकटबंध जो राय करत चतुर्मुख तामा। कल्पद्रुम जो पूज सो चक्री करवाई, सब जग आशा पूर्ण

कल्पद्रुम सम थाई ॥८७॥ इंद्र सुअर्चा ठान नाम महामह जाको, अष्टाह्निक फुन जान इंद्रध्वज शुभ ताकौं। करत सुहगि अभिषेक उच्छव बहु विध कर ही, सब ही इसके भेद कर पुन्यबंध सुचरही ॥ ८८ ॥ पूजा करके होय संपद विस्तरतनी है, पूजा बहु सुखरास, इम जिनराज भनी है। जिन पूजासे सर्व विघ्न नाश लहाई, जैसे वज्र पडंत पर्वत तुरत फटाई ॥ ८९ ॥ ऐसो भविजन जान जिनपूजा नित कीजे, जब ग्रह होय विवाह पुत्रादिक जन्मीजै। नित्य करो वृष अर्थ अघकी हान कराई, व्याधि दुःख भय क्लेश तुम ढिग एक न आई ॥ ९० ॥ द्रव्य उपार्जन होय ताको जो चौथाई, सो वृतियनको देय सो पुन कीर्ति लहाई। दीन अनाथ सुजीव तिनको देय सुदाना. दया चित्तमैं ठान इम भाखे भगवाना ॥९१॥ जो निर्ग्रन्थ मुनिवर रत्नत्रय सुधराई, तिनको देवे दान पात्रदान सो गाई। मध्यम पात्र गृहस्थ जो समानकौ दीज, सोहै दान समान श्रावकको लख लीजै ॥ ९२ ॥ जो नर दीक्षाधार सब ही धन तज देवे, सो है अन्य पदान निज आतम लख लेवे। दान सुपात्र ही जोग जो देवे नर ज्ञानी, ताको तिहु जग भोग संपत सर्व मिलानी ॥ ९३ ॥

कामनी मोहन छंद—यश जो होवे सदा पुन्य बहु थाय है, दानसे लक्ष्मी बहु उपजाय है। ग्रहपती दान कर अधिक सोभाय है, तास बिन नाव पाषाणसम थाय है ॥ ९४ ॥ जान इम पात्र उतकृष्टको दीजिये, दानतैं ऋद्धिगुण श्रेयहु लहीजिये। धर्मशास्त्रहि तनो पठन पाठन करो, ज्ञानके अर्थ स्वाध्याय नित

विस्तरो ॥९५॥ मन जु इंद्रिय तनौ रोकनो इष्ट है, व्रत शीलादि पालन सदा श्रेष्ठ है। याहिको नाम संजम सदा ख्यात है, स्वर्ग अरु मोक्षदायक सु अवदात है ॥ ९६ ॥ पर्वके बीच उपवास शुभ धारिये, तपसु प्रायश्चितादिक सकल कारिये। एम षटकर्म ग्रहबीच नित धार ही, जास बिन कर्मको बंध विस्तारही ॥ ९७ ॥

चौपाई—षट पुन्यकर्म जु नित्य कराय, सो ही ग्रहस्थ ब्राह्मण कहाय। इम जान ग्रही षटकर्म धार, सो स्वर्ग मोक्ष देनहार ॥ ९९ ॥ इम चक्री द्विजवर्णहि थपाय, ते धर्म कर्म नित प्रति कराय। तिनको सुदान नितप्रत दिवाय, इक दिनकी अब वर्णन सुनाय ॥ ९९ ॥ निसमैं सोवत महलन सुमांह, तहां षोडसस्वप्न सु इम लखाह। तेईस सिंह देखे महान, ते बनमांही सु विहार ठान ॥१००॥ एक तरुण सिंघ मृगलार जाय, हस्ती सु भार अश्वहि लदाय। सूके त्रण पत्र जु छाग खाय, गजपर देखो बंदर चढ़ाय ॥ १०१ ॥ काकन कर बाधित उलू देख, पेखे नृत्यत भूत हि विशेष। इक मध्य शुष्क सरवर निहार, कोनो माही जल भरो सार ॥१०२॥ धूली आच्छादित रत्न थाय, बालक जु वृषभ रथ ले चलाय। चन्द्रमा ग्रहणयुत नृप लखाय, मेघाच्छादित सूरज दिखाय ॥ १०३ ॥ पूजा नैवेद्य जु स्वान खाय, बहु देख वृषभ जु साथ जाय। गोबरपर पटबीजन रमात, हस्ती है जुध करते लखात ॥ १०४ ॥ इम सोलह सुपनको निहार, जाग्रत है मनमाही विचार। मतिश्रुत बलतैं किंचित

सुजान, तौ पन निश्चै नाही जु ठान ॥ १०५ ॥ पुन प्रात भये तज सेज सोय, सामायक आदिक कर वहोय। बहु मुकट बन्ध नृप साथ लीन, सेना संजुत नृप गमन कीन ॥ १०६ ॥ त्रिजगद्गुरु जिनवर पास जाय, परिणाम भक्ति पूजा कराय। मन वचन काय त्रय शुद्ध थाय, सब भूपत संग चक्री नमाय ॥ १०७ ॥ बहुविध द्रव्यनसे पूज ठान, गुण वर्णन कर पुन पुन नमान। ग्यानावर्णी जु अवधि कहाय, ताको उपसम तब कराय ॥ १०८ ॥ तब ही शुभ पायो अवधिज्ञान, परणाम विशुद्ध सेती लहान। तीर्थंकर भक्ति तने पसाय, इस लोकमांह इम फल गहाय ॥ १०९ ॥ परलोकतनी को कहे बात, क्या क्या सुखको सो नर गहात। तब धर्म श्रवण कारण महान, नर कोठेमें बैठो सुजान ॥ ११० ॥

गीता छन्द—स्वर मोक्षकी दायक सु है विध वृष सुनो जिनवर कहो। जग उदयकर्ता दयापूर्वक, तत्व गर्भित सरदहो ॥ तब अवधिज्ञान थकी सुचक्री स्वप्न फल सब देखियो, उपकार सबको जान मनमें प्रभू सेती पूछियो ॥ १११ ॥ भगवान मैं ब्राह्मण सुकीजै धर्म हेत विचारके, ये योग्य है जु अयोग्य कहिये कृपा द्रिष्टि निहारके। जो स्वप्न सोलहमें जु देखे शुभ अशुभ तिन फल भनो, यह ध्वांत संशय हृदय माही ताहि प्रभु तत्क्षिण हनो ॥ ११२ ॥ इम प्रश्न सुन भगवान वाणी, खिरी सब सुखदायजी। हे भव्यतें ब्राह्मण करे इस काल धर्म बढायजी, तीर्थेश शीतलनाथ तीरथ मार्ग शुद्धि तजायजी।

शुभ धर्म छोड़ कुपथ मिथ्या धर्म ताह चलायजी ॥ ११३ ॥ यह जैन धर्मरु मुनि श्रावक तास द्वेषी थाय है, खोटे जु शास्त्रनको रचे तब बहुत लोग ठगाय है । बिन शील निर्दय धूर्त कुटिल जु लोभमें तत्पर सही, पुण्य कर्म करके रहत जानो निंद्य अघ पंडित वही ॥ ११४ ॥ जे विषय अंध अतृप्त हो हैं खाद्य स्वादन तत्परा, सब जगत दूषन खान जानो इम क्रम हि दुठता धरा । स्वप्न तनो फल सुनो किंचित जो अशुभ बहु थाय है । आगे सुपंचमकाल होवे, तासमें बरताय है ॥११५॥

चौपाई—तेइस सिंघ जु तुमहि दिखाय, पर्वतकूटहि माह चढ़ाय । ताको फल इम जाननरिंद, महावीर बिन और जिनिंद ॥ ११६ ॥ सब आरजखंडमें विहराय, सकल कर्मको नास कराय । सास्वत मोक्ष सुथान लहाहि, तिनके तीर्थे कुलिंगी नाहि ॥ ११७ ॥ मृग वेष्टित इक सिंघ लखाय, ताको फल सन्मत जिनराय । ताके तीर्थ कुलिंगी होय, बहुते पाखंडी अव-लोय ॥११८॥ गजको भार अश्व ले जाय, ताफल इम जानो नर राय । बल कर रहित मुनीश्वर होय, पूरण कार्य करै नहि सोय ॥ ११९ ॥ सूके द्रुमको अजा सुखात, यह सुपनो देखो तुम रात । निरमल आचारी नर जात, ते खोटे आचरण करात ॥ १२० ॥ गज आरूढ़ सुमरकट देख, ताकौं फल इम जान विशेष । अकुलीनी बहु राजा जोय, उत्तम वंश नृपत नहि होय ॥ १२१ ॥ काकन कर उलूक बाधाय, तिस स्वप्नेको फल इम थाय । जैन मुनीको बहु नर त्याग, सेय कुलिंगी धर अनुराग ।

॥ १२२ ॥ नृत्यत भूत जु तुमहि लखाय, ताको फल इम है दुखदाय। जन्म विवाहादिकके माह, व्यंतर देवनको पूजाह ॥ १२३ ॥ मध्य शुष्क देखो सर एक, ताको फल सुन धरो विवेक। तिया पुरुष बहुते गिन लेह, होय कुशीली अबकर तेह ॥ १२४ ॥ गोमय पर पटवीजन थाय, ताको फल प्रभु एम बताय। नीच सुघरमें लक्ष्मी होय, और रूप धारे बहु सोय ॥ १२५ ॥ हस्ती जुध करते जो देख, ताफल राजा लडे विशेष। सोलह सुपननको फल एम, दुखदाई विष तरुवर जेम ॥ १२६ ॥ कोड़ाकोड़ी सागर जाय, तब इन स्वमनको फल थाय। इम फल सुनकर भरत नरेश, नम कर आयो अपने देश ॥ १२७ ॥ दुःस्वप्नकी शांति निमित, जिनग्रह बनवायो शुभ चित। पूजा बहुविध सेती करी, प्रभु अभिषेक कियो शुभ घड़ी ॥ १२८ ॥ शांत कर्म जो अति ही कियो, पात्रनको बहु दान जु दियो। रत्नमई जिनबिंब बनाय, तिनकी प्रतिष्ठा करवाय ॥१२९॥ चौबिस घंटा तहां बजाय, हेम संकलन माह बंधाय। पुर गोपुर तैं बंदनमाल, निज द्वारे बांधी तत्काल। द्वार मांह घंटा लगवाय, आते जाते मुकट लगाय। तबही जिनवर सुमरण होय, ऐसो कार्य कियो नृप सोय ॥ १३१ ॥ भक्ति राग उरमें अति धरी, अष्ट द्रव्य ले पूजन करी। नुत थुत करत निरंतर राय, स्वर्ग मोक्ष फल जासे थाय ॥ १३२ ॥ तिसी रीतको पुरजन देख, द्वारे घटा बांध विशेष। जिन मूरत द्वारे पधराय, आते जाते नमन कराय

॥१३३॥ सोई बंदनमाल कहाय, अब्लो ताकी रीत चलाय। मंदिर बाहर सिखर महान, प्रतिमा थापी सुख दातार ॥१३४॥ बाहरसे तिन दर्शन होय, जो अस्पर्श लखत मुद होय। फुन घोटकपर है असवार, करत प्रदक्षणा चक्री सार ॥१३५॥ जय अरहंत सुमुखसे भने, पुष्पांजलि क्षेपन बहु ठने। इनको देख प्रजाजन सबै, ताही विध करते भये सबै ॥ १३६ ॥ अबै नगर परकम्मा करे, लोकमूढ़ चितमाही धरे। चौबीस तीर्थंकर गुण खान, जो इसकाल होय सुख दान ॥ १३७ ॥ होय गये अरु हो है सही, सबकी गिनति बहत्तर कही। पर्वत श्री कैलास महान, तापर शुभ चैत्यालय ठान ॥ १३८ ॥ हेमरत्नमय तुंग अनूप, बनवाये सुबहत्तर सूप। तीर्थंकरकौं जितौ शरीर, तितनी बनवाई नृप धीर ॥ १३९ ॥ जैसो प्रभुको वर्ण जु थाय, तैसी ही मूरत सुरचाय। सब लक्षण बनवाये खरे, रत्नमई सबके मन हरे ॥ १४० ॥ 'तिनकी प्रतिष्ठा करवाय, विध संजुक्त सब ही पूजाय। चव विध संघ तहां सब आय, परमोच्छव तबही वर्ताय ॥ १४१ ॥ सो अब भी जिन मूर्ति महान, गिर कैलास विषै शुभ जान। देव विद्याधर अब भी जाय, पूजन करके हर्ष लहाहि ॥ १४२ ॥ कोड़ाकोड़ी सागर तास, बनवाये हुवे शुभ जास। विचमें तास मरम्मत भई, सगर चक्रधरने निर्मई ॥१४३॥ चार तरफ खाई बनवाय। तामें गंगा डारी लाय। भूम गोचरी सके न जाय, यहांसे वंदन कर शुभ भाय ॥ १४४ ॥

गीता छंद–ग्रहपतकों यह चाहिये जो चैत्य चैत्यालय करें। या सम सुपुन्य न और कोई काल बहुजन विस्तरे॥ इम वृष करत शुभ आद्य संघाधिप पदी चक्री गही। त्रय ज्ञान धर गुणगण जलधि दर्शन विशुद्ध धरे सही॥ १४५॥ जिन पूज कर मुनि दान देवे पर्व उपवासहि धरे। यम नियम पाले भावसेती सर्व दोषहि परहरे॥ चितमाह एम विचार है यह धर्म तरुवर फूल है। सब ही जु सुखको भोग है नहीं धर्म उरसैं भूल हैं॥ १४६॥ इस धर्मतैं धन ईश होवे और जिनपत होय हैं। 'तुलसी' सुपति अरु चक्र पदवी वृष थकी सब जोय हैं॥ तातैं सु वृष अर्थी भविकजन धर्म उर धारो सदा। सो धर्म मुझ भव भव मिलो ताकूं नमूं चित है मुदा॥ १४७॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे श्रीसकलकीर्तिविरचिते भरतचक्रिणा द्विज स्थापन स्वप्नवर्णनोनाम सप्तदशम् सर्गः॥ १७॥

अथ अठारहवाँ सर्ग ।

गीता छंद–श्रीयुक्त वृषभ जिनेश वंदूं वृषभ चिह्न सु पग विषैं, वृष तीर्थकरतां जिन प्रथम उत्तम सुवृष नायक लखे । वसु कर्म जीतन हार जय सुकुमार गणनायक कहै, योगींद्रदेव व ऋद्धिसागर नमन कर हम सिध चहे ॥ १ ॥

चौपाई–भरतनतनों सेनापत मान, चौदह रत्ननके मध जान। वृषभ जिनेश्वरको गणधार। इकहत्तर वो जानो सार ॥२॥ जयकुमार नृप सील सुवान, नार सु लोचन सती महान । तिनकौं चरित सु पावन जान, मैं संक्षेप करू बखान ॥ ३ ॥ सील दानकौ फल सुखकार, जासौं परघट होवे सार । भरतक्षेत्र कुरजांगल देश, हस्तनागपुर तहां सुवेश ॥ ४ ॥ राज करे सोमप्रभ सार, राणी लक्ष्मीवती निहार । तिनके जयकुमार सुत जान, जग विजई परतापी मान ॥५॥ जैकुमारके चौदह भ्रात, विजयादिक जानौ विख्यात । ते कुमार गुण धरे अनेक, रूप-कला लावन्य विवेक ॥ ६ ॥ पंद्रह सुत युत सोम सुराय, भ्रात श्रेयांस सहित सोभाय । तैसे ताराग्रह युत सार, सोभै चन्द्र सु तम हर्तार ॥ ७ ॥

जोगीरासा—एक दिवस नृपकाल लब्ध वस भव भोगन वैरागे । निज पदमें सुत जयकौ थापौ मुन पदसे अनुरागे ॥ धनधानादिक अथिर चितते तीर्थंकरके पासे । जाय ऋषभ जिनको वंदन कर परिग्रह तज दुखरासे ॥ ८ ॥ मन वच काय त्रिशुद्ध सुकरके दीक्षा ली हितकारी । शुक्लध्यान असिते

कर्मनकी सेना सबै विदारी ॥ केवलज्ञान उपाय सुरनते बहु विध पूज लहाई। फुन अघाति हति शिवमें पहुंचे सब वंदे तिह ठाई ॥ ९ ॥

चौपाई—जय राजा पितु पदको पाय, बंधुजन पोषे हरषाय। पाले प्रजा रहित जंजाल, सुखमें जात न जाने काल ॥ १० ॥ एक दिवस नृप जय सुकुमार, धर्म श्रवणकी इच्छा धार। नगर बाह्य उद्यान मझार। पहुंचे निज इच्छा अनुसार ॥ ११ ॥ तहां बैठे थे इक श्री मुनी, शीलगुप्त धारक बहु गुणी। मन वच काय त्रिशुद्ध प्रणाम, कर नृप पूछो वृष अभिराम ॥ १२ ॥

अडिल्ल—मुन बोले सुन भव्य धर्म द्वै भेद है, पंच अणुव्रत सप्तसील श्रावक गहैं ॥ दश लक्षण मुन-धर्म सु उत्तम जानिये। इम प्रकार सुन धर्म सु श्रावक व्रत लिये ॥ १३ ॥

दोहा—नृप संग तिस बनके विषै, नाग ना[illegible] आय। सुन वृष अति हर्षित भये, शील व्रत सुधराय ॥ १४ ॥

चौपाई—नृप जयधर्मामृत कर पान, जन्म जरा मृत नाशक जान। ह्वै सन्तुष्ट नमन कर राय, निजपुरमें आये विहसाय ॥ १५ ॥ इक दिन वर्षा ऋतुके मांह, नमतैं विद्युत पात लखाय। त[illegible] एक नाग मर गयौ, नागकुमार देवसो भयो ॥ १६ ॥ अन्य दिव[illegible] गजपै असवार, ह्वै तिस बनमें गये कुमार। उस नाग[illegible] [illegible] [illegible], हुये पिजाती [illegible] सु सहा ॥ १७ ॥ तास जात काकोदर [illegible] [illegible] लख जय नृप लीला ठान। नील कमल मारो [illegible], नृत्य लोग कोपि अति कही ॥ १८ ॥

लाठी ईंट काठ पाषाण, तिनकर मारो सर्प अज्ञान। सील मंत्र ते बहु दुख होय, ताकी दया करे नहि कोय ॥ १९ ॥ तब काकोदर लहके मीच, जलदेवी गंगाके बीच। काली नाम बड़ी विकराल, रौद्ररूप अति मानो काल ॥ २० ॥ नागन दुराचारनी सोय, शुभ लेश्यापर भाव सुजोय। सो मरकर निजपियके पास, देवी भई रूपगुणराम ॥ २१ ॥ नागकुमारी देवी भई पतिकी प्राण वल्लभा थई। जयकुमारसे रोषित होय, पतिको सिखलाईयो जो वहोय ॥ २२ ॥ सुनके सुर क्रोधित अति भयो, रात्र समै जयके ग्रह गयो। सोवै थे तहां जय सुकुमार, श्रीमति तियसो वचन उचार ॥ २३ ॥ नागन बात कहूं सुन नार, आज लखो हम अचरजकार। नागिनी एकदिन वनके माह, शीलव्रत धारो मुन ठाय ॥ २४ ॥ आज कुकर्म विषै सोरती, काकोदरके संग दुमती। ताकों लख हम कंकर जोय, मारी सो अति रोषित होय ॥ २५ ॥

दोहा—नागदेव इम वचन सुन, [illegible] निंदा बहु कीन। अहो कुटिलताई विषै, ये है बड़ी प्रवीन ॥ २६ ॥ कहा क्रूर मैं सर्प थो, कहा दयामय धर्म। मैंने [illegible] थो जो पर्म ॥ २७ ॥ ये मेरो वर मित्र [illegible] यो निज निंदा बहु करी, देव सु नाग[illegible] ॥ २८ ॥

चौपाई—नमस्कार करि नागकुमार, [illegible] दियो [illegible]। याद करो जब है काज, आऊंगो [illegible] महाराज ॥ २९ ॥ यह कह निज स्थानक सुर [illegible], देख पुन्य महात्म [illegible]।

हनन हार होवे सुखकार, यह वृष महिमा अगम अपार ॥३०॥ चक्री संग नृप जय सु कुमार, खेचर भूचर सुरगण सार। तिनको जीत प्रताप सु जान, प्रगटायो सुख करे महान ॥३१॥ और देस काशी शुभ लसे, वाणारस नामा पुर बसे। राय अकंपन राजे जहां, ईत भीत नहि व्यापे तहां ॥३२॥ गृहस्थ तनो आचार्य अनूप, माने चक्री आदिक भूप। नार सुप्रभा ताके ग्रहे, धर्म कर्ममें तत्पर रहे ॥ ३३ ॥ नाथ वंशमें अग्रज जान, सुत उत्तम उपजे सुख दान। हेमांगद सुकेत श्रीकांत, इक सहस्र उपजे इम भांत ॥ ३४ ॥ सती सुलोचन उपजी एक, धरे रूप लावन्य विवेक। दिव्यरूप लक्ष्मी सम जान, महासती शुभ आकृतवान ॥३५॥ शुभ लक्षण कर भूषित देह, जिन पूजा ठाने धरनेह। स्वर्ण तने उपकर्ण मगाय, तिनसों श्रीजिन पूज रचाय ॥ ३६ ॥ श्री जिनको अभिषेक सुकरे, उत्तम पात्रदान अनुसरे। जिन आज्ञा पाले सुमहान, शुभ भावन सों सुनो पुराण ॥ ३७ ॥ सुता सुलोचन मानो नेह, पुन्य मूर्त है निसंदेह। एक दिन फालगुण मास मझार, नंदीश्वरको पर्व विचार ॥ ३८ ॥ अष्टाह्निक पूजा शुभ करी, फुन गंधोदक ले तिस धरी। पितुको जाय दई हरषाय, पिता लेय मस्तकमें लाय ॥ ३९ ॥ जाय सुता अब करो अहार, भाषो यूं नृपने हित धार। कन्या योवनवान निहार, मंत्रिनसें पूछो नृप सार ॥ ४० ॥ कन्या रत्न किसे दीजिये, जाचक भूप बहुत पेखिये। काके योग्य सु कन्या सार, सो अब भाषो कर सुविचार ॥ ४१ ॥ इम वच सुन श्रुतार्थ

परधान, बोलो हे राजन गुणवान । अर्ककीर्ति चक्री सुत जान, वरगुण पूरित लक्ष्मीवान ॥ ४२ ॥ ताको कन्या दीजे सार, लक्ष्मी कीरत बढ़े अपार । सुन मंत्री सिद्धारथ जोय, वचन निषेधत बोलो सोय ॥ ४३ ॥

दोहा—बुधजन निज समसे करै, सोई उचित संबंध । होय बड़ा जो आपसे, तासो किसो प्रबंध ॥ ४४ ॥

अडिल्ल—भूप प्रभंजन वज्रायुधबलि भीम है, सुरथ मेघे-श्वर आदिक गुण सीम है । इनमें काहू नृपको कन्या दीजिये, तब बोलो सरवारथ इम नहि कीजिये ॥ ४५ ॥ भूमगोचरिन तैं प्रथम संबंध है, बंध अपूरव लाभ अर्थ परबंध है । खेचर नृपके मध्य किसो नृपको सही, कन्या निज परणाय देहु सुंदर यही ॥ ४६ ॥ बोलो सुमत प्रधान ठीक यह नहीं कही, जे भूचर नृप बैर बंधे तिनतैं सही । तातैं याको भूप स्वयंवर कीजिये, जाकौ कन्या वरैं तासको दीजिये ॥ ४७ ॥ यह विधान शुभ जान पुराणन उच्चरो, रीत पुरातन ताहि अबै परघट करौ । इस प्रकार तिस बचन सबने मानिया, राजा राणी बंधु सबै चित आनिया ॥ ४८ ॥

रूपक चौपाई—भेट पत्र-युत दूत भिजाये, भूचर खेचर नृप बुलवाये । जान विचित्रांगद सुर आये, पूरब भव संबंध बताये ॥ ४९ ॥

गीता छंद—मिल नृप अकंपन सो नगरकी दिशा उत्तरमें रचौ । प्राग मुख सरवतोभद्र मंडप शुभ मिलाप बनो बचौ ॥ कोट पौली युक्त महल सुवर्ण रत्नमई महा । रत्न तोरण युक्त कूट

कुंकुमसे सोभा लहा ॥ ५० ॥ चौकोर चार दुद्वार युक्त सु कोट अति सोभै तहां । वर द्रव्य मंगल युक्त इत्यादिक बहुत शोभा वहां ॥ स्वयंवर मंडप अनुपम प्रीतसेती सुर करो । प्रीत कर्ता नृप अकंपन गये, सो तहां गुण भरो ॥ ५१ ॥ भूचर खेचर तहां नृपत आये, तिन्है नृप लेने गये । प्रीतयुक्त विभूतसे तिन सबनको लावत भये, उचित दानरु मानसे ती सबकी पाहुनगत करी । मंगल सु दायक जिन तनी कर भक्ति पूजा आदरी ॥ ५२ ॥

चौपाई—नगर उछालो नृप हरषात, गीत नृत्य वादित्र बजात । हेम पीठ पै कन्या साय, बिठलाई पूरब मुख होय ॥ ५३ ॥ शुद्ध सलिल सो कर अभिषेक, अष्ट नार चित धार विवेक । फुन कन्याने मंडन कीन, वस्त्राभूषण पहर नवीन ॥५४॥ पूजा श्री जिनकी कर सार, गन्धोदक मस्तकपे धार । राय अकंपन बैठे जाय, नार सुप्रभायुत हर्षाय ॥५५॥ बड़ो महेंद्रदत शुभ जान, दूजो देवदत पहचान । दोनों कन्याके रथ मांह, ढारे चंवर सुधर उत्साह ॥ ५६ ॥ गीत वादित्रनकी ध्वन सार, होय रही आनंद कर्तार । भ्राता हेमांगद चहु ओर, ठाडे सारी सेन्या जोर ॥ ५७ ॥ खगाधीस जो आये तहां, भूम गोचरी नृप अरु जहां । नाम ठाम तिनके विख्यात, अलग २ खोजी बतलात ॥ ५८ ॥

सवैया २३—दक्षिण श्रेणीको अधिपति यह, नमिको पुत्र सुने महान । अधिपति उत्तर श्रेणीको, यह विनयतनो सुत सु-

विनम आन, बतलाये खगपति बहुतेरे रूपवान अरु विक्रमवान। अर्ककीर्ति चक्रीको सुत यह लक्ष्मीवान सुबुद्ध निधान ॥५९॥ इनमें कोई नृप नहि ऐसो कन्या चित चुरावनहार, आगे अब नृपने कन्याको रतलख खोजो वचन उचार। राजा सोमप्रभुको सुत यह भूप अमरगण जीतनहार, लक्ष्मीवान प्रतापी जगमें जयकुमार यह अनुपम सार ॥६०॥ खोजेके वच सुनके कन्या पूरव भवसे नेह पसाय, रत्नमाल निज करमें लीनी, कन्या निज चितमें हरषाय। कामदेवके जीतनहारे जयकुमारके कंठ मंझार, कन्याने वरमाला डाली तब ही उत्सव भये अपार ॥ ६१ ॥

चौपाई–राय अकंपन चाले सोय, जय नृप पुत्री आगे होय। स्वजन विभूत लेय अधिकाय, निजपुरमें परवेश कराय ॥ ६२ ॥

गीता छंद–अतिषेण दुर्मुख दुष्ट सेवक अर्क कीरत सो कहो, जय नृप अकंपनतनी निंद्या कूट बहु कहतो भयो। स्वामी अकंपन दुष्टने कन्या प्रथम देनी करी, जयकुँवरको फुन दुष्ट चित है कुटल ताई आदरी ॥ ६३ ॥

चौपाई–मायाचारी मन धर लेत, निज सुभाग प्रगटनके हेत। स्वामी तुम्हें निरादर काज, बुलवाये थे सहित समाज ॥ ६४ ॥ मान भंग तुमरो इन करो, दुष्ट अकंपन चित नहीं डरो। यो दुर्वचन सुनत सुकुमार, बाढो हिरदे क्रोध अपार ॥६५॥ हृदय अग्नि सम जरतो भयो, ततक्षिण रणको उद्यत ठयो। तब अनवद्यमती परधान, अर्ककीर्तिसेती सुधमान ॥ ६६ ॥ बोलो

वच हितमित सुखदान, भोकुमार सुनिये मम वाण। रीत स्वयंवरकी है यही, कन्या वरे सुवर है वही ॥ ६७ ॥ भूपत मंडप माह अनेक, आये तामें से कोई एक। अशुभ होय वा लक्ष्मीवान, हो कुरूप वा रूप निधान ॥ ६८ ॥ फोड़े फुनसी युत तन होय, अथवा स्वेच्छाचारी कोय। कन्या वरै सुबर है सोय, मान भंग यामें नहीं जोय ॥६९॥ यातें कोप करौ मति स्वाम, न्यायवंत वर गुणगण धाम। कोप अग्नि यह है दुखदान, चव पुरुषारथकी है हान ॥ ७० ॥ सुखके कारण है दुखरूप, ये सब समझ लेहु तुम भूप। ऋषभदेवने जगके मांह, पूजनीक पद दीनौ याह ॥ ७१ ॥ सो यह राय अकंपन जान, माननीक है बुध निधान। जयकुमार दिग्विजय मझार, अद्वितिय संशय नहि धार ॥ ७२ ॥ यातें युद्ध न कीजै कोय, युद्ध करे ते नाश जु होय। इस प्रकार मनमें कर ठीक, हे कुमार हठ तजो अलीक ॥ ७३ ॥ इम प्रकार वच सुने कुमार, बोलत भयो तबै रिसधार तुमरी बूढ़ी वय तो सही, पण अब रंचक हू बुध नही ॥७४॥ पहले कन्या देनी करी, जयकुमारको गुण गण भरी। माया कर फुन हमें बुलाय, जयके कंठमाल डलवाय ॥७५॥ मायाचारी इसने करी, ताको दंड देहूं इस घरी। तब मेरे उर साता होय, यामैं संसय नाही कोय ॥ ७६ ॥ इत्यादिक वच कहे कुमार, मंत्रिनके वच लंघे सार। तब कुमार सब दलकौं साज, रणभेरी दीनी रण काज ॥७७॥ विजयघोष गजपै असवार, ह्वै रणभूमि विषै पगधार। राय अकंपन जानो एम, बिन कारण रण उद्यत

केम ॥ ७८ ॥ आकुल ह्वैके दूत बुलाय, बंधन युत सब वच समझाय। भेजो दूत शांतता अर्थ, निपुण दूत कारज समरथ ॥७९॥ दूत अर्ककीरत ढिग जाय, नमस्कार कर वचन कहाय। विनती एक सुनौ महाराज, सीम उलंघन योगनकाज ॥ ८० ॥ होऊ प्रसन्न अबै गुण रास, करौ न रणमें निज कुल नाश। यह कह दूत चुप्प हो रहो, रण निश्चय तब सब नृप कहौ ॥८१॥ दूत अकंपनसो सब कहौ, सुनत विषाद चित्तमें लहो। जयकुमार भी बैठे आय, क्रोधयुक्त वच कहे सुनाय ॥ ८२ ॥

दोहा—अन्यायी दुर आत्मा, तासूं अब ही जाय। बांधूगा मैं संखलन, यह कह रणको धाय ॥ ८३ ॥

कडखा छंद—विजयकर युक्त नब मेव ईश्वर दई, भेरिका रणतनी विजयघोषा। गज सुविजयार्द्धपे होय असवार, वर भ्रात युत चले जय सुगुण कोषा ॥ सुतसे इम कही रहो जिन धाममें शांति पूजा करो सु गुण गावो। यो अकंपन कहो पुत्र वसु संग ले सैन्ययुत शत्रु ऊपर सुधावो ॥ ८४ ॥ जयवर्मा सुकेता सिरीधर नृपत देव, कीरत सुर विमित्र जानो। नृपत यह पंच शुभ मुकुट बंध और भी नाथ अरु चंद्रवंशी महानो। प्रचंड अरु मेव प्रभु महाविद्याधरे बड़ी उद्धतता लिये मानो, इनहीको आदि दे नृपत जय संगहै अद्ध विद्याधरन युत पयानौं ॥८५॥ अर्क कीरतके संग मुनन आदिक सुखग और वसुचंद्र खग वीर्य वानो, भरतके पुत्रके अंग रक्षक भये और नृपत संग ले अपानो। सूरमा भटन जंतूनके हननको घोर अरु वीर

संग्राम कीनो, सरनते सैन्या निज लखी छाई तबै जय सुभ्राता न युत क्रोध लीनो ॥८६॥ गहो तब हाथमैं वज्रकांड हि धनुष करो रण घोर कायर डराई बाण जय कुंवरते सैन्य हटती लखी तबै चक्री तनुज रण कराई। अर्क कीरततने हुकमतैं सुन भिषग चढ़े आकाशमें बाण मारे, जयकुंवर हुकमतैं मेघ प्रभु नभ चढ़े बाण वर्षाय पर दल संघारे ॥ ८७ ॥ तम अगन मेघ गज आदि विद्यामई बाण बहु सुन भिषग तजे भारे, जयकुंवर पुन्यतैं मेघ प्रभुने तबै बाण अरिके सबै काट डारे, मेघ प्रभु भास्करादिक षगिनने लई जीत तब पुन्यसे सुक्खकारी, रण विषैं भटकेई छिन्न भिन्नांग ह्वै पड़े सो आयके भूमझारी ॥८८॥

चौपाई—मर्ण समैं कीनो शुभ ध्यान, रागद्वेष तज समता आन। उरमें स्मर्ण कियौ नवकार, चयकर पहुंचे स्वर्ग मझार ॥ ८९ ॥ केई भटनकी रणके मांह, भई सरनतैं जर्जर काय। दिक्षा धरन भाव शुभ कीन, चयके पहुंचे स्वर्ग प्रवीन ॥ ९० ॥ बहुत कहनते काज न जान, मरन समैं जैसो ह्वै ध्यान। अशुभ होय अथवा शुभ जोय, जैसी मति तैसी गत होय ॥ ९१ ॥ रणमैं गज भट मरे अपार, देख तिने जय किरपा धार। विजया-रथ गजपैं असवार, ह्वै के अर्क-कीर्त्त सो सार ॥ ९२ ॥ वचन कहे हितमित विख्यात, हे कुमार सुन मेरी बात। चक्रवर्तिने बहु जस लयो, न्याय मार्गपर वर्तत भयो ॥९३॥ अर तुम दुरा-चार यह करौ, कुपथ जगतमें प्रगटो बुरो। पर वामा इच्छक बहु जीव, दुखकी संतति लहे सदीव ॥९४॥ अपकीरति सब जगमें

होय, निंदनीक भाषे सब कोय। दोष पाप अरु क्रोध विशेष, होवे धर्मतनो नहि लेश ॥९५॥ धर्मी जन तिस नरको पास, नाही बैठन दे गुणरास। इस भवमाही बहु दुख लहै, परभव नर्क विषै दुख सहे ॥ ९६ ॥ रणमें बंधुजनको नाश, होवे निश्चयसे दुख रास। कुपथ चलनतें है अपमान, प्रभुता जाय होय बहु हान ॥ ९७ ॥ यह विचार करके सुकुमार, मद आग्रह तज ये इस वार। युद्ध छांड प्रीतिकर लोय, नातर मानभंग तुम होय ॥९८॥ इस प्रकार जय नृप बच येये, अर्ककीर्ति सुन क्रोधित भये। अपनो गज पेलो जय और, घातकारन लाभै तिस ठौर ॥९९॥ जयकुमार धर क्रोध प्रचंड, गजके युद्ध विषय बलवंड। विजया-रध गजको तिसवार, पेलो ततछिण नव सर मार ॥ १०० ॥ अष्ट चंद्र रवि कीरति जबै, बाण खेंच मारे नव तबै। सूर्य अस्त इतनेमें भयो, विघन सुजयकी जय मेटियो ॥ १०१ ॥ दशो दिशामें भ्रमर समान, फैलो अन्धकार जु महान। निशा विषै रण अधरम जान, करो निषेध तबै बुधवान ॥ १०२ ॥ सुनके रण निषेधके बैन, ठैर गई तब सारी सैन। पृथ्वीमें कीनो विश्राम, मृतक समूह भरी अघ धाम ॥ १०३ ॥ बीतो निशा उगो दिनराज, प्रात उठो जय नृप जयकाज। रिपु कर्मनके जीतनहार, जिन तिनकी स्तुत करके सार ॥१०४॥ रथ सु अरि जयमें असवार, घोटक स्वेत जुते है सार। वज्रकांड धनु करमें धरे, गजकी ध्वजा तुग फहरे ॥१०५॥ ठाडे तहां आय खम ठोक, सैन्य समूह विषै बेरोक। खेचर भूचर सब नृप

खड़े, मद उद्धतरूप भूमें अड़े ॥१०६॥ अर्ककीर्त्ति रथमें असवार, अष्ट चन्द्रको ले निज लार। चक्र चिह्न है ध्वजा मझार, रण सन्मुख धाये ततकार ॥ १०७ ॥

कड़खा छन्द—लगो तब होन रण देख कायर डरे खेंचके बाण जयकुंवर मारे। तासतें छत्र अरु ध्वजा आयुध सबै अर्ककीरत तने छेद डारे ॥ तबै वपुचन्द्र खग स्वामि रक्षा निमित जयकुंवर थकी रण आप कीनो। तृपत बाण दुहु ओरवे चलें विद्यामई छांडियो गगन चित क्रोध लीनो ॥ १०८ ॥ तब ही जय औरवे सुभट उठते भये भुजबली आदि योधा प्रधानो। उठो भ्रातानयुत सुभट हेमांगद और भ्रातानयुत जय कुधानो ॥ स्वामि हितकार दोहु और बहु भट उठे लिये कर शस्त्र रण करे घोरा। बजे मारू जबै सुभट घूमने लगे रुधिर परवाह अति चलो जोरा ॥ १०९ ॥ केई सुभटन तने सीस कट गिर पड़े लड़े नेक धंध ही रण मंझारी। मांस अरु लोहू थकी कीच जहां हो रही वृन्द भूतन तने नृत्यकारी ॥ घोर संगर विषै जयकुंवर पुन्य ते मित्र सुरनाग आसन कम्पायो। जान वृतांत सब आन दूत अर्ध शशि बाण अरु नागपासी सु लायो ॥११०॥ देयके सुर तबै गयो निज धाममें पुन्यसे होय क्या क्या न प्यारे। वज्रकांडक धनुषमें चढ़ाके तजो बाण जय सूर्य सम तेज धारे ॥ तबै वसुचंद्र खग सारथी रथ सहित भस्म ह्वै जेम तृण अग्न जारे। और रविकीर्ति ध्वज रथ सारथी अर्ध शशि सर थकी जार डारे ॥१११॥ दीर्घ आयु थकी बचो रविकीर्त अरु स्वामी सुत जानके नाह

मारो । अर्क कीरतको जयकुमरिने तबै बांधके निज सुरथ माह डारो ।। रिपुकी सैन्यके खगनको तत्क्षण नाग पासी बिषै बांध दीना जयकुंवरने तबै । पूर्व शुभके उदय जगत विख्यात जस आप लीना ।। ११२ ।।

चौपाई–अर्ककीर्तको तब जनराय, भूप अकंपनको सौंपाय। सौंपे विद्याधर जु अपार, विजयारथ गज हो असवार।।११३।। रण भू निरखत चले कुमार मृतकनको कीनो संस्कार । जीवत जनकी पालन करी, आजीवका वढ़ाई जु खरी ।। ११४ ।।

पद्धड़ी छंद–निज पक्षी राजनयुत उदार, कीनो तब नगर प्रवेश सार । ले बहु विभूत संग हर्ष धार, वंदी जन गावैं जश अपार ।। ११५ ।। पुरमें बैठे सब नृप तजाय, निज निज स्थानक बहु हर्ष पाय । तब नृपत अकंपन कहो एम, जिनपूजा कीजे धार प्रेम ।। ११६ ।। जातैं सब विघ्न विनाश होय, सुख संपत बाढ़े कष्ट खोय । यह लख सब जिन मंदिर मंझार, पहुंचे नृप उरमैं हर्ष धार ।। ११७ ।। जहां जयकुमार जिन पूज कीन, निर्मल वसुद्रव्य लिये नवीन । शुभ स्तोत्र पढ़ो अतिभक्ति धार, मुखसे जिनवरके गुण उचार ।। ११८ ।। अपनी निंद्या कीनी अपार, संग्राम तनो पातग निवार । अरु पुन्य प्रबल उपजाय धीर, निज स्थान गए जय नृप गहीर ।। ११९ ।। अब नृपत अकंपन भक्ति धार, जिन पूजे स्तुत मुखसे उचार । पुत्री ठाडी देखी उदार, जिन आगे कायोत्सर्ग धार ।। १२० ।। रण अंत जु लौ त्यागे अहार, अरु ध्यान धरे सब शांतकार ।

यह लखके तब नृप वच सुनाय, सोपुत्री तेरे शुभ बसाय ॥१२१
सब भये मनोरथ सफल आय, सब विघन समूह भये पलाय ।
हे पुत्री अब व्युत्सर्ग छांड, चित्तमाही अब आनंद मांड ॥१२२॥
इम कहकर पुत्री संग लीन, बंधुजन युत चाले प्रवीन । तिस
साथ सु निज आवास जाय, हर्षित मनमें होते अघाय ॥१२३॥

चौपाई—नागपासमें नृप खग जेह. बांधे थे छाडे सब तेह । तिनको स्नान सु भोजन दीन, प्रिय वचसे संतोषित कीन ॥ १२४ ॥ अर्ककीर्त संतोषित भयो. अपनो आपो बहु निंद्यो । तिनके गुणको स्तवन कराय, निज अपराध क्षमा करवाय ॥ १२५ ॥ फुन गजपैं करके असवार, भूचर खेचर बहु नृप लार । सहित विभूत गये जिन धाम । प्रीतयुक्त कीनो परिणाम ॥ १२६ ॥ महाभिषेक कियो सुखदाय, शांति होत श्री जिनगुण गाय । भक्ति थकी पूजा अर्हंत, कीनी अष्ट दिना पर्यंत ॥१२७॥ तहां सुजय कुमारको लाय, विधि पूर्वक मिलाप करवाय । आपसमें बहु प्रीत उपाय, एकीभाव अखंड कराय ॥ १२८ ॥ लक्ष्मीवती नाम जसु जान. बहन सुलोचनकी गुण खान । सहित विभूतिसे परणाय, दीन्ही अर्ककीर्तको राय ॥ १२९ ॥ भेट करी संपत बहु तदा, बहुत विनययुत कीने विदा । पहुचावनको केती दूर, गये अकंपन अरु जयसूर ॥ १३० ॥ नृप विद्याधर और पुमान, तिनसों मीठे वचन बखान । वाहन वस्त्राभूषण दिये, प्रीत सहित सु विसर्जन किये ॥१३१॥ प्रथम स्वयंवरमें जो पाय, सोई चित्रांगद सुर आय ।

जय सुलोचनाको शुभ ब्याह, कीनो तानैं सहित उछाह ॥१३२॥ भेव प्रभु सुकेत नृप जान, निज आश्रित भ्रातादि प्रधान। दान मानसे तोषित किये, ब्याहपीछे सुविसर्जन किये ॥१३३॥

छंद चाल—तब नाथवंसको स्वामी, शुभ नृपत अकम्पन नामी। जयनिजपा मात्र बुलायो, तासो शुभ मंत्र करायो ॥१३४॥

पद्धड़ी छंद—जिम चक्रवर्ति परसन्न होय, अब ही शुभ कारज करो सोय। इम कहकर दूत सुमुख पठाय, सौंपी रत्नकी भेट तांय ॥१३५॥ तब शीघ्र चतुर सो दूत जाय, भरतेश्वरके दर्शन कराय। बर भेट तबै शुभ नजर कीन, नम करके बच भाखे प्रवीन ॥ १३६ ॥

चौपाई—भो देव अकंपनने ग्रह माह, करो स्वयंवरको उत्साह। बहुते नृप खग आये जहां, कन्याने बरमाला तहां ॥ १३७ ॥ डालो जयकुमार उरसार, प्रीत सहित धर हर्ष अपार। विद्याधरको तप वसु कीन, अर्ककीर्त तिनको संग लीन ॥ १३८ ॥ जयकुमारसेती संग्राम, कीनो तुम जानत गुण धाम। अवधिज्ञानसे सब जानंत, तुम आगेमैं केम भनंत ॥१३९॥ तिन दोनोंको भयो विवाह, सौ तुम जानत हो नरनाह। प्रभुताने कीनो अपराध, ताको दंड देहु अब साध ॥ १४० ॥ जयकुमार सुअकंपन जान, दोनों तुम चाकर गुण खान। यह सुन चक्रवर्त गुण रास, दूत बुलायो विष्टर पास ॥१४१॥

सवैया ३१—कहो दूतने सु एम राजा सु अकंपनने ऐसे बच कहकर तोह कही भेजा है, जो तो सब माह बड़े गुणकर

पूजनीक ग्रहाश्रम बीच शुभ न्याई धरे तेजा है। केवल विजय मेरी जै कुमारहीतै भई शेष रत्न निद्य सुत मेरौ कहा साज है, अर्ककीर्ति सुत मोह अपकीर्ति दायक है रण माह तुम कैरो दमो शुभ काज है ॥ १४२ ॥

चौपाई—ऐसे अन्याईको दीन, लक्ष्मीवती सुता परवीन। काज अयोग कियौ उन येह, नातरमैं आवन नहि देह ॥१४३॥ इम वचनन तै तोषित होय, मंत्री नम चक्री पद दोय। आज्ञा लेय चलो सो तहां, जय सु अकंपनराजे जहां ॥ १४४ ॥ तिनकौं आय कियौ परणाम, चक्रीके वच कहे ललाम। तिन सुन नृप परसन्न होय, दान मानसे तोषो सोय ॥ १४५ ॥ अब जय नृप सुलोचना नार, भोगे भोग त्रिविध परकार। स्वसुर गृह सुखमैं चिरकाल, वीतौ जात न जानौ काल ॥१४६॥ स्वसुर गेहमैं बहु दिन भये, हस्तनागपुर तै तब अये। गूढ़पत्र मंत्रिनके सार, लख जय निजपुरकौ मन धार ॥ १४७ ॥ आज्ञा सुसरतनी शुभ लेय, निजपुरकौं चाले उमगेय। नृपत अकंपनने तब दीन, संपत सार रत्न परवीन ॥ १४८ ॥ केती दूर पुचावन गयो, नीठ नीठ बाहुड आइयौ। विजयारथ गजपे असवार, चाले जय सुलोचना लार ॥ १४९ ॥ विजय आदि लघु चौदह भ्रात, ते गजपे चाले हर्षात। और सुलोचकौ शुभ भ्रात, हेमांगद चालौ विख्यात ॥१५०॥ सहस्र भ्रातयुत अति छवि देत, ठेठ तलक पहुंचावन हेत। सहित विभूति चले हर्षाय, क्रमसो गंगाके तट आय

॥ १५१ ॥ देखो तहां रमणीक सुथान, डेरे तहां किये बुधवान । अपने अपने डेरे माह, विदा किये नृप सब हर्षाय ॥ १५२ ॥ सुखसो बीती सारी रात, उठे तबै हुवो परभात । सामायक आदिक हर्षाय, कीनो धर्मध्यान सुखदाय ॥ १५३ ॥

पद्धड़ी छंद–भ्रातनको बल रक्षा सुहेत । थापे फुन तिनसो वचन कहेत । स्वामी ढिग ह्वै अब वेग आय, निजपुर चालेंगे हर्ष लाय ॥ १५४ ॥ तब आयोध्याको गमन कीन, रविकीर्त्ति आदिक आये प्रवीन । नृप ले वनको अति हर्ष धार, पहुचे सु सभाग्रहके मंझार ॥ १५५ ॥

चौपाई–माणी सिंघासनपे राजंत, चक्री बहु नृप वेष्टित संत । निरख दूरसे जय नृप ताम, हाथ जोड कीना परणाम ॥ १५६ ॥ चक्री याको पास बुलाय, आज्ञा दी तहां बैठो जाय । चक्रवर्तिकी किरपा दृष्टि, लखके जय हर्षो उतकृष्ट ॥ १५७ ॥ चक्रवर्ति बहु स्नेह जताय, जय प्रति इम आज्ञा सुकराय । वधू सहित क्यों नहि आइयो, देखनको थो हमरो हियो ॥ १५८ ॥ अरु तेरे विवाह मंझार, हमको क्यों न बुलायो सार । करो अकंपनने जु अयुक्त, क्या हम मित्रवर्गतै मुक्त ॥ १५९ ॥ अरु मैं तेरो पिता समान, मोको आगे कर गुणखान । परणिवो जोग थो सार, सो तुम भूल गयो सुकुमार ॥ १६० ॥

दोहा–यो अकृतम स्नेह बच, सुन हर्षो जय सार । हाथ जोड़ विनती करी, सुनो नाथ सुखकार ॥ १६१ ॥

चौपाई—देव अकंपन नामा भूप, तुम आज्ञाकारी सुख रूप। ताने रचो स्वयंवर सार, निज पुत्रीको आनंदकार ॥ १६२ ॥ सो यह भेद वियाहन माह, विध अनादिकालकी ताह । सचित्र शास्त्रके जाननहार, तिनसे पूछ अरंभी सार ॥ १६३ ॥ तहां देवने औरहि ठनो, मम जड नाशक कारण बनो । आप प्रशाद शांति सब भई, तुम चरणनकी सर्ण जु गही ॥ १६४ ॥ तातैं रणमैं बचे पिराण, तुम षटखंड पती सुमहान । सुर खग नृप सेवे हर्षात, मुझसे किंकरकी कहा बात ॥१६५॥ स्वामी तुम ही हो गुणखान, मेरो इतनो राखो मान । चक्रवर्त इस बिनय सु देख, मनमें हर्षित भये विशेष ॥ १६६ ॥ वस्त्राभूषण वाहन दीन, वधु सुलोचन योग्य नवीन । आदरयुत जयनृपको तदा, चक्रेश्वरने कीनो बिदा ॥ १६७ ॥ चक्रवर्तिको बारंबार, कर प्रणाम चालो सुकुमार । क्रमसो गंगाके तट आय, वायस रुदन करंत लखाय ॥ १६८ ॥ सूखे तरुकी डाली जान, तापै रवि सन्मुख पहचान । यह अप सकुन लखो सुकुमार, चितमैं व्याकुल भयो अपार ॥ १६९ ॥ मति कहूं नियको होवे पीर, मूर्छा खाय पडो तब धीर । सब चेष्टाको जाननहार, तब सुर-देव जोतषी सार ॥ १७० ॥ बोला तियतो सुखसो जोय, तुमको जल भय किंचित होय। तिस वच सुनके जय नृप सार, कुछ हिरदेमें धीरज धार ॥ १७१ ॥ त्रिया मोहतैं तभी कुमार, प्रेरो हाथी गंग मंझार । आडे दहमें जल बहु सिरे, तहां मगर सम हाथी फिरे ॥ १७२ ॥

सवैय्या ३१ सा—तिरत सुगजराज भयो जहां गंगा विषे मरजु नदीका तहां समागम भयो है। वहां द्रहके मझार सर्पणीको जीव दुष्ट कालीदेवी ताने रूप जलचर कियो है॥ गजके चरण गहे दूखत लखो सुगज तबै हेम अंगदादि आप कूद पडे हैं। सतीसु सुलोचनाहु यह उपद्रव देख मंत्रराजको तबै सुमरन करे है॥ १७३॥

चौपाई—पण परमेष्ठी उरमें थाप, तनकी ममता छांडी आप, त्रिम अंतलो तजा अहार, सखियन युत गंगा सुमझार कियो प्रवेश जो गंगा सुरी, करे प्रवेश तहां व्रत भरी। तब कृतज्ञ जो गंगा सुरी, ता आसन कंपा तिम घरी॥ १७५॥ जान वृतांत सबै इत आय, काली कोतर्जी बहु भाय। सबको लाई गंगा तीर, पुन्यथकी सब है सुख धीर॥ १७६॥ तहां गंगा तट गंगा सुरी, रचो भवन शुभ हर्षित खरी। मणिमय सिंहासनपे थाप, सती सुलोचन पूजी आप॥ १७७॥ भेट किये भूषण पट सार, फुन मुखसे इम गिरा उचार। देवीने दीनो नवकार, सो सांचो ताफल अवधार॥ १७८॥ यह संपत पाई मैं सार, मगन रहूं सुख उदधि मझार। यह लख जय नृप सारी कथा, पूछे तब सुलोचना यथा॥ १७९॥

पद्धड़ी छंद—भाषो विंध्याचलके समीप, शुभ विंध पुरी त्रिम रतन दीप। तहां राजा बंधु सुकेतु मान, राणी प्रयंगुना सुता आन ॥१८०॥ विंधश्री ताके भवत तात, ढिग राखी मेरे सो विख्यात। इक दिन बसंत तिलका उद्यान, क्रीडंत डसी तहां सर्प आन

॥१८१॥ तब मंत्र दियो मैं नमस्कार, ता फलसे गंगा सुरी सार। चयके उपजी सुनिये प्रभु नाथ, यह सुन हर्षे जय नृप विख्यात॥१८२॥

चौपाई—मंत्रराजके स्मर्ण मझार, चित दीनो तब बहु नर नार। आदरसो नृप राणी तदा, गंगादेवी कीनी विदा ॥१८३॥ फुन अपने डेरेमें आय, चक्रवर्तिके वचन कहाय। चक्रवर्तिने दीनो जोय, भूषण दिये प्रियाको सोय ॥ १८४ ॥ सुखसों रात्र व्यतीत कराय प्रात चलो जय नृप हर्षाय। ध्वजा समूह बहुत लहकंत, केई प्रयाण करके विहसंत ॥ १८५॥ निजपुरमें कीनों परवेश, प्रिया सहित ज्यों सची सुरेश। इने देख सब अचरज धार, भाषें पुन्य तनों फल सार ॥ १८६ ॥ निज भ्राता और राजा लार, महासेन्य युत लसे कुमार। तुंगराज मंदिर सुखकार, तामें कियो प्रवेश कुमार ॥ १८७ ॥ तहां स्नेह सो नृपने सार, पूजे श्री जिन भक्त सुधार। जासे संपत मंगल होय, फुन सिंहासन बैठो सोय ॥ १८८ ॥ हेमांगदके निकट बिठाय, उचित सिंहासनपे हर्षाय। प्रिया सुलोचनको सुखकार, दीनो पटराणी पद सार ॥ १८९ ॥ हेमांगद सन्तोषित कीन, पाहुन-गत करके परवीन। केतेयक दिन राखो ताहि, प्रीत सहित जय नृप हर्षाय ॥१९०॥ पट भूषण बहु देके तदा, हेमांगदको कीनो विदा। जिन पूजा कर हर्षित होय, चाले निजपुरको तब सोय ॥ १९१ ॥ केइ प्रयाण करके पितु गेह, पहुंचे जाके नमन करेय। वार्ता जय सुलोचना तनी, सुख संपत सब तिनकी भनी ॥१९२॥ सुन राजा राणी हर्षाय, आनंदयुत नृपराज कराय। ईतभीत व्यापे नहीं कदा, सुख से रहे तहां जन मुदा ॥१९३॥

जोगीरसा—राय अकंपन काललब्धिवशु इकदिन चित वैरागे। भव भिरमनके दुखसों कंपित है आतममें पागे॥ अहो काल बहु बिन संजमके मैंने विरथा खोयो। पूज्यपनेसे कारज कहा जा निज आतम नहि जोयो॥ १९४॥ विषम अनंत डरावन खारी, सागर यह संसारो। रोग क्लेश दुख घोर तरंगन सेती अति भयकारो॥ काल अनाद थकी यह प्राणी मोह कर्मवश धायो। विनव्रत पोत तिरत नहीं डूबत चिरकाल वृथा ही गमायो॥ १९५॥ मोह रिपुकौं जौंलग चारित खड्ग थकी न संघारे। तौंलग कहां सुख कहां स्वस्थता कहां मोक्ष अवकारे। शुच द्रव्यनकौं अशुच करे वपु जगत अशुचता गेहो। दुखकौ भाजन सप्त धातुमय युत गंधयुत देहा॥ १९६॥ रोग उरग बिल निंद्य जहां पण इंद्रिय चोर बसाने। क्षुधा तृषा कोपाग्नि दहे तित सज्जनको रति ठाने॥ दुख पूर्वक महा दुखकौ कारण दुखदायक पहचाने। विषयनकौं सुख भास है जो निंद्य सुधी जन मानैं॥ १९७॥ सर्प—समान भोग ततक्षिण ही प्राण हरे दुख रासा। दुःप्राप्य दुःत्याग भोग बुध तिनसे कहा सुख आसा॥ जो कुछ तीन जगतमें सुंदर वस्तु दृष्टगोचर है। तन धन परवारादि विभव जो सो सब क्षणभंगुर है॥ जरा मर्ण जौलो नहि आवै तौलौ निज हित करिये। इत्यादिक चिंतवन करत वैराग्य द्विगुण नृप धरये॥ जीरण तृण जो राजलक्ष्मी त्यागनकौ उमगायौ। हेमांगद निज पुत्र बडेको राजभार सौंपायौ॥ १९९॥ रत्नत्रयकी प्रापत कारण आदीश्वर जिन वंदे। प्रभुके चरणकमलको निरखत लोचन अति आनंदे॥ बाह्याभ्यंतर परिग्रह तजकर

बहुत नृपनके संगा। मन वच तन त्रय शुद्ध होय जिनमुद्रा धार अभंगा ॥ २०० ॥ ध्यान अग्नकर घातिकरमचत्र इंधन ताको जारी। केवलज्ञान उपायो ततक्षिण लोकालोक निहारो॥ इंद्रादिक सुर पूजन कीनो चार अघातीय नाशे। शिवथानकमें बास सुकीनो सुख अनंत परकासे ॥ २०१ ॥

चौपाई—अबसौ जयकुमार हर्षाय, पूरब भवके स्नेह पसाय। भोगे भोग जगत्रय सार, पूरब पुन्यथकी अब धार ॥ २०२ ॥ निज कांता संग नृप हर्षाय, ग्रही धर्म धारे सुखदाय। व्रत सील उपवास सु धरे, जिन अरु गुरुकी पूजा करे ॥२०३॥ दान सुपात्रनको शुभ देय, धर्म प्रभावन अधिक करेय। जात न जाने काल अघाय, सुखसागरमें मगन रहाय ॥ २०४ ॥

गीता—इम पुन्य फलतैं जय विजय लही सर्वतैं अजयी भये। खगपत नृपनसे जय लही सुखसार जगमें भोगये ॥ कांता सु आदि विभूत पाई धवल जस अ त विस्तरो। अब विजय सुख वांछत पुरुष जिन धर्मको नित आचरो ॥२०५॥ ये धर्म जगमें विजयदाता सुधीजन सेवे सदा। इस वृषथकी नर अजय होवे, दुख नहीं पावे कदा॥ जिनधर्म गुण कर्ता त्रिमल वृष काज किरया आचरो। वृषमें सुचित दे सुतपमें धर्मात्मा धीरज धरो ॥२०६॥

दोहा—'तुलसी' पति कर कथित वृष, सो कुधर्म पहचान। वुधसागरको चंद्र सम, जिनवृष भवि चित आन ॥ २०७ ॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते सुलोचना जयविवाहवर्णनोनाम। द्वादशम् सर्गः ॥ १८ ॥

अथ उन्नीसवाँ सर्ग ।

दोहा—वृषभ, आदि अरहंत महंत—भय वरजित सतगुरु निर्ग्रंथ। जिनवर भाषित वाणी सार, बन्दूं कार्य सिद्धि करतार ॥१॥ इक दिन जय सुमहल ऊपरे, दस दिस निरखे आनंद भरे। दंपत विद्याधरको देख, जातिस्मरणाथकी भव पेख ॥ २ ॥ हा प्रभावती यूं बच चयौ, कहकर जय नृप मूर्छित भयौ। युगल कपोत निरखके जबै, हा! रतवर इम कहकर तबै ॥३॥ सुलोचनाने मूर्छा लही, परभव प्रीत याद आगई। तब सीतोपचार बहुकीन, तातैं चेतन भये प्रवीन ॥ ४ ॥ आपसमैं मुख निरखे सबैं, ज्ञान स्वर्गकौं प्रगटौ तबैं। अवधि होत ही सर्व लखाय तिष्टे दंपत नेह बढाय ॥ ५ ॥ इन दोनोंको चरित निहार, श्री मति आदिक सौकन नार। भाव अदेखसकेसे सही, आपसमें बतरावत भई ॥ ६ ॥ सीलवती पति याको कहे, याके चितमें रतिवर रहे। पत मूर्छित लख मूर्छा खाय, पडी कुटिलता चित्त धराय ॥७॥ इत्यादिक जो इनकी बात, जानी जयकुमार विख्यात। अवधिज्ञानके बलतैं राय, कहो सुलोचन सो हर्षाय ॥ ८ ॥ हेकांते अपने भव कहौ, ताकर इनको संशय दहै। प्रभावती रतवरके नाम, इनको कौतुक भयो ललाम ॥ ९ ॥ पति प्रेरी सुलोचना जबै, कहत भई तब निजभव सबै। जंबूदीप सुपूर्व विदेह, पुष्कलावती देश गिनेय ॥ १० ॥ तामध पुंडरीकनीपुरी, ताने स्वर्गलोक छबिहरी। प्रजापाल तहां राज सुकरे, सेठ कुबेर मित्र विस्तरे ॥ ११ ॥ तिसके धनवत आदिक

नार, अति सरूप शील भंडार। तिस श्रेष्टीको महल उतंग, वहां कपोत इक वसे सुरंग ॥ १२ ॥ सेठ तिसे रतवर उच्चरे, तातिय रतवेणा अनुसरे। ये कपोत जुग सुखसों रहे, सेठ प्रीत इनसों बहु गहे ॥ १३ ॥

पायता चन्द—मुन दानदेय हर्षावे, तातैं बहु आदर पावै। धनवति पुन्योदय आयो, सुकुबेर कांत सुत जायो ॥ १४ ॥ सब लक्षण युत बुध धारी, जय सेना मित्र सुखकारी। सुत पुण्योदयतैं आई, गोकाम धेनु सुखदाई ॥ १५ ॥ सो दुग्धादिक रसदाई, भोगोपभोग सब थाई। शुभ कल्पवृक्ष तिसधामा, उपजो सो अति अभिरामा ॥ १६ ॥ सो भोजन पट नित देवे, ये आनंदसो नित लेवे। बालक वय तज सुपकारा, है योवनवान कुमारा ॥ १७ ॥

गीता छंद चाल वंदो दिगंबरकीमें—इक दिना इस पितुने लखो, इसको सु योवनवान। चितयौ बहु तिरया बरे, या एक रूप निधान ॥ यों चितते व्याकुल भये, जैसेन मित्र महान। कहतो भयो सुकुमारके, इक नारको परमान ॥ १८ ॥

अडिल—श्रेष्टी एक समुद्रदत्त पहचानये, मित्र कुमारतनो बहनेउ मान ये। ताके प्रिया कुबेर सुमित्रा सार है, प्रियदत्ता तिस सुता रूप गुण धार है ॥ १९ ॥ तिसके रत कारण नामा सु सखी सही, बड़े बड़े घरकी बदिस कन्या कही। काहू दिन सा कन्या मिल आई सबै, लैन परीक्षा काज यक्षमंदिर तबै ॥ २० ॥

चौपाई—भेजी श्रेष्टीने हर्षाय, बत्तीस भोजन दिये बनाय। खीर खांड रस कर सब भरो, एक पात्रमें रत्न सु धरो ॥२१॥ कन्या यक्ष धाम मंझार, भोजन कर आई सब सार। सेठ सब-नसे पूछन करो, किसने रत्न गहो उच्चरो ॥२२॥ तब प्रियदत्ताने इम कहो, रत्न अमोलक मैंने गहो। जानी श्रेष्टी चित मंझार, होसी मम सुतकी यह नार ॥ २३ ॥ लगन महूरत शुभ दिखलाय, महा विभूत सहित हर्षाय। कर विवाह परणाई सार, प्रियदत्ता निज सुतके लार ॥ २४ ॥ राजा प्रजापालकी सुता, यशख्याति गुणवति गुणयुता। इन आदिक कन्या तिसवार, लज्जित ह्वै वैरागी सार ॥ २५ ॥ प्रथम अनंतमती हितकार, आर्या अमितमती फुन सार। तिनके ढिग सब कन्या जाय, दीक्षा धारी चित हरषाय ॥ २६ ॥ इक दिन काललब्धि वस-राय, प्रजापाल वैराग लहाय। लोकपाल सुतको दे राज, आप चले शिव साधन काज ॥ २७ ॥ शीलगुप्त गुरुके ढिग सार, बनी शिवं करमें तप धार। राणी कनक सुमाला आद, बनी आर्यका धर आह्लाद ॥ २८ ॥ और बहुतसे नृप वैराग, लहकर निज आतममें पाग। बाह्याभ्यंतर परिग्रह तजो, तप धरके परमातम भजो ॥ २९ ॥ अबसो लोकपाल नर राय, पुन्योदयते राज कराय। सेठ कुबेरमित्रकी बुद्ध, लेके परजा पाले शुद्ध ॥ ३० ॥ फल्गुमती झूठो परधान, चपल चित्त वश नृप सम जान। श्रेष्ठीसे सो संकित रहे, चिते बहुत उपाय सु चहे ॥ ३१ ॥ सेठ न आवे सभा मंझार, तो सब कारज सिद्ध

ह्वै सार । सिज्या अधिकारी जो थाय, भोजन द्रव्य दियो कछु ताय ॥ ३२ ॥ रात्र विषैं तू कहियों एम, संस्कृतमें सुर भाषे जेम। भो नृपश्रेष्ठी सुसर महान, तुमरो है सो पिता समान ॥ ३३ ॥ नित प्रत आवे सभा मझार, तातैं विनय सधे न लगार । तुम सिंहासनपै तिष्ठंत, तब श्रेष्ठी नीचे बैठंत ॥३४॥ तातैं जब कोई कारज होय, तबैं बुलाय लेउ मद खोय । मंत्री वच सुन सभाध्यक्ष, ऐसे ही वच कहे प्रत्यक्ष ॥३५॥ ये वच सुनके नृप चितई, जानो ये सुर आज्ञा भई । उठ प्रभात श्रेष्ठी बुलवाय, तिनसेती इम वचन कहाय ॥ ३६ ॥ तुम नितप्रत मति आवो जाव, हम बुलवाये तब तुम आव । इह वच सुनके सेठ ललाम, चितातुर पहुंचे निज धाम ॥ ३७ ॥ इक दिन लोकपाल नृप सार, लीनी घटा गजनको लार । गये सुवनमें करत विहार, तहां वापी लख विस्मय धार ॥ ३८ ॥ तहां तरवरकी डारी मांह, बैठो काक लखो कोऊ नाह ॥ पद्मराग मणी मुखमें धरैं, तिसकी महा प्रभा अनुसरे ॥ ३९ ॥ वापी जल ह्वै रक्त सरुप, जानो मणि वापीमें भूप । सेवक बहु दीने पैसाय, वापीमैं मणि ढूंढो जाय ॥ ४० ॥ चिरलौ ढूंढो रत्न न पाय, खेद खिन्न ह्वै घरको आय । और दिवस श्रेष्ठीकी सुता, वसुमति राणी क्रीडा युता ॥ ४१ ॥ कुंभ आदिक पावाकर जाय, ताडो नृप मस्तक तिस मांह । अनुरागी जनके संग नार, कहां कहां न करे अविचार ॥ ४२ ॥ उठ प्रभात नृप सभा मंझार, मंत्रिनतैं पूछो इम सार। पावाकर नृप ताडे जोय,

दंडितसे कैसो यक होय ॥ ४३ ॥ यह सुनके बोलो परधान, छेदो तिसके पग अरु पाण। ये वच सुन राजा मुसकाय, जानो मंत्री सठ अधिकाय ॥४४॥ तब ही श्रेष्ठीको बुलवाय, तिनसों प्रश्न कियो सब राय। बुधवान श्रेष्ठी तिसवार, इम उत्तर दीनों तत्कार ॥ ४५ ॥

अडिल–गुर जनको पद होय तो पूजन कीजिये, सिसुको पग होय तो शुभ भोजन दीजिये। नारी पग हो तो भूषण पहराइये, राजा सुन परसन्न भये अधकाइये ॥ ४६ ॥ फिर नृपने मणीकी वार्ता सब ही कही, सुनके श्रेष्ठीने उत्तर दीनो सही। सो मणी जलमें नाह वृक्षके उपरे, तिस आभाससे रक्त भयो जल सूपरे ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठीके वच सुन बुधवानीके सबै, जानै मंत्री दुष्टचित नृपने तबै। निज निंद्या अरु पश्चाताप सु आचरो, कहो सेठतैं नितप्रत अब आया करो ॥ ४८ ॥

चौपाई–एक दिवस श्रेष्ठीकी नार, सेठ सीस सित केश निहार। दिखलायो पतिको तिस बार, लख श्रेष्टी वैरागे सार ॥ ४९ ॥ भव भोगनतैं विरकत होय, छांडी सब उपाध मद खोय। श्रीवर धर्म गुरु ढिग जाय, दीक्षा लीनी शिव सुखदाय ॥५०॥ समुद्रदत्त आदिकके लार, लेके तप धारो हितकार। तब नारीकी ममता छार। अनशन आदि बहु तप धार ॥५१॥ मित्र कुबेर समुददत मुनि, प्राण समाध थकी तब गुनी। ब्रह्म कल्पके अन्त मंझार, उपजे लोकांतिक सुर सार ॥ ५२ ॥ ज्ञानवान इंद्रादिक नमे, एक जन्म ले शिवपुर गमे। रत्नत्रय फलतैं

तिस ठाव, सुख सागरमें मगन रहाय ॥ ५३ ॥ एक दिवस प्रियदत्ता नार, विपुलमती चारण ऋद्ध धार । मुनि तिने दीनों आहार, उपजायो तब पुन्य अपार ॥ ५४ ॥ नमस्कार कर बारंवार, प्रियदत्ता पूछो तिस वार । स्वामी आर्याके व्रत सार, अब है या लागे बहु वार ॥ ५५ ॥ अवधज्ञानतैं श्री मुनराय, सुत अभिलाषा जानी याइ । पांच अंगुली दक्षण करे, वामे करकी इक अनुसरे ॥ ५६ ॥ खड़ी करी इम श्रीमुनराय, ताको भाव सु इम समुझाय । पांच पुत्र इक पुत्री होय, अनुक्रमसे उपजाये सोय ॥५७॥ इक दिन आर्यागुण कर युता, जगत्पाल चक्रीकी सुता । अमितमति सु अनंतहिमती, सब संघ मध्य गुणणी सती ॥ ५८ ॥ अरु नृप प्रजापालकी सुता, गुणपति यशस्वती व्रत युता । तेहु आई संघ मंझार, व्रत अरु शील धरें हितकार ॥ ५९ ॥ सुन नृप श्रेष्टी वंदन काज, चाले पुरजन सहित समाज । अमितमती अनंतमति पास, सुनो गृहस्थ धर्म सुखरास ॥६०॥ दानादिकके देन मंझार, तत्पर भये बहुत नर नार । इक दिन सेठ गेह सुखकार, जंघा चारण युग मुनसार ॥ ६१ ॥ आये तिनको भक्ति धार, स्थापन किये निमित्त आहार । दंपत्त चित्तमे हर्षाइयो, विधयुत मुनको पड़गाइयो । ६२॥ युग-कपोत मुन दर्शन पाय, ततक्षिण जातीस्मर्ण लहाय । मुनिके चरण कमलको नये, बारंबार स्पर्शते भये ॥ ६३ ॥

दोहा—पूरब भव स्मर्ण ते, बढ़ो परस्पर नेह, इनको पूरब भव तनो । लख वृतांत सुन एह ॥ ६४ ॥ अंतराय आहारको, होत

भयो तिस ठांह। श्रेष्ठीके घरते निकस,[गये मुनी बनमांह ॥६५॥

रूपक चौपाई–इनकी चेष्टा लख सेठानी, जानो पूरबभव सुमरानी। तब कबूतरी सो इम भाखो, पूरबभवको नाम सुआखो ॥ ६६ ॥ सुनके चौंच थकी निज नामा, पूर्व लिखो रत वेगा तामा। निरख कपोत बात यह सारी, पूरबभव हू की लख-नारी ॥६७॥ कबूतरी सो प्रीत बढ़ाई, फुन प्रियदत्ताने हर्षाई। नाम कबूतरसे पूछीनो, वाहूने सुकांत लिख दीनो ॥६८॥ यूं निरखत कबूतरी नामी, लख पूरब भव हू को स्वामी। प्रीत कबूतरसौं अधिकाई, कीनो सो बरनी नहीं जाई ॥ ६९ ॥

सवैया ३१–चारण मुनीश तज सेठ गेहते अहार मारग आकाशसौं बिहारकर गये हैं, यह विरतांत नृप सुनके अमित-मती अर्जिका सौं ततक्षण पूछत सो भये हैं। अमितमतीने मुन मुखतै सुनो थो जेम सो नृप आगे वृतांत सब भने हैं, याही देश विषैं विजयारद्ध नामा गिर पास धान्यक सुमाला नाम एक शुभ बन है ॥ ७० ॥

चौपाई–सोभा नगर तासके पास, राजा प्रजापाल गुण-रास। राणीदेवीश्री सुखकार, तिनके एक सावंत निहार ॥७१॥ शक्तसेन वर भट परधान, ताके अटवीश्री स्त्री जान। सत्यदेव तिनके सुत भये, सब ही निकट भव्य बरनये ॥ ७२ ॥ राजा-सुत तिन सब मम पास, सुनौं गृहस्थधर्म सुखरास। चव पर्वो-पवास आदरे, अभख जु बाईस त्यागन करे ॥ ७३ ॥

उक्तं च बाईस अभक्ष सवैया २३–ओला घोर बड़ा निस

भोजन, बहुबीज बैंगन संधान, बड पीपल ऊमर कठूमर पाकर फल अरु होय अजान। कंदमूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदरापान, फल अति तुच्छ तुषार चलतरस जिनमत यह बाईस बखान ॥ ७४ ॥

चौपाई—शक्तसेन नामा भट सार, अतिथसंविभाग व्रत धार। इत्यादिक व्रत सबने गहे, व्रत भूषण कर भूषित भये ॥ ७५ ॥ बिन सम्यक्त सब व्रत लीना, अटवीश्री नारी इक दीना। निज पीहर मृनालवतिपुरी, गई हुती तहां आनन्द भरी ॥ ७६ ॥ ताकौ शक्तसेन गयो लेन, लेकर आवे थो युतसेन। धान्यकमाला बनसर नाग, डेरे किये तहां बड भाग ॥ ७७ ॥ आगे कथा सुनौ अब और, पुरी मृनालवती सरमौर। धरनीपति नृप राज कराय, रतवर्म्मा इक सेठ रहाय ॥ ७८ ॥ ताके ग्रह कनकश्री नार, सुत भवदेव भयो सुखकार। पुन्य हीन पापी अधिकाय, दुराचारमें तत्पर थाय ॥ ७९ ॥ और सेठ श्रीदत्त तिस पुरी, नारी विमलश्री गुन भरी। तिनके रतवेगा शुभ सुता, रूपकला लावण्य सयुता ॥ ८० ॥ और सेठ इकदेव अशोक, नारी जिनदत्ता गुण थोक। तिनके सुत सुकांत उपजयौ, सुंदर शुभ आशयसो भयो ॥८१॥ अब कुरूप भवदेव पिछान, दुरआचारी याकौ मान। इसकौ दुर्मुख नाम जु धरो, केईक उष्टग्रीव उच्चरो ॥ ८२ ॥ दुर्मुख श्रीदत्त मामा पास, जाचौ रतवेगा गुणरास। श्रीदत्तने तब उत्तर दियौ, तू जु कमाऊ नाही भयो ॥ ८३ ॥ तब दुर्मुख इम वचन कहाय,

दीपांतरसे द्रव्य कमाय। मैं लाऊंगा तबलौ माम, कन्या मत व्याहो गुणधाम ॥८४॥ दुर्मुख दीपांतरको जात, लखश्रीदत्त इम वचन कहात। काल तनी मर्यादा करौ, वर्ष सु बारह तब उच्चरो ॥ ८५ ॥ बारह वर्ष बीती तब जाय, दुर्मुख तौलौ नाही आय। तब सुकांतको कन्या दई, कर विवाह श्रीदत्त हर्षई ॥८६॥ फुन देशांतर सेती आय, दुर्मुख सारी बांत सुनाय। कोपित ह्वै वरवधू नवीन, तिन मारनको उद्यम कीन ॥ ८७ ॥ दुर्मुख दुठको कोपित जान, दंपत चितमें अति भय तान। शक्तसेनके सरणे गये, तिस डर भवदत्त कछु नहि कहे ॥८८॥ एकदिन महाभक्ति उर धार, शक्तसेन सुभटे तब सार। युग चारण मुनकौ आहार, दान दियौ शुभ सुख कर्तार ॥ ८९ ॥ और तिस सर्प सरोवर तनी, दूजी और वणिकपति धनी। मेर कदंब वणिक संग लिये, आनंद सो तहां डेरे किये ॥९०॥ प्रियधारणी नामा सार, श्रेष्टीके अर मंत्री चार। भूतारथ शकुनी बृहस्पति, धन्वंतर बुध धारे अति ॥ ९१ ॥ इन युत श्रेष्टी बैठो सार, हीन अंग इक पुरष निहार। श्रेष्टी मंत्रिनतैं पूछयो, किस कारण यह ऐसो भयो ॥ ९२ ॥

अडिल्ल—तब शकुनीने कही जु खोटे शकुनतैं, और बृहस्पत कही जु खोटे ग्रहनतैं। अरु धन्वंतर कही त्रिदोष थकी यहे, तब श्रेष्टी भूतारथ मंत्रीने कहे ॥ ९३ ॥ यह क्या कारण तब वो उत्तर देत है, यह सब हिंसा आदि पाप फल लेत है। इक दिन भटकी नारीने शुभ व्रत करो, ता युत भटने मुनको दान दियो खरो ॥ ९४ ॥

चौपाई—दान पुन्यतैं तिस ही काल, पंचाश्चर्य भये सु विशाल। निरख रत्न वृष्टादिक सार, श्रेष्ठी और धारणी नार ॥९५॥ निद्य निदान कियो भवकार, जो हमरे घर जन्म मझार। शक्रसेन चर मम सुत होय, ये वांछा वर्ते उर मोय ॥ ९६ ॥ याकी वधू सु हैं सुखकार, सो मम पुत्र वधू है सार। अब श्रेष्ठीके मंत्री चार, बिरकत है के दीक्षा धार ॥ ९७ ॥ द्वादश विध तप किये महान, मरण समाध थकी तज प्राण। ता फल स्वर्ग माइ ऋद्धधार, लोकपाल सुर उपजे सार ॥ ९८ ॥ ऐसे वचन सुनत नृप नार, रानी वसुमती तिस ही बार। पूरव भव निज याद सुकीन, मूर्छा खाय पड़ी दुख लीन ॥ ९९ ॥ है सचेत फुन तिस ही बार, आर्यासे भाषा इम सार। हे माता पूरव भव मांह, देवश्री मैं राणी थाह ॥ १०० ॥ सो तुमरे प्रसादतैं महां, उपजी वसुमती राणी यहां। पूरव भवको पति मोतनो, उपजो किस स्थानक सोभनो ॥ १०१ ॥ तब आर्याने उत्तर दियो, प्रजापाल नृप जो बरनयो। सोई लोकपाल नृप आय, तेरो पति उपजो सुखदाय ॥१०२॥ प्रियदत्ता सुनके ये कथा, जाति सुमरण पायो तथा। आर्यासे पूछो इम सार, मात पूरव जन्म मझार ॥ १०३ ॥ मैं अटवश्री नामा नार, शक्तषेण थो मम भर्तार। सो उपजो किस थानक आय, सो मोकूं दीजे बतलाय ॥ १०४ ॥ यह सुनि आर्या बोली सार, शक्तिसेन जो तुझ भर्तार। कान्त कुबेर सोई उपजयो, तेरो पति सुखदायक भयो ॥ १०५ ॥ सुख बोलो सुत जो सत देव, तेरी सुत सो

उपजो एव। नाम कुबेरदत्त जिस सार, सुंदर मनमोहन सुखकार ॥१०६॥ पूर्व सेठके मंत्री चार, तपकर लोकपाल सुरसार। भये हुते तिन तुम पति तनी, जन्म थकी सेवा बहु ठनी ॥ १०७॥ शक्तसेन जब मरण लहाय, तब भवदेव दुष्ट तहा आय। रतवेगा सुकांत दंपती, तिनको दग्ध कियो दुर्मती ॥ १०८ ॥ रतवेगा सुकांत तज प्राण, युगल कपोत भयो यहां आन। नाथ सहित धारण जो नार, पुन्य विपाकथकी अवधार ॥१०९॥ तेरे पतिके माता पिता, श्रेष्टी भये महोदय युता। रूपाचलके निकट सु सार, कांचन मलय सुगिर सुखकार ॥ ११० ॥ चारण मुनि तहां तिष्ठे सार, आये तुम ग्रह लेन अहार। युगल कपोत तने भव देख, चित्तमें करुणा धार विशेष ॥ १११ ॥ अन्तराय कर वनमें गये, अमितमती आर्या यूं कहे। सुन राजा आदिक नर नार, भव तन भोग स्वरूप विचार ॥ ११२ ॥ सुखसो काल व्यतीत कराय, एकदिन कछु प्रसंग शुभ पाय। आर्या यशस्वी गुणवती, तिनको नमि प्रियदत्ता सती ॥११३॥ पूछो नवयोवन मध सार, किस कारण तुम दीक्षा धार। यह सुनके आर्या तत्कार, सब वृतांत कहो तिस वार ॥११४॥ बत्तीस कन्या हम तुम सार, तुझ पति निमित्त आई तिस वार। तामेंसे तोको परणई, बाकी हम सब आर्या भई ॥ ११५ ॥ ये कथा सुनके धनवती, माता कुबेर कांतकी सती। और कुबेर सु सेना नार, जगत-पाल चक्रीकी नार ॥ ११६ ॥ अमितमती आर्याके पास, भई अर्जिका तज ग्रहवास। इक दिन युग कपोत हर्षाय, जम्बू ग्राम

पहुंचे जाय ॥११७॥ तंदुल चुगने कर्म पसाय, भये काल में अधकाय। तहां भवदेव तनो चर आय, भयो विलाव महा दुखदाय ॥११८॥ पूर्व वैरसेती तत्कार, मारे युगल कपोत निरधार। युग कपोत मर जहां उपजाय, तिन वर्नन सुनये चित लाय ॥११९॥ पुष्कलावती देश मझार, विजयारध गिर सोभ अपार। दक्षण श्रेणीमें गांधार, देश तहां उसीरपुर सार ॥१२०॥ आदित गत खगराज सु करे, शशिप्रभा राणी तिस घरे। सो रत कर कपोत वर आन, इनके सुत उपजो गुण खान ॥ १२१ ॥ नाम हिरन्यवर्म है जास, चातुर सुंदर रूप निवास। तिम ही रूपाचलकी जान, उत्तर श्रेणी सोभावान ॥ १२२ ॥ गौरी देश प्रसिद्ध सु लसे, भोगपुरी नगरी तहां वसे। वायु सु रथ खगराज सु करे, स्वयंप्रभाराणी तिस घरे ॥ १२३ ॥ रतषेणा कबूतरी आय, तिनके सुता भई सुखदाय। प्रभावती जाकों शुभ नाम, रूपकला चातुर गुण धाम ॥ १२४ ॥ रतवेगा सुकांत भव मांह, मातपिता थे जे सुखदाय। तिनहीके चर इम भव बीच, भये मातपित महित मरीच ॥ १२५ ॥ क्रमसो कन्या योवनवान, भई निरख नृप चिंता ठान। मंत्रिनैं कर मत्र प्रवीन, तबै स्वयंवर मंडप कीन ॥ १२६ ॥ आये तहां बहु राजकुमार, तिनमें प्रीत सहित तिसवार। माला काहू कंठ मझार, डाली नहीं कन्याने सार ॥ १२७ ॥ प्रियकारण तिम सखी बुलाय, ब्योरा मातपिता पूछाय। भाषे सखी सुनो नरराय, सुता तुम्हारीने सुखदाय ॥ १२८ ॥ करी प्रतिज्ञा थी

इकबार, जीते जो गतियुद्ध मझार । ताके कंठ विषै सु विशाल, डाल्ूंगी निश्चय वरमाल ॥ १२९ ॥ यह सुन खग सुनृपनको तदा, तिन डेरा प्रत कीने विदा। और दिवस सब नृप बुलवाय, सिद्धकूट जिन ग्रहमें जाय ॥ १३० ॥ तहां प्रभावती बैठी आय, मुखसे ऐसे वचन कहाय । मेरी फेंकी माला जोय, पृथ्वीको स्पर्शे नहि सोय ॥१३१॥ तीन प्रदक्षण सुरगिर तनी, देके झेले सो ममधनी । यह कह सिद्धकूट जिन धाम, तहां तैं डाली माल ललाम ॥ १३२ ॥ इम विध वे विद्याधर सार, जीते एक प्रभावत नार । मानजु भंग खगनके किये, लज्जित ह्वै ते घरको गये ॥ १३३ ॥ फुन हिरन्यवर्मा गुण लीन, आया गत युद्धमें परवीन । निज विद्यातैं जीत तुरन्त, प्रभावती परणी हर्षंत ॥ १३४ ॥ जन्मातरके स्नेह पसाय, प्रभावतीके संग हर्षाय । पुन्योदयतैं भोग विशाल, भोगे जात न जानो काल ॥ १३५ ॥ कबहूंक नार सहित हर्षाय, सिद्धकूट जिन मंदिर जाय । जिनकी पूजा कर आनंद, फुन ज्ञानी चारण मुनिवंद ॥१३६॥ तिनसे निज भव पूछन करे, वैश्य कुली माता पित भने । तिन रतषेण गुरुके पास, लीने व्रत कीने उपवास ॥१३७॥ फुन भाषे पूरव भव तने, अवध ज्ञानते मुन उच्चरे । रतवेगा सुकांत भव आद, किये निरूपण चारण साध ॥ १३८ ॥

पद्धड़ी छन्द—जिन भवन माह पूजन चाय, धर्मोपकरण नाना चढ़ाय । तिसही पुण्योदयके बसाय, दंपत विद्याधर भये आय ॥१३९॥ सो तुमरे है अब मात तात, अर पर भव हूं के

पिता मात । भवदेव तनौ पितु मोह जान, उपजे रतवर्मा खग सुआन ॥१४०॥ संजम गह चारण ऋद्ध धार, लह ज्ञान अवध विचरू अवार । मुन मुखतैं धुन भव इम प्रकार, आपसमें प्रीत भई अपार ॥१४१॥ श्री मुनवरकों करि नमस्कार, खग दंपत आये निजागार । इक दिन प्रभावती तनौ तात, वायूरथ खग-पति जग विख्यात ॥ १४२ ॥

जोगीरासा—मेघ पटलको बिलय होत लख चित्तमें एम विचारा, थिर नहि जगमें कोई वस्तु क्षणभंगुर संसारा । लह वैराग्न मनोरथ सुतको राज दियो तिस बार, बंधूजन युत आदि तगतपे जाके वचन उचार ॥ १४३ ॥

चौपाई—प्रभावतीकी कन्या जान, रतनप्रभा अति रूप निधान । चित्र सु रथकों देना सोय, पुत्र मनोरथको है जोय ॥ १४४ ॥ वायु रथकी बात प्रमाण, करी सु आदि जगतने जान । बंधू वायू रथ संग तदा, आये थे सो कीने विदा ॥ १४५ ॥ वैरागे आदितगतराय, पुत्र हिरन्यवर्म बुलवाय । ताकौं दीनौ राज समाज, आप चले शिव साधन काज ॥१४६॥ वायुरथ आदिक खग लार, लेय गुरु ढिग दीक्षा धार । अब हिरन्यवर्मा नृप सार, राज करे अरिगण भयकार ॥ १४७ ॥ कबहूंक खगपत युत निज नार, इच्छापूर्वक करत विहार । लख धान्यकमाला उद्यान, सर्व सरोवर तिस ही थान ॥ १४८ ॥ काललब्धिवस नृप तत् क्षणे, जाने पूरब भव आपने। है विरक्त संवेग सु धार, क्षणभंगुर संसार निहार ॥ १४९ ॥ सुत सुवर्ण-

वर्माको राज, देय कियो निज आतम काज। विजयारथसे भूपे आय, नगर सिरीपुरके ढिग जाय ॥ १५० ॥ श्रीपाल नामा गुरु सार, तिनके ढिग सब परिग्रह छार मन और वचन काय शुभ करी, निर्विकल्पक जिन दीक्षा धरी ॥ १५१ ॥ हिरन्य-वर्मकी मात अरु नार, ससिप्रभा परभावति सार गुणवति आर्या ढिग तज राग, भई आर्यका परग्रह त्याग ॥ १५२ ॥ अब हिरन्यवर्मा मुन सार, पढे अंग पूरब हितकार गुरुकी आज्ञा सेती भये, इकलविहारी इंद्रिय जये ॥ १५३ ॥ तप कर दिये मुनि सर्वंग, व्योमगामनी ऋद्ध अभंग। प्राप्त भई नभ करत विहार, पुंडरीकणी पुरी मझार ॥ १५४ ॥ आये कबहुक दयानिधान दैवयोगतै तिसही थान। आई गणनी गुणवति सार, प्रभावती आर्या जिम लार ॥ १५५ ॥ कीनो शास्त्रनको अभ्यास, क्षीण करो तन कर उपवास। प्रियदत्ता बंदनको गई, गणनीकोनम हर्षित भई ॥ १५६ ॥ प्रभावतीको लख तिसवार, उपजी उरमें प्रीत अपार। तब सेठानीने सिर नयो, प्रीततनो कारण पूछयो ॥ १५७ ॥

रूपक चौपाई—प्रभावतीने उत्तर दीनौं, तुमने मोको नाही चीनौ। हे प्रियदत्ता तुम ग्रह मांही, युग कपोत थे हम सुखदाई ॥ १५८ ॥ रतषेणा कबूतरी जानौ, ताको चरमें अब इत आनौ नाम प्रभावति मैंने पायो, सुन सेठानी अचरज थायो ॥ १५९ ॥

चौपाई अर पूछो रतवर किस थान, उपजो है सो करो

बखान। तब आर्याने उत्तर दियौ, हिरनवर्म सो खगपत भयो ॥ १६० ॥ दीक्षा धार करत तप घोर, जीते पांचो इंद्री चोर। यह सुन सेठानी सुखराम, पहुंची हिरनवर्म मुन पास ॥१६१॥ नमस्कार कर पूछी आय, फुन आर्या बंदो चिहसाय। तब प्रभावती पूछन कौन, तेरो पत कहां है परवीन ॥१६२॥ तब प्रियदत्ता निज पत तनौ, सब वृतांत हित दायक भनौ। विजयारथ नामा गिर लसे, नगर गंधार तहां शुभ बसे ॥ १६३ ॥ खग रतषेण सु राज कराय, राणी गांधारी सुखदाय। इकदिन खग दंपत यहां आय, क्रीडा करी सु चित हर्षाय ॥ १६४ ॥ गंधारी तब झूठ कहाय, मोकौं सर्प डसो अब आय। मंत्र औषध बहु करे उपाय, बोली मोकौं शांती नाय ॥ १६५ ॥

उक्तंच श्लोक—अनृतं साहसं माया, मूर्खत्वमति लोभता। अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषा स्वभावजा ॥ १६६ ॥ सेठ कुबेरकांत खगपती, दोनौं खेदखिन्न भये अती। मल त्रिया श्रेष्ठी ढिग जान, विजयारध गिर शक्तिवान ॥ १६७ ॥ औषध लेन गयो तत्कार, तब बोली गंधारी नार। सेठ मोह नागन नहीं डसी, तुमरी प्रीत हृदयमैं बसी ॥ १६८ ॥ तातै मैं यह रचौ उपाय, तुमसे जो गहते सुखदाय। करो कृपा अब राखो प्राण, मोकों दो रतदान सुजान ॥ १६९ ॥ बोले श्रेष्ठी सील सुवंत, तू क्या नहि जानत बिरतंत। मोही नपुंसक जानो सही, संसय यामैं रंचक नही ॥ १७० ॥

रूपक चौपाई—सीलभंग है पाप महानौ, होवे यातैं दुर्गत

थानो। सप्तम नर्क मांह दुख पावे, इम प्रकार चितवन करावे ॥ १७१ ॥ एते मैं पत औषध लायो, लख गंधारी वचन सुनायो। पहली ओषधसे सुख साता, तनमैं होय गई है नाथा ॥ १७२ ॥ यह कहके निज पतके लारा, पहुंची निजपुरमैं सुखकारा। प्रभावती सेती गुण खानी, भाषे प्रिय-दत्ता सेठानी ॥ १७३ ॥ प्रथम कुबेरदत्त गुण धामा, और कुबेर मित्र शुभ नामा। दत्त कुबेर तीसरो जानो, देव कुबेर सु चौथो मानों ॥ १७४ ॥ पुत्र कुबेर प्रिय सुखकारा, पंच सुतनको लेके लारा। कबहुंक शिबकामें सुखदाई, चढ़के बन-मांही विचराई ॥ १७५ ॥ तब मोंको लखके गंधारी, मुखसेती इम वचन उचारी। तेरो भर्ता पुरुष सु नाही, ऐसी कहवत लोक कहाई ॥ १७६ ॥ सुन तब मैंने उत्तर दीनो, ममपति इक नारी व्रत लीनों। खोजा और त्रियनके हेता, है प्रवीन सब विधको वेता ॥ १७७ ॥ यह सुनके गंधारी नारी, चित मांही वैराग सु धारी। तब अपनी निंद्या बहु कीनी, पतयुत वैरागी परवीनी ॥ १७८ ॥

चौपाई—भवतन भोग स्वरूप विचार, जिनभाषित शुभ संजम धार। आर्या है विहरत इम थान, आई तब सो नमन करान ॥ १७९ ॥ पूछो किस कारण तप धरो, सब वृतांत आर्या उच्चरो। मम वैराग कारण तुझ पती, यामें संसय नाहीं रती ॥ १८० ॥ गौप्य वचन यह श्रेष्ठी सुने, प्रगट होय आर्या सो भने। जो रतषेण मित्र मम थाय, सो अब किस थानक

बरनाय ॥ १८१ ॥ तब आर्याने उत्तर दियो, मो कारण सो भी मुन भयो। घोर तपे तप करत विहार, आयो है इस स्थान मझार ॥ १८२ ॥ यह वच सुनके सेठ उदार, भूपतको लेके निज लार श्री रतषेण मुनीश्वर बंद, धर्म श्रवण करके आनंद ॥ १८३ ॥ राजा तब संवेग उपाय, विरकत भव भोगनसे थाय। सुत गुणपालहिको दे राज, संजम धारो मुक्ति काज ॥ १८४ ॥ पंचम सुत कुबेर प्रिय थाय, निज पदमें फुन श्रेष्टी थाय, चारौ सुतको लेके लार, तिन ही मुन ढिग दीक्षा धार ॥ १८५ ॥ यह कथा अपने पत तनी, आर्या से प्रियदता भनी। सुता कुबेर श्री सुखकार, दी गुण पाल भूपको सार ॥ १८६ ॥ प्रभावती उपदेश पसाय, प्रियदत्ता निज सीस नमाय, गुणवती नामा गणनी पास। भई अर्जका तज गृह वास ॥ १८७ ॥ अब हिरन्य वर्म मुन सार, धारौ भूम मसाण मंझार। प्रतमा योग सप्त दिन तनो, ध्यानारूढ भये शुभ मुनो ॥१८८॥ कबहुक पुरजन वंदन आय, धर्महेत चितमें हर्षाय। वंदन कर निज पुरको गये, मुनकी कथा सु करते भये ॥१८९॥ चरमव देवतनौ मार्जार, सो मरके इम थान मंझार। अति दुष्टातम विद्युत चौर भयौ जु पापिनमें सिर मौर ॥१९०॥

जोगीरासा—प्रियदत्ताकी दासीके मुख मुन वृतांत सुन सारो, पाय विभंगा अवध जु पूरव भवको वैर चितारो। विद्युत चौर तबै क्रोधित ह्वै जाय मसाण मझारे, हिरन वर्म मुन प्रभावती युत अग्र विषै धर जारे ॥ १९१ ॥ रात्रि विषैं शुभ रहित

दुष्ट सो नर्कगामि अघकारी, घोर वीर उपसर्ग सहो मुन समता उरमै धारी। प्राण समाध थकी तजके शुभ धर्म ध्यान फल पायौ, विश्व ऋद्ध सुख पूरण सुंदर स्वर्ग विषैं उपजायो ॥१९२॥

चौपाई—अब तिन मुनको पुत्र सुजान, सुन पितुको उपसर्ग महान। विद्युत चौर दुष्ट पहचान, निग्रह करनेको उमगान ॥१९३॥ पिता बैरतैं क्रोधित राय, इम अंतर तिस पुन्य वसाय। वह सुर सर्व वृतांत सुजान, स्वर्ग थकी आयो इम थान ॥१९४॥ मुनको रूप सुधारण कियौ, सुतको शुभ संबोधन दियौ। हे सुत कोपकरन नहि जोग, दुर्जन नर्क लहे अमनोग ॥१९५॥ कर्म शुभाशुभको फल जीव, संसारी भोगवे सदीव। यह लख-कोप न कीजे कदा, उत्तम क्षमा गहो सर्वदा ॥ १९६ ॥ तत्वादिक श्रद्धाकर सार, वृत सम्यक्त गहो सुखकार। ताकर स्वर्ग मोक्ष लछ होय, साई काम करो तुम जोय ॥ १९७ ॥ इत्यादिक संबोधन दियो, नृपने दर्शन ग्रहण सु कियौ। दिव्य रूप अपनौ दिखलाय, पुन सब निज बिरतांत कहाय ॥१९८॥ नृपको कोप जु सर्व मिटाय, वस्त्राभरण दिये बहु भाय। सर्व संपदा सब दरसाय, वृष फल कह निज थान सिधाय ॥१९९॥ अब आगे सुन और कथान, वत्सदेश इक सुंदर जान। तहां सुसीमा नगरी कही, पुन्यात्मा नर उपजन मही ॥ २०० ॥ तहां शिवघोष मुनी सु महान, ध्यायो निर्मल शुक्ल जु ध्यान। चार घातिया कर्म विनास, केवलज्ञान कियो परकास ॥२०१॥ तहां इन्द्रादिक सब सुर आय, नमस्कार कर पूज रचाय।

इन्द्र वल्लभा दोउ जहां, सची मेनका आई तहां ॥ २०२ ॥

तोटक छंद–नमकर निज थानक बैठ सही, तब हरि केवलिसु पूछतही। इन पूरब भव वृष कौन करो, तब दिव्यध्वन मध एम खिरो ॥ २०३ ॥ दुहिता द्वय मालनकी सुमनी। नित बेचत पुष्प जु मोद ठनी। तहां नाम एककौ पुष्पवती, अरु पुष्पपालिता दुतिय हुती ॥ २०४ ॥ दिन सात भये वृष धार जबै, बनपुष्प कारण सुमध्य तबै। दोनौ तहां पुष्प सुबीन रही, तहां एक सर्पने आन गही ॥ २०५ ॥ सो काटत हो तत्काल मरी, जिनदर्शनमें अभिलाख धरी। पुन्योंदयते ये देवी भई, इम सुन सब वृष प्रशंसा ठई ॥ २०६ ॥ यह प्रभावतीके जीव सुनौ, जिस नाम कनकमाला जु भनो। अरु हिरनवर्मको जीव तहां, तिस देव कनकप्रभ नाम लहा ॥ २०७ ॥

गीता छंद-इन देव देवी केवली मुख पूर्व भव अपने सुने। अपनो जन्मस्थान लखकर बहुत हर्ष हृदय ठने ॥ फुन साथ सरवरके निकट तहां भीम मुनको देखियो। सब संघ संजुत तिष्ठते तिन देव देवी वंदियो ॥ २०८ ॥ मुनसे जुधर्म स्वरूप पूछो भीम रिष कहते भये। उपदेशको इम ज्ञान नहि तुछ दिन हुवे संजम लिये ॥ यह ज्ञानियोंके कार्य हैं मोह ज्ञान एतो है नही। तुमरे जु आग्रहते कहत हूं तुम सुनौ रुचकर सही ॥२०९॥ सम्यक्त पूजा दान आदिक ग्रहीके आचार जो। तप संजमादिक भेद बहु यति धर्मको विस्तारजो ॥ चारों गतिनकौ भेद कहियो और तिन कारण कहे। पुन्य पाप फल सुख

दुःख भनियो रत्नत्रयतें शिव लहे ॥ २१० ॥ अरु तप वृतादिक स्वर्ग कारण सकल भेद निरूपिये। फुन जीव आदिक द्रव्य षट वर्णन यथार्थ प्ररूपिये॥ सुन सुर सुरी पूछत भये तुम केम दीक्षा आचरी। तब भीम मुन कहते भये तुम सुनौ कारण रुच धरी ॥ २११ ॥ शुभ क्षेत्र जान विदेह तामध पुष्कलावति देश है। पुंडरीकणी नगरी जहां तहां धर्म रीति विशेष है॥ मुझ नाम भीम दरिद्र पीडित पुन उदै मुझ आइयो। मुझ काललब्धि सुयोगतैं वन वीच मुन दर्शन भयो ॥ २१२ ॥ तिन पास धर्म श्रवण कियो वसु मूलगुण शुभ आदरे। फुन पंच पाप जु त्याग कीने हर्ष लहि घर संचरे॥ अपने पिताके निकटि आयो तासे व्योरो कहो। निर्ग्रंथ मुनको नाम सुनके क्रोध अति ही तिन गहो॥ २१३ ॥

चाल अहो जगतगुरुकी—ये वृत दुद्धर जान धनपंतनके कामा. हम दारिद्र धराय तातैं फेर सु तामा। जो परभव फल चाहतौ इन वृतको धारे। हम अजीवका होय सोई काम संभारे ॥ २१४ ॥ तातै मुनि ढिग जाय फेर देय वृत सब ही, तब मैं पितु ले संग चालो मुन ढिग जबही। मारगमैं विरतांत देखो बहु गुणधामा, नगर चौहटे माह वज्रकेत इक नामा ॥२१५॥ पुरष तहां मारंत सो मैं तिन पूछायो, तिनने इममाषंत इनने नाज सुकायो। तहां इक कुर्कट आय नाज चुगत इन मारो, तातै इसको मारये हम चरित निहारो॥ २१६ ॥ फुन आगे धन-देव इक दुरबुद्धी जानो, इस पासे जिनदेव निज धन सर्व

रखानी । सो यह लोभ पसाय तिस धनकौ मुकराई, ताकी खंडत जीभ करते मैं जुलखाई ॥ २१७ ॥ इक रतिपिंगल सेठ ताकौ हार चुरायो, ता तस्करको वेग सूली राय चढायो। इक पापी कामांध पर तियके घर जाई, ताको अंग छिंदत सो मैं सर्व लखाई ॥ २१८ ॥ लोल नाम इक जान लोभ धरे अधिकाई, क्षेत्र तनो कर लोभ निज सुतकौ जुहनाई। राय हुकमतें सोय सूली दियो चढाई, ये सब कारण देख वृत्तमें ह्वै दृढताई ॥२१९॥ सागरदत्त इक जान जो नित द्यूत खिलाई, समुद्रदत्तको वेग बहुतो धन जीताई। समुद्रदत्त असमर्थ देने माह जु थाई, सागरदत्त कर क्रोध निग्रह तास कराई ॥ २२० ॥ राज सु किंकर आन ताकौ बहु दुख दीनौ, दुर्गंध धूवा देय कोठेमेंरो कीनौ। राजा आनंद नाम तिन इम फेर दुहाई, कोई न मारे जीव इम सबकौं सुखदाई ॥ २२१ ॥ इक नर अंगक नाम ताने बकरो मारो, नृप इम आज्ञा ठान हाथ काट इन डारो। राय सु पोतो जान मांस भक्ष तिन कीना, भिष्टा तास खुवात मैंने सर्व लखीना ॥ २२२ ॥ एक कलाली जान कोई बालक मारे, वसु आभर्ण सुलेय पृथ्वीमैं वह गाढे। सो ताकौ वृत्तांत तिन सुतकूं कहवाई, नृप किंकर सुन वेग तातियको पकडाई ॥२२३॥ ताकौ निग्रह ठान सोउमैं देखाई, हिंसादिक जो पाप तिनको फल जु लखाई। इम भव खोटो जान परभव नरक सुजाई, मैं यह बात ठानवृतकौ नाह तजाई ॥२२४॥ वृत धारण मोही श्रेष्ठ लागो मनके मांही, या परभव भय धार सब तनमो कंपाही।

हिंसा मृषा अदत्त और कुशील गिनाई, बहुत परिग्रह जान पंच पाप दुखदाई ॥ २२५ ॥ पाप दुखनको मूल वध बंधन कर्तारो, मैं इम चितमैं ठान पितुसे बचन उचारो। हम घर है जु दरिद्र पूरब कर्म फलाई, अब शुभ करनौं काम तातैं नित सुख थाई ॥ २२६ ॥

छन्द पायता—इम बचन पितासे भाषो, शिवपुर सुखकौं अभिलाषो। ममता ग्रहसे निर्वारी, तुरत ही जिन दीक्षा धारी ॥ २२७ ॥ गुरुके प्रसाद तत्कारी, बहु शास्त्र पढे हितकारी। अरु बुद्धि सु निर्मल थाई, इक दिन केवलि ढिग जाई ॥२२८॥ निज भव सुन दुष्ट स्वरूपा, तुम सुनौं कहूं सु अनूपा। यह पुषकलावती देशा, पुंडरीकणी नगर महेशा ॥२२९॥ तहां राजा है वसुपाला, सब परजाकों प्रतिपाला। तहां विद्युत्वेग सुनामा, है चोर अघनको धामा॥ २३० ॥ तिन मुन आर्या सु जलाई, नृप किंकर तह पकड़ाई। ताको सब धन सु छिनाई, फुन तस्कर प्रत पूछाई ॥२३१॥ धन और कहां सु रखाई, तब चोरन सबै बताई। इक विमती नाम जु नर है मो धन सब वाके घर है॥२३२॥ तब विमतीकू पकड़ाई, सब धन ताके निकलाई। तब रायसु एम कहाई, त्रयदंड जोग्य ये थाई ॥ २३३ ॥ त्रय थाल जु गोबर खाई, या सब धन देय अन्याई। मल्ल मुक्की तीस जु खावे, इन त्रयमैं एक गहावे ॥ २३४ ॥ सो तीनौं भोग जु मूवो, अघयोग नारकी हूवो। विद्युत्सुचोर अघकारो, नृप हुकम दियो इस मारो ॥ २३५ ॥ कुतवाल चंडाल बुलायो,

नृप हुकम सु ताहि सुनायो। तब ही चांडाल कहाई, गुरु ढिग मैं बरत गहाई ॥ २३६ ॥ कोई जीव मात्र नहि मारूं, मानुषको केम संघारूं। तब राजा इम मन लाई, चांडाल जु रिस बतलाई ॥ २३७ ॥ तातै नहि सूलीं धावे, चांडाल बरत कहां पावै। नृपने अति क्रोध कराई, जुगकौं संकल बंधवाई ॥२३८॥ फुन भौंरेमें डलवाये, तिस चौर चंडाल बताये। तब चौर कहै इम बैना, तू मुझको काह हतेना ॥२३९॥ मुझ कारण तू क्यों मरई, तब वह चांडाल उचरई। मैं दुर्लभ जिनवृष पायो सब जीव हतन सुजायो ॥ २४० ॥ मुझ मारे तो कोई मारो, ये द्रिढ़ निज मनमें धारो। मैं धर्मसु कह विध पायो, तसु कथा सुनों मन लायो ॥ २४१ ॥

गीता छंद—यह राय जो वसुपाल सुंदर या पिता गुणपाल थो, इम ही नगरको राज करता सकल गुण गण मालथो। श्रेष्टी कुबेर प्रिय जु नामा तासमय होतो भयो, इक नाट्यमाला नृत्यकारनि नृत्य नृप आगे कियो ॥ २४२ ॥ रति हास्य शोक जु क्रोध भय, उत्साह विस्मय जुगपसा। ये भाव सब दिखलाइये सो नृत्य नृपके मन बसा। आश्चर्य नृप अति ही कियो इक और गनिका इमचयो, उत्पल सुमाला नाम जाकौ रायसे इम वीनयो ॥ २४३ ॥ नृत्य कारणी नृत्य ही करै इस बातकौं अचरज कहा, मैं एक अति आश्चर्य लखियो तास बरननन सुन महा, श्रेष्टी कुबेर प्रियतनों सु कुबेर कांत तनुज कहो। सो शांत परिणामी धु इक दिन, ध्यान धर पोसो गहो ॥२४४॥

मैं जाय करता चित चलावनको जु समरथ ना भई, सो बडो अचरज जानिये उत्पल सुमाला इम चई। नृपने कही उनके जु कुलकी रीत ऐसी जानिये, परसन्न होकर कही नृप कर प्रार्थना मन मानिये ॥ २४५ ॥ गनिका कही मुझ भाव अब तो शील पालनको सदा, तब राय इम आज्ञा करी तुम शील धारो है मुदा। तिन ब्रह्मचर्य सुधारियो इक दिनतनी सु कथा सुनो, ता घर विषें वह आइयो जो कोटपाल नगरतनो ॥२४६॥ जिस नाम सर्व जुरक्ष जानो खबर नहि इम व्रत लियो, तादेख वेश्याने कही मासिक धरम मुझको भयो। इम भांति उच्चारन करत मंत्रीतनों सुत आइयो, जिस नाम प्रथुमति है मनोहर रायको सालो कहो ॥ २४७ ॥ ता देखकर कुतवालको मंजूममैं घालो सही, मंत्री जु सुत सेयें कही मुझ आभरण दे क्यों नहीं। सत सेवती नामा बहन तेरी राय संग व्याही गही, जब तुम जु मुझसे ले गये थे अबहि लादो वेगही ॥२४८॥

अडिल्ल छंद-मंत्री सुत इम कही वेग लाऊ सही, पुन गणिकाने कही ल्याव तुम शीघ्र ही। इन बातनको कोटवाल साक्षी भयो, जो पहले मंजूष बंद वेश्या कियो ॥ २४९ ॥ मंत्री सुत घर जाय सुनो इक बात है, उत्पलमाला शील गहो अवदात है। तब वह इर्षा ठान आभरण मुकरियो, गनिका नृपकी सभा बीच इम भाखियो ॥२५०॥ मंत्री सुतसे गहनो मांगो वेग ही, वह बोलो तत्काल सु मैं लायो नहीं। तब नृपने राणीसे इम पूछाइयो, तो आता वेश्याको गहनो लाइयो

॥२५१॥ तब राणी इम कही सु ल्यायो थो जबै, अब है मेरे पास सु ले हो तुम अबै। राजा गहना लेय क्रोधमैं भर भये, मंत्री सुत मारन आज्ञा देते भये ॥ २५२ ॥ यहां इक और कथा सुचले है सुहावनी, मुनि जिनवाणी पढ़त सुपट हस्ती सुनी। भव भ्रमण भयो तास अणुव्रत धारियो, वस्तु अयोग्य अहार सबै तिन छाड़ियो ॥ २५३ ॥ तिस हस्तीको देख कुबेर प्रिय तबै, गुड़ घी चावल चून अवौष दियौ सबै। तब हाथीने खाय राय आनंद हो, सेठ थको इम भाव मनेच्छा माग हो ॥ २५४ ॥ सेठ कही यह वचन रहे भंडारमैं, जब मुझ हो है काज लेहू महाराज मैं। सो वह बचकर याद सेठने इम कही, हे महाराज दयाल बचन पाऊं सही ॥ २५५ ॥ राय कही हे सेठ बचन लो आपनो, सेठ कही तुम मंत्री सुतको मत हनो। नृपने मंत्री सुतको तब छाड़ियो, श्रेष्टीने उपगार बड़ा तासंग कियौ ॥ २५६ ॥

सवैया २३—मंत्री दुष्ट जु उलटो औगुन मानौ तब मनमैं बहु भाय, वेश्याको समझाय सेठने मुझ सुतकी निंद्या करवाय। आप बचावनको जस लीनो इम उलटो सु विचार कराय। पापिनको उपकार करन इम जेम सर्पको दूध पिवाय ॥ २५७॥ मंत्री सुत निज इच्छा पूरव कईक दिन बनमैं पहुंचो जाय, काम मुद्रिका मनवंछितके रूपकरन हारी तहां पाय। विद्याधरसे लीनी इसने ताइ पहर ऊंगली घर आय, वही अंगूठी पिता कहतैं लघु भाई वसुको पहराय ॥ २५८ ॥ और कही तू सेठ

रूप घर जावो सत्यवतीके पास, सो कुबेर प्रियतनो रूपकर पहुंचो राणीके आवास मंत्रीको जो बड़ो पुत्र थो राजाके ढिग पहुंचो सोय, बिन औसर जु सेठको लखके राय कही यह विरिया कोय ॥२५९॥ तब मंत्रीको पुत्र जु बोलो इसी समैं नित आवत येह, पापीको तुम आज जु लखियो काम अग्नि करत प्रित देह। तब राजाने बिना विचारे हुकम दियो इम निःसंदेह, मंत्री सुतसे कहा जाहु तुम वेग सेठके प्राण हरेह ॥२६०॥ ता दिन सेठ आपने घरमें पोसा कायोत्सर्ग सुधार, तब मंत्री सुतने निज भ्राताको घर पहुंचायो तत्कार। और सेठको घरसे पकड़ो मारन ले चालो रिस होय, और नगरमें कहते जावे सेठ कियो अपराध बहोय ॥२६१॥ काहूके मनमें नहि आई लोक कहे यह है बुधवान, मंत्री पुत्र सेठको लेकर पहुंचे मारनके अस्थान। चांडालनकों सोपो जब ही तबै उनोने खड्ग चलाय, सोई शस्त्र भयो उरमाला सब जन देखो सील प्रभाय ॥ २६२ ॥ और जो मुखतै कहत भये इम सीलवान यह सेठ जु थाय, श्री अरिहन्त भक्तिको राजा बिन परखे यह दंड दिवाय। सो ही आज नगरमें हुवे बहु उत्पात महा दुखदाय, निरपराधको दंड जु देवे तो सबहीका क्षय हो जाय ॥ २६३ ॥ तब ही नृप अरु नगर लोग बहु सेठ सरन आये तत्कालि, सेठतनो उपसर्ग मिटो जब बहु सुर मिल कीनों जयकार। सील प्रभाव थकी सुर पूजो श्रेष्टीको नम बारंबार, राय सेठसूं बिनती कीनी मैं अपराध क्षमो मुद-धार ॥ २६४ ॥ तबै सेठ इम कहत भये मो पूरब पाप उदय यह आय, तुमरो कछु अपराध नही है तुम विषाद मत करो

सुभाय। इम वच कह नृपको प्रसन्न कर सबको चिंता वेग मिटाय, बड़ी विभूति सहित तब श्रेष्टी नगरीमें परवेश कराय ॥ २६५ ॥ सेठतनी पुत्री जो कहिये जास वारषेणा है नाम, नृप गुणपाल तनो सुत जो वसुपाल है गुणको धाम। तिन दोनोंको भयो ब्याह जो अति विभूति संयुक्त ललाम, पुन्यवंतको सब सुख होवे ये प्रसिद्ध वार्ता सब ठाम ॥ २६६ ॥ इक दिन राय सभामें बैठे श्रेष्टीसे पूछो हित धार, धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष ये चार पदारथ जो हैं सार। सो किसके अनुकूल जु होवे अर किसके प्रतिकूल विचार, सम्यग्दृष्टिके अनुकूलहि मिथ्याती प्रतकूल निहार ॥ २६७ ॥

जोगीरासा—धर्मतत्वके वेता श्रेष्टी इम कहिये तत्कारा, श्रेष्टी बच सुनकर तब राजा आनंद लहो अपारा। और कही मनवांछित मांगों तब श्रेष्टी इम भाषी, जन्म मरणको क्षय इम मागे और नहि अभिलाषी ॥२६८॥ राय कही मैं दे न सकत हूं ये मेरे बस नाहीं, सेठ कही में सिद्ध करूंगा भासू मोह नजाही। सेठ तने बच सुनकर राजा कहियो मैं तुम संगा, अब ही घरको त्यागन करहूं धारूं वरत अभंगा ॥ २६९ ॥ पर मेरे हैं पुत्र जु बालक नृपसो एम कहाई, तास समय मध एक छिपकली अंडे सु निकलाई। निकसत ही तत्काल मक्षिका ग्रहत भई नृपदेखी, मनहि विचारी सर्व जीव निज खान उपाय सु पेखी ॥२७०॥ बालककी चिंता क्या कीजे यातैं कछु नाही काजा, निज अजीवकाको यह बालक कर उद्यम सुख राजा। इम विचार

गुणपाल सु राजा सुत वसुपाल बुलायो, ताइ राज विघ पूर्वक देकर लघुको कर जुगरायो ॥ २७१ ॥ बहुत राय अरु सेठ संग ले नृपने मुनि पद धारो, यतिवर नामा मुनि ढिग जाकरि सब ही अघको छारो। यही कथा चांडाल चोरसो भाखी है हितकारी, देखो श्रेष्टी मंत्रीको मत छुडवायो वृषधारी ॥२७२॥ यह वृतांतमें देख दयाव्रत कीनों अंगीकारा, तातैं तोइ न मारो यह सुन तस्कर स्तुति विस्तारा। भीम नाम मुनको केवलिने भाषी इम सुखदाई, विद्युत तस्कर जीवन रकसे निकस भीम तुम थाई ॥ २७३ ॥ प्रथम मृनालवती नगरी बिच पुरुषहु तो भव देखा, तिन सुकांत रतिवेगा दीने अग्नि जला यह तेखा। वह पारापत अरु कबूतरी भये मुनो चितलाई, तू जो विलाव भयो उस भवमें तें उनको जुडताई ॥ २७४ ॥ पारापत जुग शुभ भावन ते मर्ण कियो तत्कारी, विजयारधपे खेचर खेचरी उपजे बहु सुखधारी। तू विलाव मर चोर जुविद्युत मुन आर्या तिन जारे, पाप बंध कर नर्क भुगत दुख भीम भयो मति धारे ॥ २७५ ॥ एम कथा केवलि मुखसेती सब ही भीम सुनाई, सो कनकप्रभ देवसुरी सुन कहत भयो हर्षाई। हिरन्यवर्म अरु प्रभावती हम तीन बार तुम मारे, हमरी तुमसू क्षिमा एम कह नभ निज थान सिधारे ॥ २७६ ॥ एम कथा सुलोचना कह फुन भनत भई सुखदाई, भीम मुनी तब घात कर्म हन केवल ग्यान उपाई। तिन दर्शन आई चवदेवी नमकर इम पूछाई, हमरे पतको मर्ण हुवोसो कौन जीवपद थाई ॥२७७॥

तब केवलि दिव्यध्वन मध खिर्यो इम पुंडरीकनि पुरमैं, इक सुरदेव मनुष्य तामके चार नार है घरमैं चारों वृष ग्रह स्वर्ग सोलहमें तुम उपजी जाई, तुम पतिमर पिंगल नर उपजो तहां सन्यास धराई ॥ २७८ ॥ मरकर अच्युत स्वर्ग विषै तुम पति होवे सुखधारा, तिसी समय वह सुर मुनिके ढिग आय कियो जयकारा। तब वह देवी और समाजन मुनकी थुत बहु कीनी, इम सुलोचना भरताके ढिग कथा कही रस भीनी ॥ २७९ ॥ पुन सुलोचना कहि संक्षेपहि मैं पर भवकी नारी, पहले भव तुम नाम सुकांतहि मैं रतिवेगा प्यारी। दूजे भव रतिवर जू कबूतर रतिसे संग तुम लारी, श्रेष्टी मित्र कुबेर सु घरमैं होत भये हितकारी ॥ २८० ॥ भव हिरन्यवर्मा तीजो तुम मुझ प्रभावती जानो, कनकप्रभसुर कनकप्रभादेवी चौथो भव ठानो। या भवमैं राणी सुलोचना तुम सम पति सुखदाई, मुझ कर सेवन योग्य सदा यह सुन जय बहु हर्षाई ॥ २८१ ॥

दोहा—इम तिन मुख शशितें झरो, अमृत पान कराय। सकल सभा तिरपत भई, उर संवेग बढ़ाय ॥ २८२ ॥

गीता छन्द—इम धर्म फलसे मनुष देव सु उच्च पदवीको लहे। फुन पाप सेती नीच गतमैं नरकके दुखको सहे ॥ इम जान धर्म करो सकल जन त्रय जगत सुखकार है। सो धर्म मुझ भव भव मिलो उर यही वांछा सार है ॥ २८३ ॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते जयकुमार सुलोचना भववर्णनोनामा एकोनविंशतिमो पर्वः ॥ १९ ॥

अथ बीसवाँ सर्ग ।

दोहा—जगत पितामह जानिये, आदि सुब्रह्मा थाय ।
त्रिजगतपति पूजत चरण' तिने नमूं शुभ भाय ॥ १ ॥

ते गुरु मेरे उर बसो, इस चालमें—शील प्रभाव सबै सुनौ यह आंवली, पुन्य उदय तिनको बढ़ो । ताको सुन सुकथान पूरब भवकी साधिता, विद्यासिद्ध लहान ॥ शील प्रभाव सबै सुनौ ॥ २ ॥ विजय पुत्रको राज दे, जय सुलोचना संग । देश सुउपवन विहरते भोगे सुक्ख अभंग ॥ शील प्रभाव० ॥ ३ ॥ दिव्य विमान विषें चढ़े, विद्याबल कर सोय । मेरु आदि तीर्थनविषै, यात्रा करे वहोय ॥ शील प्रभाव० ॥ ४ ॥ एक दिना कैलाश गिर, जय सुलोचना जाय । बहुती क्रीडा कर तहां, किंचित न्यारे थाय ॥ शील प्रभाव० ॥ ५ ॥ इस अंतर सौधर्म हरि, बैठो सभा मंझार । शील महातम वरनियो, जय नृपको अधिकार ॥ शील प्रभाव० ॥ ६ ॥ राणी सुलोचनाकी करी, इन्द्र प्रशंसा सार । पुरुष तिया ऐसे अलप, शीलवान संसार ॥ शील प्रभाव० ॥ ७ ॥ यह सुनकर तब स्वर्गसे, देव रविप्रभ नाम । जयकुमारके शीलकी, करन परीक्षा ताम ॥ शील प्रभाव० ॥ ८ ॥ अपनी देवी कांचना, भेजी जयके पास । सो आकर कहती भाई, सुनौ सुधी गुण रास ॥ शील प्रभाव० ॥ ९ ॥ भरतक्षेत्र विच सोहनो, विजयारध गिर जान । उत्तर श्रेणी विषै कहो, देश मनोहर थान ॥ शील प्रभाव सबै सुनो ॥ १० ॥ तहां रत्नपुर जानिये, नृप पिंगल भधार । ताके रानी सुप्रभा, सुखकी

कारण सार ॥ शील प्रभाव सबै लखो ॥ ११ ॥ ताके मैं पुत्री भई, विद्युत्प्रभा सुनाम। मेरु सुनंदन बन विषैं, तुमको लख गुणधाम ॥ शील प्रभाव सबै लखो ॥ १२ ॥ मैं अभिलाषवती भई, संगम वांछा ठान। तुमरो ध्यान करत रही, आज भयो सुमिलान ॥ शील प्रभाव सबै लखो ॥ १३ ॥ इम कह अपने माथके, सब जन न्यारे ठान। निज अनुराग प्रगट कियो, तब जय एम बखान ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥१४॥ ऐसे अधम बच मत कहे, मेरे बहन समान। तब वह राक्षसि रूप कर, जय लेचली उठान ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ १५ ॥ तब सुलोचना निरखियो, ताको बहु धमकाय। तब वह शील प्रभावतैं, भागी अति भय खाय ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ १६ ॥ तब वह देवी कांचना, निज पति पासे जाय। इन प्रभाव कहती भई, सुन सुर इन ढिग आय॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥१७॥ अपनो सब विरतांत कह, दोनों क्षिमा कराय। बहु रत्ननिसे पूजियो, नमकर निज थल जाय ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ १८ ॥ एक दिन मेघेश नृप, रिषभदेव ढिग जाय। तिनकी बंदन कर तहां, धर्म सुनो सुखदाय ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ १९ ॥ यतोधर्म जग सार है, शीघ्र मुक्त दातार। यह सुन नृप विरकत भयो, छांड सकल अघ भार ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ २० ॥ सुभट पताकर फल कहा, कामेंद्रिय जु कषाय। जो इनको नहि जीतिया, तो जोधा नहि थाय ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ २१ ॥ तीन जगतकी लक्ष्मी, इम जियको मिल जाय। तौभी तृप्ति सु है नही, त्याग किये तृप्ताय ॥ शील

प्रभाव लखो सबै ॥२२॥ अथ जगश्री वस करनको, तूं दीक्षा सुखकार । मोह कामको जीतके, यही काज हितकार ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ २३ ॥ इम चितवन करके तबै, निज सुतको बुलवाय । वीर्य अनंत जु नाम तसु, सब विभूति सोंपाय ॥शील प्रभाव लखो सबै ॥ ॥ २४ ॥ विजय जयन्त सुजानिये, संजयंत गुणधाम । इन भ्रातनको संग ले, दीक्षा धर अभिराम ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ २५ ॥ रवि कीरत अरु रवि जयौ, अरिदम अरिजय जान । अजित रवि वीर्य नृप, इत्यादिक गुणखान ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ २६ ॥ बाह्यांतर परिग्रह तजो, सब ही नृप समुदाय । मुक्ति तिया दूती समा, दीक्षा ग्रहण कराय ॥ शील प्रभाव लखो सबै ॥ २७ ॥

वंदौं दिगम्बर गुरु चरण इस चालमें—मन वचन काय त्रय शुद्ध सेती ज्ञान चौथो पाय । तप घोर संजम धारियों सप्तर्धि वेग लहाय । फुन वृषभदेव तने कहे तब वे सुगणधर होय, तिन साथ चक्री भरत कीनों जाय गजपुर सोय ॥ २८ ॥ राणी सुभद्रा साथ ले जु सुलोचना समझाय, तिन अर्जिका पद धारियो ब्राह्मी समीपहि जाय । इक श्वेत साड़ी धार तनमें सब परिग्रह त्याग, इत मोह इंद्री काम अरिको जीतियो बड़ भाग ॥२९॥ सो महातप तपती भई सन्यासकी विध ठान, फुन काय तज्ञ दृगबल थकी अच्युत जु स्वर्ग लहान । तिय लिंगको जु विनाश कर वरदेव पदवी पाय, उत्तर सु नाम विमान मध उपजो महर्धिक जाय ॥ ३० ॥ बाईस सागर आयु जाकी ज्ञान तीन-निधान, विक्रिया रिध धारे जु सुखसागर मगन अधिकान ।

अब आदि तीर्थंकर तने गणधर चौरासी जान, तिनके जु नाम सकल कहूं भव भव्य सुन हित ठान ॥ ३१ ॥ सबमें प्रथम जो वृषभसेनहि और कुंभ बखान, द्रिढरथ जु सत धनु जानिये फुन देव सर्मा ठान। भवदेव नंदन सोमदत्त जु सूरदत्त कहाय, फुन वायुसर्मा दशम जानो यशोबाहु गहाय ॥ ३२॥ देवाग्नि अग्नि सुदेव जाने गुप्तवाक महान, फुन अग्निमित्र सुचन्द्रमः हलधर महीधर जान। अट्टारमो जु महेन्द्रवाक वसुदेव हैं गुणधाम, वीसम गणेस वसंधरो बलनाम है अभिराम ॥ ३३ ॥ फुन मेरु मेरु सुधन बखानो मेरुभूति गनाय, अर सर्वयस फुन सर्वयज्ञ जु सर्व गुप्त कहाय। जो सर्व प्रिय अर सर्व देव सुगणाधीस गहाय, अरु सर्व विजयी विजय गुप्त सुविजय मित्र मनाय ॥ ३४ ॥ अपराजित ही सुगुणाधिपो अरु विजय लाभ प्रमान, वसुमित्र विश्व जु सेन जानो साधुसेन बखान। सत्यदेव सत्यमनी जु कहिये गुप्त वाहक गहान, सत्यमित्र अक्षक समंधर अविमीत्य संवर जान ॥३५॥ मुनि गुप्ति अरु मुनिदत्त कहिये यज्ञवाक प्रधान, मुनि देवयज्ञ सुमित्र कहिये यक्षमित्र महान। मन प्रजापत अरु सर्व संग सुवरुण जगमें धन्य ॥३६॥ धनपाल मघवा तेजरासि सो महावीर विशाल, महारथ महाबल शीलवाक वज्राख्य मुनि गुणमाल। फुन वज्रसार सु चन्द्र सूलहि जय महारस थाय, कछ महाकच्छ सु जानिये फुन नमिगणी मन लाय ॥ ३७ ॥ फुन विनम बल नामी निर्बल बल भद्रा जिनको नाम, नंदी महाभोगी सुनंदी मित्र मुन गुणधाम। फुन कामदेव अनूप लक्षण इम चौरासी जान, चव

ज्ञानधारक सप्त रिधि भूषित सकल सुखदान ॥ ३८ ॥

अडिल्ल—अब सब संघ तनी गणना समझो यही, चव सहस्र अर सात सतक पंचास ही। द्वादशांग अम्बुधिको पार जु इन लही, इकतालिससै पंचास शिष्यकमुन तही ॥ ३९ ॥ अवधिज्ञानके धारक नव हज्जार ही, वीस सहस केवलज्ञानी भवतारही। रिद्ध विक्रिया संजुत वीस सहस जहां, छस्सै अधिक सुज्ञान समर्थ अधिक लहा ॥ ४० ॥ द्वादस सहस जु सप्तसतक पंचस कहे, मनपर्यय ज्ञानी इतने मुन सरदहे। इतने ही वादि मुनि निश्चै जानिये, मिथ्या मत जग हरनि सिंह परवानिये ॥ ४१ ॥ सब मुन चौरासी हजार परमान ही, चौरासी गणधर ऊपर जु वखान ही। ब्राह्मी आदिक आर्या सब महाव्रत धरे, तीन लक्ष पंचास सहस्र बहु तप करें ॥ ४२ ॥ दर्श ज्ञानवृत शील सु पूजा आदरे, तीन लक्ष श्रावक दृढ़ व्रत आदिक खरे। सम्यक्तहि अरु शील व्रतादिक जुत कही, पंच लक्ष परमाण श्राविका लसतही ॥ ४३ ॥ देवी देव असंख्य वंदना करत है, संख्याते तिर्यंच बैरको हरत हैं। प्रातिहार्य वसु चौतीस अतिशय धार हैं, अनंत चतुष्टय छयालिस गुण जगसार हैं ॥४४॥ दिव्यध्वनि करि मोक्षमार्ग बताइये, बिन कारण जगबंधु द्विधा वृषको कहे। भव अंबुधसे काढ़ मुक्ति पहुंचाय है, ताको नाम सुधर्म सुप्रभु प्रगटाय है ॥ ४५ ॥ सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्र सुतप गिनो, उत्तम क्षमा सुआदि मुक्ति कारण भनो। बहु बचसे किम काज जु सुखदायक कहो, शक्र चक्रि जिनपद सुधर्म सेती लहो ॥ ४६ ॥ वृष सुकल्पद्रुमके ये फल चित लाइये, इम

सुजान वृष बिन घटिका न गमाइये। इम भगवत मुखसे जो धर्मामृत करो, ताहि पीय भरतेश सुनि निज ग्रह मंचरो ॥४७॥

चाल मरहटी लावनी—प्रभू आरज देशन माही, करत सु विहार सुखदाई। सभा द्वादस जु साथ मोहैं, सकल सुर नरके मन मोहै ॥४८॥ भव्य जीवनको बतलायो, ज्ञान दिग चरित्र मन भायो। नेम यम बहुते दिखलाये, देश पुर आदिक विहराये ॥ ४९ ॥ धर्म पीयूष धार करके, सब अज्ञानातप हरके। भव्य खेतीको सींचायो, मोक्ष सुरफल तिन निपजायो ॥५०॥ वरष हज्जार एक जानों, और दिन चौदह सम मानों। वरष एते कमती ठानों, लक्ष पूरव केवलग्यानों ॥ ५१ ॥ सु पहुंचे पर्वत कैलाशा, दिव्यध्वनि खिरत नही तासा। पोषकी पद्रस उजियारी, प्रभु तिष्ट सुमौन धारी ॥ ५२ ॥ तबै भरतेश्वर निस माही, लखे सुपने जो सुखदाई। कनक गिर बहु ऊंचो थाई, लोकके अंत तलक जाई ॥ ५३ ॥ स्वप्न युगराज सुनिरखायो, स्वर्गसे औपध द्रुम आयो। यहां थिन ह्वे सुरोग हरियो, स्वर्ग जाने इच्छा करियो ॥ ५४ ॥ जयात्मजनंत वीर्यनामा, लखो सुपनो इम गुणधामा। चन्द्रमा तारागण जे हैं, सबै ऊपरको चढ़ते हैं ॥ ५५ ॥ सचिव अग्रेस भरतराई, ताम सुपनौ इम दरसाई। मही पर रतनद्वीप आयो, सोई जानेको उमगायो ॥ ५६ ॥ सेनपत निरखो निसमांही, वज्रपिंजरको तोड़ाई। उलंघै मैं कैलास गिरको, उद्यमी देखो इम हरको ॥ ५७ ॥ सुभद्रा चक्री पटरानी, तास इम स्वप्न सुनिरखानी। यसस्वति सची सुनंदा हैं, शोक तीनो अतिही करहैं ॥ ५८ ॥

बनारस पत चित्रांगद है, स्वप्न इम सोई निरखत है। सूर्यसे बहु उद्योत होई, श्यामको अस्त भयो सोई ॥ ५९ ॥ स्वप्न सबने निस निरखाये, प्रात ही राजसभामें आये। भरत आदिक पूछन कीनो, पिरोहतने उतर दीनों ॥ ६० ॥ सर्व स्वप्नको फल ऐसा, प्रभू तिष्ट गिर कैलासा। जाय है मोक्षपुरी माही, बहुत योगी तिन संग जांही ॥ ६१ ॥ नाम आनंद इक नर आई, भेद तहांको सब बतलाई। मौन जो भगवतने ठानी, प्रभुकी खिरत नही वानी ॥ ६२ ॥ यही सुन भरतेश्वर जबही, चलो सब कुटंब लेय तबही। वचन मन काया शुध करके, नमो पूजा बहु हित धरके ॥ ६३ ॥ चतुरदश दिन सेवा कीनी, स्तवन आदिक रंगमें भीनी। शुक्लध्यानहि तीजो पायो, सोई जब जिनवरने ध्यायो ॥ ६४ ॥ योग सब ही निरोध कीना, गुणस्थान चौदम लीना। प्रकृत जु बहत्तर क्षय करके, नाम तिन सुनो चित धरके ॥ ६५ ॥

तारक छंद—प्रथम जिनदेव गती हनियो, फुन पंच शरीर विनाश कियो। पणबंधन पणसंघात हने, त्रय आंगोपांग जु नाम ठने ॥ ६५ ॥ षट्संहनना षट्सस्थाना, पणवर्ण गंध द्विविध हाना। पणरस अरु आठ सपर्श भने, प्रकृती इकयावन पिंड हने ॥ ६६ ॥ गत्यानुपूर्वी देव कहा, अर अगुरलघु उपघात सही। परघात उछासको नाश कियो, जु विहायोगतीद्वयको हनियो ॥ ६७ ॥ फुन अपर्याप्त प्रत्येक हनो, थिर अथिर शुभाशुभ नाश ठनो। दुर्भग दुस्वर सुस्वर कहिये, अरु अनादेय इनको दहिये ॥ ६८ ॥ अपयश जु असाता नाश कियो, अरु नीच गोत्रको

खोय दियौ। निर्माण बहतर एम गिनौ, ये एक समयमैं नाश ठनौ॥ ६९॥

मरहटी—चौदमौ है जु गुण स्थानो, नाम जिसको अयोग जानौ। लघु पंचाक्षर उच्चारो, जा सकी इतनी थित धारो॥७०॥ दोय समये बाकी होवे, तबै इन प्रकृतनकौ खोवे, शुक्लध्यानहि चौथौ पायौ। धारियो जिनवर जगरायौ॥ ७१॥ अंतके एक समय माही, प्रकृत तेरह जो नाशाही। प्रथम आदेय जु नाम कही, मनुष गतिको कर अंत सही॥७२॥ आनुपूर्वी नर नाम भनौ, जात पंचेंद्रयकौ जु हनौ। आयु मानुष त्रस बाद रहै, और पर्याप्त सुभग रहै॥ ७३॥ कीर्ति सातावेद निमाना, प्रकृत तीर्थंकर गुणधामा। उच्च गोत्रहिको अंत कियो, प्रकृत तेरहको नाश टयो॥ ७४॥ मोक्षगमाके पति थाय उच्च गति स्वभाव कर जावें, एक समये मैं शिव लीनो, अष्ट गुण जुत तहां थित कीनो॥ ७५॥

पायता छन्द—शुभ माघ कृष्ण पक्ष माही, चौदस प्रभात सम माही। उत्तराषाढ़ जु नक्षत्रा, सिध थानक लहो पवित्रा॥ ७६॥ दस सहस तहां मुनराई, जो केवलज्ञान धराई। ते भी सब मुक्त लहावें, तिन आयु जु पूरण थावे॥७७॥ वसु समये छै जु महीना, इस्सै वसु मोक्ष लहीना। ढाई जु दीपसे जावैं, इम बहु परमागम गावैं॥ ७८॥ सो सुख अनंत भोगाई, निरबाध निरुपम ताई। दुख रहित सदा बरताई, सर्वोत्कृष्टहि पद पाई॥७९॥ जो इन्द्र और देवनको, अहमिंद्र चक्रवर्तिनकौ। अरु भोगभूमिनको है, त्रयकाल तनौ सुख जो है॥८०॥

सबको इकठो करवाई, तासे अनंत गुण थाई । सो एक समय भोगाई, इतनो सुख सिद्ध लहाई ॥८१॥ तब चिह्न लखे सुरराई, तब ही चव विध सुर आई । निज निज विभूति संग लाई, हिरदे बहु हर्ष धराई ॥ ८२ ॥ जब प्रभुको तन खिर जाई, नख केश तबे सुबचाई । इन्द्रादिक फेर रचाई, नख केश वहीं सुलगाई ॥ ८३ ॥ तिसको शिवका बैठायो, बहु पूजा भक्ति करायो । चंदन कर्पूर सुलाये, बहु द्रव्य सुगंध चढ़ाये ॥८४॥ सब इंद्र कियो परणामा, अग्नेन्द्र नमो फुन तामा । तिन मुकट सुअग्नि भराई, ताकर संस्कार जु थाई ॥ ८५ ॥ सो भस्मी आनंददाई, सुर मस्तक कंठ लगाई । हम भी यह पदवी पावें, हम सब सुर भावन भावें ॥ ८६ ॥ जिन दक्षणादि सुखकारी, गणधर शरीर संस्कारी । जो और केवली थाई, तिनके पश्चिम दिश मांही ॥ ८७ ॥ नख केश सुजारे जब ही, त्रय अग्नि लहीव बहुत ही । जब ग्रही सुपूज कराई, सामग्री अग्नि क्षपाई ॥ ८८ ॥ नृप भरत जु शोक करायो, तब वृषभसेन गणरायो । तिन शोक हानके काजे, संबोधन बहु विध साजे ॥ ८९ ॥ सबकी भवावली कहिये, जिस सुनते शोक जु दहिये । पहले आदिश्वरस्वामी, तिनके भव कह गुणधामी ॥ ९० ॥ पहले जयवर्मा थाये, खगनाम महाबल पाये । ललितांग अमर शुभ होई, वज्रजंघराय ह्व सोई ॥ ९१ ॥ फुन भोग भूम उपजाई, सुर श्रीधर नाम लहाई । फिर सुविध भयो भूपाला, अच्युत नायक सुविशाला ॥ ९२ ॥ फुन वज्रनाभ सुखदाई, चक्री पदवी तिन पाई । सर्वार्थ सिद्ध सु विमाना, अहमिंद्र भये गुन

थाना ॥ ९३ ॥ तहांसे चय वृषभ भये सो, विध हन सिध ठाम गये सो । श्रेयांस नृपत भव सुनिये, जिम सुनते पातग हनिये ॥९४॥ प्रथम हि जु धनश्रीनामा, निर्नामकाख्य गुणधामा। देवी स्वयंप्रभा जानों, ईशान स्वर्ग उपजानों ॥९५॥ श्रीमति-राणी सुखकारी, जिन दान दियो हितधारी । सो भोगभूमि उपजाई, नानाविध सुख लहाई ॥ ९६ ॥

अडिल छन्द—देव स्वयं प्रभ होय भूपकेशव भयो, षोडश स्वर्ग प्रतेंद्र होय धनदत ठयो । सर्वार्थसिद्धमें अहमिंद्र वखानिये, फुन श्रेयांस नरेश भये इम जानिये ॥ ९७ ॥ दानतीर्थ कर्तार सेनपत थाइयो, तप कर गणधर होय मोक्षपद पाइयो । तुम अपने भव सुनों भरतजीसे कहे, प्रथम गाय अति ग्रिद्ध नरकके दुख सहे ॥ ९८ ॥ व्याघ्र होय फुनि देव दिवाकर थायजी, मतिवर मंत्री होय सुग्रीवक जायजी । फुन सुबाहु ह्वै सर्वारथ सिध पाइयो, भरत होय छै खण्ड तने नृप वसि कियो ॥९९॥ मोक्ष जाहुगे निश्चय मनमें राखियो, वृषभसेन गणधर निज भव इम भाखियो । सेनापत हो भोगभूमि माही गये, देव प्रभाकर होय अकंपन जो भये ॥ १०० ॥ सेनापत पद पाय ग्रीवकन जाईयो, पीठ गाय हो सर्वार्थसिद्धमैं थयो । सो चयकर में वृषभसेन गणधर भयो, अब बाहूबलतने सुनो भव सुख भयो ॥ १०१ ॥ पहले मंत्री होय भोगभूमि गयो, फुन गीर्वाण कनक प्रभ नाम जु थापयो । आनंद नाम सुप्रोहत होय ग्रीवक लहो, महाबाहु ह्वै सरवारथ सिद्धको गहो ॥ १०२ ॥ बाहूबली ह्वै मोक्ष नगर माही गये, फुन अनंत वीरजके भव रिखि

बर्नेये। आदि पुरोहित होय भोगभू अवतरो, देव प्रभंजन ह्वै धनमित्र भयो खरो ॥१०३॥ फुन ग्रीवकमें जाय राय महापीठ-ही, सर्वारथ सिद्ध जाय अनंत विजय मही। श्री जिनवरके पुत्र होय बहुत तप कियो, अविचल थानक जाय तहां वासो लियो ॥ १०४ ॥ फुन अनंत वीरजके भव शुभ वर्ण ये, उग्रसेन जो वणिक प्रथम होते भये। फुन सुव्याघ्र हो भोग-भूम माही गये, चित्रांगद सुर होय सुवरदत नृप ठये ॥१०५॥

पद्धड़ी छंद—अच्युत जु सुगर्भदेव होय, फुन विजयनाम नृप भयो सोय। सर्वार्थसिद्ध सुविमान जाय, चयकर अनंत वीरज सु थाय ॥ १०६ ॥ प्रभु सुत होकर मुक्ति लहाय, फुन गणी अच्युतके भव कहाय। पहिले हरिवाहन भूप जान, सूकर ह्वै भोगसुभू लहान ॥ १०७ ॥ मणि कुण्डलदेव भयो प्रधान, राजा वरसेन भयो सुआन। षोडश जु स्वर्गमें सुर समान, फुन वैजयंत नृप ह्वै महान ॥ १०८ ॥ सर्वारथ सिद्ध नामा विमान, उपजो तहां बहु गुणको निधान। तहां ते चय अच्युत नाम धार, जिन सुत ह्वै मुक्ति लही जु सार ॥१०९॥ फुन वीर तने भव इम उचार, इक भागदत्त वणिक निहार। मर्कट ह्वै भोग सुभूम जाय, फुन देव मनोहर नाम पाय ॥ ११० ॥ चित्रांगद राय भयो प्रवीन, अच्युत जु सुगर्भघि जन्म लीन। फिर नाम जयंत भयो नरेश, सर्वारथ सिद्ध सुख लहि अशेष ॥ १११ ॥ फुन वीर नाम प्रभु पुत्र होय, सो मुक्ति भये सब कर्म खोय। अब वरवीरहिके भव सुनाय, जासे वृष-माही चित्त लगाय ॥११२॥ इक वणिक भयो लोलुप सु नाम,

फुनि नकुल भयो मुनि मुक्त धाम। फुन भोग भूममें आर्य होय, ह्वै नाम मनोरथ अमर सोय ॥ ११३ ॥ फिर जातिमदन नामा भूपाल, षोडषम सुर्ग सुर ह्वै रिसाल। अपराजित राय भयो दयाल, सर्वारथसिद्ध सुर हो विशाल ॥११४॥ वर वीर नाम जिन पुत्र थाय, सो मोक्ष थाय अद्भुत लहाय। सम्बंध सर्व जनको रवाय, तुम शोक तजो सोमरतराय ॥ ११५ ॥

जोगीरासा- इम गणधर बच अमृत पीकर सुख भयो नर-राई, शोक जुविषको नास कियो तब बहु परणाम कराई। फुन चक्रेश अजुध्या पहुंचो राज करे सुखदाई, एक दिन दर्पण मुख देखत स्वेत वाल दरसाई ॥ ११६ ॥ मानों जमको दूत जु आयो कहन बात हितदाई, इम चिंतत चक्री निज मनमें बहु वैराग बढाई। देखो मेरे भ्राता लघु सब राज छांड बन जाई, धन्य वही है तप बहु करके मोक्ष लिया पन थाई ॥ ११७ ॥ मैं अबतक विषयांध होय ग्रह मूढ नवत तिष्टाई, मोह पचेन्द्रीके बस होकर मोह पकड़ं थाई। मैं चिरकाल बहुत सुख भोगे चक्री पदके मांही, तोहू भोग मनोरथ मेरे पूर्ण भये न कदाही ॥११८॥ दुखकर होवे दुखके कारण ऐसो भोग सरूपा, वपु विडंबना कारन जानो इम चिंतवन कर भूपा। क्रोध काम अरु रोग क्षुधा ये अग्नि लगी चहूं पासा, ऐसा कायकुटीमें बसनो तहां सुखकी कहां आसा ॥११९॥ ये संसार समुद्र विषम है भीम दुख बहु जामें, आदि अंत कोई जाका नांही, बुध राचे किम तामें। कांता मोह बढावनहारी बांधव बंधन जानो, राज्य धूलिसम सुख है दुखसम अस्य शत्रु पहिचानो ॥१२०॥ योवन ग्रसत जराकर जानो

आयु सु यम मुख माही, और पदार्थ अनित्य सबै ही किसकी आस कराहीं। इत्यादिक चितवनकर नृप तब है वैराग्य अधिकाई, अर्ककीर्तिको राज देय तृणवत सब लच्छ तजाई ॥१२१॥ नित्य मोक्ष संपतके कारण सर्व परिग्रह त्यागे, घर तज बनमध जाय मुनी है संयमसे अनुरागे। मनः पर्यय ग्यान लहो मन वचन काय सुभ ठाना, निज आतमको ध्याय महान्त अन्तर ध्यान धराना ॥ १२२ ॥ दुतिय शुक्ल शुभ खड्गलेयके घात कर्मरिपु हाना, केवल ज्ञान लहाय ततक्षण लोकालोक सुजाना। देवन आय सु पूजन कीनी बहु देसन विहराये, दिव्यध्वनि करि भव बोधे बहु जिय शिव पहुंचाये ॥ १२३ ॥ कर्म अघाती नाम जु करके मुक्ति थान सु लहायो, पूरव लक्ष सत्तरहजो सुकुमारकाल सुख पायो। मंडलीक पद तनो राज इक सहस वर्ष नृप कीनों, उनसठ सहस वर्ष दिग जय कर ग्रह आये सुख भीनो ॥ १२४ ॥ छै लख पूरब तामें कमती बरस जु साठ हजारा, इतने दिन भरतेश्वरजीने चक्रवर्ति पद धारा। इक लख पूरब संजम अरु शुभ केवल ग्यान धराई, चौरासी लख पूरबकी सब आयु नृपतिकी थाई ॥ १२५ ॥

अहो जगतगुरुकी चाल—वृषभसेनको आदि जो गणधर तपधारी, जगमें धर्म प्रकाश मोक्षवरी हितकारी। सो श्री रिषभनाथ जु उपजे जुत त्रय ग्याना, फुन षटकर्म प्रकाश जीवन विधि बतलाना ॥ १२६ ॥ दिव्य ध्वनिको ठान मुक्ति मारग दरसायो, जगत पितामह जान तिनको मैं सिरनायो। त्रिभुवन पति कर वंद्य शिव मारग प्रगटायो, सरनागत प्रतिपाल तिनको

में जस गायो ॥ १२७ ॥ समस्त गुणनिकी खान सर्व दोषनके हर्ता, त्रिभुवन पति सुखदान विश्व मंगलके कर्ता। भवि जीवनको शर्ण मुक्ति रामाके भर्ता, जैवंते होय तीर्थ अग्रिम पद धर्ता ॥ १२८ ॥ सब जग पूजे जास योगीश्वर बहु ध्यावें, भुक्ति मुक्ति दातार सकल तत्व दरसावे। समगुण जलध समान शक्र चक्र जस गावे, सो जिनवर जगनाथ मंगल वेग करावे ॥ १२९ ॥ ये श्री वृषभचरित्र जो बुधवन्त पढ़ावे, भक्ति राग उर धार पढ़ै लिखहैं लिखवावे। ते बहु पाप विनाश ज्ञान शुभ गण उपजावें, श्रुतसागरको पार ते नर वेग लहावें ॥ १३० ॥ जो सुनि है सुचरित्र वृषभ जिनको सुखदाई, रागादिक कर दूर मन वच काय लगाई। ते मोहादिक हान पापको सतत खिपावें, सुर्ग मोक्षको बीज रमो पुन्य उपावें ॥१३१॥ ये वृषभेश चरित्र रचियो में मुद होई, अल्प शक्तिको धार सकल कीरति मद खोई। इस चरित्रके मांहि जो अज्ञान बसाई, अक्षर मात्रा संधि जामें भूल कहाई ॥१३२॥ सो सोधो बुधवान मुझपर करुणा लाई, अथवा श्री जिनवान मोपर क्षमा कराई। श्री आदीश्वर आदि जो चौवीस जिनेसा, त्रय जगके हितकार वंदू ते परमेसा ॥ १३३ ॥ सिद्ध नमूं हितदाय लोक-सिखर सुविराजै, पंचाचार धराय सो आचारज छाजे। उपाध्याय जग सार अन मुनिको जु पढाई, और मुनि तप धार मंगल सर्व कराई ॥ १३४ ॥ वंदू जैन सिद्धांत जो जिनवर वर्णाई, वर्धित कियो गणेश लोक दीपक सम थाई। जो अज्ञान

अंधकार दुरितको मूल नसाई, ज्ञान तीर्थ जु पवित्र सकलको कीरति दाई ॥ १३५ ॥

दोहा—सहस चार अरु षट सतक, और अठाईस जान। इतनो मूल श्लोक सब, बुधवान मन आन ॥ १३६ ॥

गीता छंद—यह भरतक्षेत्र अनूप सुन्दर तहां आरज खण्ड है, सो दायंम अड़तीस योजन त्रय कलाकर मंड है। दो सहसकोस तनो सुयोजन गिन अकृत्यममें सही, चवलक्ष छहत रस इस एक शतक जु कोस गिनो सही ॥ १३७ ॥ दो सहस धनुष तनो प्रमाण जु कोसको जिनवर कहा, इतनो जुखंडको विसतार भविजन श्रद्धहा। तहां इंद्रप्रस्थ खेट सुन्दर एक दिस पर्वत खरो, पूरवदिसा यमना नदी ता बीच निर्मल जल भरो ॥ १३८ ॥ तहां सेठके कूचे विषे जिनधाम है अति सोहनो, सैली जहां इन्द्राजजीकी भव्य जन मन मोहनो। तहां नित्य पूजा शास्त्र होवे बहुत त्रुपमें रुच धरी, तहा तुच्छ बुद्धि धार तुलसीरामने भाषा करी ॥ १३९ ॥ प्रथम लाला ग्यानचंद सुधी सुमांहि पढ़ाइयो, मम पिता बांकेराय गुणनिध तिन मुझे सिखलाइयो। लखि अग्रवाल जु वंस मेरो गोत गोयल्ल जानियो, दिपमेश गुण वर्णन कियो अभिमान चित नहीं ठानियो ॥ १४० ॥ सिन वेद इन्द्री अंक आतम यही संवत सुन्दरी, कार्तिक सुकृष्णा दूज भौमसुवारको पूरन करी। नक्षत्र अश्वनि जान चन्द्र सुमेषको मन भावनो, तादिन विषें पूरण कियो यह शास्त्र जो अति पावनो ॥ १४१ ॥

भाई जु छोटेलाल अरु शीतल दास प्रमाणिये, ये नित्य येही कहा करे कोई नयो ग्रंथ बखानिये। तिनको जु हित ताहेत अरु निज पुन्य हेत लखानिये, भाषा सुगम यह कर दियो भव गन पढ़ो हित ठानये ॥ १४२ ॥ व्याकर्णमें नहीं सीखियो फुन अमरकोस नही भनो, श्रुतबोध पिंगल पढ़ो नाहीं नाम प्रभुको मैं सुनो। जिन अधम उद्धारका विरद है अंजनादिक तारिया, सो मोह क्यों नहीं तार है यह जानमें नामहि लिया ॥ १४३ ॥ मलका महारानी सु वृद्धा जासको परताप है, अज सिंघ जल एक घाट पीवें न्याय रीति सुथाप है। जिनको यही उपगार है कोई ईत भीत नहीं भई। यह धर्मराज सदा रहो हम यही नित प्रत चाहई ॥ १४४ ॥ मैं ग्यानहीन प्रमादयुत मुझ भूल होवेगी सही, सो ग्यानवान सुधारिये यह वीनती उर मम गही। सामायकादिकमें लगत नहि हम चलत परणाम हैं, त्रय जोग इसमें लाग है यह समझ कीनो काम है॥१४५॥

दोहा—कछ जाने तें यों कहे, हम कछु जाने नांहि। जो कछ जाने ही नहीं, ते अब कहा कहांहि ॥१४६॥ संख्या श्लोक अनुष्टपी, भाषा आदि पुराण। गिनिये पांचहजारनो, चार शतक परमाण ॥ १४७ ॥

इतिश्री वृषभनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते वृषभनाथ निर्वाणगमनवर्णनोनामा विंशतिमो सर्गः ॥ २० ॥